Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

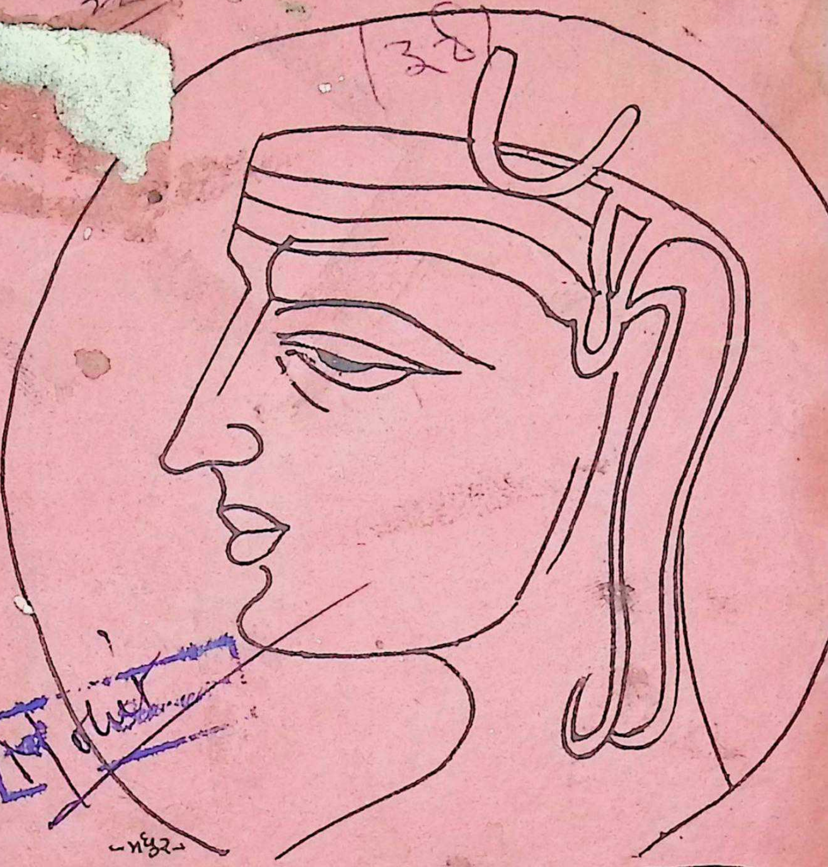

सम्राट् हर्षवर्धन

सत्यनारायण कस्तूरिया

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

सम्राट् हर्षवर्धन

सत्यनारायण कस्तूरिया

हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय
बनारस ।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

प्रकाशक
ओम्प्रकाश बेरी
हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय,
पो० बक्स नं ७०, ज्ञानवापी,
बनारस ।

प्रथम संस्करण—११००
१९५६
मूल्य : चार रुपया

मुद्रक
श्री कृष्णचन्द्र बेरी,
विद्या मन्दिर प्रेस लि०,
डी० १५/२४, मानमन्दिर,
बनारस ।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

अनुक्रमणिका

	पृ० सं०
१. प्रारम्भ	१
२. वरदान द्वारा पुत्र-प्राप्ति	५
३. हर्ष का उदय	१२
४. बहन राज्यश्री का जन्म	१६
५. कल्लोल क्रीड़ाएँ	२४
६. विवाह की धूमधाम	३२
७. युद्ध के लिये प्रस्थान	४५
८. हूणों पर धावा	५१
६. विपत्तियों का आरम्भ	५६
१०. माता-पिता का देहावसान	६१
११. कन्नौज पर शत्रु-आक्रमण	७०
१२. राज्यवर्द्धन को वैराग्य	८१
१३. राज्यश्री का कारागार से पलायन	८६
१४. कन्नौज शत्रुओं के चंगुल से मुक्त	६७
१५. शत्रु शिविर में राज्यवर्द्धन की हत्या	१०६
१६. हर्ष का राज्याभिषेक	११२
१७. दिग्विजय के लिये प्रस्थान	११६
१८. बहन की खोज में	१२७

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

१९.	कन्नौज से शत्रु का पलायन	१३९
२०.	हर्ष सम्राट् बने	१४३
२१.	हर्ष की न्यायप्रियता	१४९
२२.	पश्चिम-यात्रा	१६३
२३.	वापिस कन्नौज में	१७६
२४.	शासन-प्रबन्ध	१७९
२५.	वलभी पर आक्रमण	१८६
२६.	हर्ष की महान् पराजय	१९४
२७.	पूर्वाभियान	२०१
२८.	स्त्री राज्य पर विजय	२०९
२९.	चीनी यात्री ह्वेनसांग	२१९
३०.	कन्नौज की धार्मिक परिषद्	२२८
३१.	सम्राट् की हत्या का षड्यंत्र	२३५
३२.	प्रयाग का दान-वितरणोत्सव	२३८
३३.	अन्तिम क्षण	२४४

—:o:—

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

: १ :

प्रारम्भ

निशा का साम्राज्य व्याप्त था । उसकी श्यामवर्ण साड़ी में जटित तारागण सितारों की तरह जगमग-जगमग करते कभी ग्राँख मीचते ग्रौर कभी ग्राँख खोलते ग्राँखमिचौनी खेल रहे थे । कृष्णपक्ष के ग्रंधियारे में चन्द्र बिना भी रात इतनी सुहावनी लगती थी कि यदि उस समय कोई जागता हो तो उसके सुहावनेपन से मुग्ध एवं लोट-पोट हो जाए । किन्तु उस मीठी-मीठी, भीनी-भीनी रात में भी राज-उद्यान की मनोरम वाटिका ग्रंधकार की प्रबल छाया के कारण भयावनी लग रही थी । जो वाटिका दिन में किसी के लिये ग्रत्यन्त ग्रानन्दप्रद ग्रौर भ्रमण-योग्य रहा करती, वही इस समय उसके लिये महान भयप्रद बन रही थी। ग्रकेला तो क्या, सामूहिक रूप से भी कोई इस निर्जन वाटिका में पैर रखने का साहस नहीं कर सकता । वाटिका के समीप ही राज्यभवन की विशाल गगन-चुम्बी ग्रट्टालिकाएँ ग्रपने मनोहर रूप के कारण इस ग्रंधकार में भी भली भांति चमक-दमक रही थीं । राजभवन के समस्त प्राणी निद्रादेवी के प्रागाढ़ ग्रालिङ्गनपाश में ग्राबद्ध हो इस प्रकार चेतना शून्य ग्रौर विवेकहीन हो रहे थे मानों स्वप्न-लोक की कल्पनापुरी में विचरण करते ग्रानन्दमय, सुखमय स्वर्ग-लोक में ही पहुँच गये हों; किन्तु नहीं, एक व्यक्ति की ग्राँखों में निद्रा का एक कतरा नहीं । वह स्वर्ण-रत्न-जटित पलंग की रमणी स्पर्श से भी ग्रधिक सुकोमल शैय्या पर पड़ा इधर-उधर करवटें तोड़ रहा है किन्तु निद्रादेवी उसके पास तक नहीं फटकती । ग्राधी रात से भी ग्रधिक समय हो चुका, यूँ ही करवटें तोड़ते । यह सौ योजन लम्बी रात कैसे ग्रौर क्यों कर बीतेगी ? वह व्यक्ति घबरा कर उठ बैठा ग्रौर उसने टाँग सीधी करने के लिये टहलने का विचार

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

किया। संभवतः इस प्रकार हृदय के चंचल मन को शांत एवं चुप कराया जा सके। उसने उठकर दीपक के धीमे प्रकाश को कुछ अधिक ज्योतित किया और भवन के विस्तृत प्राङ्गण में टहलने लगा। इस क्रिया से उत्पन्न धीमी खड़खड़ाहट ने राजमहिषी की भी निद्रा भंग कर दी।

'अभी तक सोये नहीं आप?' रानी यशोमती ने उठकर मसहरी में से झांकते हुए पूछा।

'नहीं, कुछ नहीं! यों ही कुछ याद आ गई।' महाराज प्रभाकर-वर्द्धन ने हृदयस्थ रहस्य को छिपाने का प्रयास करते हुए कहा।

'किन्तु आप तो कुछ घबराये से जान पड़ते हैं, बात क्या है?' रानी रहस्य जानने को उतावली हो उठी।

उत्तर की प्रतीक्षा के पूर्व ही रानी पलंग से उतर कर पति के पास जा पहुँची। राजा राज-उद्यान की ओर पड़नेवाली खिड़की के सहारे पीठ की ओट लगाए चिन्ता मग्न खड़े थे। यशोमती ने उनका हाथ पकड़कर आग्रहपूर्वक पूछा—'कुछ तो बताइये, आखिर हुआ क्या है? इतनी रात तक आप खड़े जाग रहे हैं और साथ ही कहते हैं कुछ बात नहीं। इसको कैसे मैं मान लूँ।' उसने राजा को बताने के लिये बाध्य कर दिया।

'तुम्हें विश्वास न हो तो मैं क्या करूँ, कहा तो कुछ बात नहीं।'

'किन्तु इतनी रात जागते रहने का कुछ कारण तो होगा ही, आपको मेरी सौगन्ध, बताइये।' यशोमती ने राजा को तंग कर दिया।

'अब क्या बताऊँ तुमसे, जब विधाता ही हमारे घर को संतान रहित बना रखना चाहता है तो हम कर भी क्या सकते हैं।' राजा ने गंभीर मुद्रा में कहा।

'तब इसके लिये इतना चिन्तित होने की क्या आवश्यकता है? विधाता का लिखा हम टाल तो सकते नहीं, सिवाय चुप मार बैठने के कुछ वश भी तो नहीं।' रानी ने पति को धैर्य दिलाते हुए कहा।

'ठीक है, किन्तु इतने बड़े राजपाट का उत्तराधिकारी आखिर कौन होगा? संतानहीन पितरों को नरक में भी ठौर नहीं मिलती।'

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

'किन्तु इस तरह जागने से और सोचने से तो संतान प्राप्ति हो नहीं जायगी, भाग्य में जो कुछ होगा देखा जायगा। मैं हाथ जोड़ती हूँ, इस समय चलकर सो जाइये।' रानी वलपूर्वक राजा का हाथ खींचने लगी। राजा ने भी हठ नहीं किया और विना प्रयास पलंग तक खिंचे चले गये।

पत्नी का आग्रह प्रबल था, इच्छा न रहते भी राजा को पलंग पर आँखें मूँदनी पड़ीं। किन्तु हृदय के अन्दर तो संसार दौड़ रहा था, नींद क्यों कर आती। यों ही करवटें बदलते रात बीत गई।

प्रात:काल उसी चिंता में नित्य-कर्म बीतने लगा, किन्तु हृदय को शांति करने का राजा को कोई उपाय न सूझ पड़ा।

उपाय था भी क्या, विधाता की लिपि को मिटाने के लिये सिवाय ईश्वर की शरण जाने और भगवदाराधना को के दूसरा कोई उपाय संभव नहीं हो सकता।

महाराज प्रभाकरवर्द्धन इसी उधेड़-बुन में बैठे संध्यापूजन में संलग्न थे, कि अचानक दूत ने आकर निवेदन किया—'मुनि ऋषभदेव पधारे हैं!' दूत की वाणी मानों महाराज के लिये वरदान सिद्ध हुई। महाराज नहीं जानते थे कि मुनि उनकी मनोरथ सिद्धि के लिये साक्षात् विधाता बन कर आ पहुँचे हैं। राजा ने मुनि को समादरपूर्वक राज-उद्यान की मनोरम पर्णशाला में ठहराने की व्यवस्था का दूत को आदेश दिया और स्वयं चटपट पूजाकृत्य की समाप्ति में लग गये।

दस मिनट के बाद ही वे स्वागतोचित की सामग्री लेकर पर्णशाला जा पहुँचे। राजा बहुत प्रसन्न थे। हो न हो यह मुनि ही उन की चिन्ता-निवारण का उपाय बता दें। इसी संभावना की उथल-पुथल में उनके हृदय की गति तीव्र हो उठी। मुनि के सामने पहुँचते ही वह दण्डवत कर उनके चरणों से लिपट गये और उनका चिन्तित हृदय मानों फूट-फूटकर अपनी मूक व्यथा प्रकट करने लगा। मुनि त्रिकालज्ञ थे, उनसे क्या छिपा था। राजा की चिंता और व्यथा दूर करने के लिये ही तो वे

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

यहाँ तक आये थे । उन्होंने राजा को बलपूर्वक उठाया और आशीर्वाद दिया कि 'उसके मनोरथ पूर्ण होंगे । अब राजा को कुछ धैर्य हुआ, और उसने सविधि अपने पूज्य अतिथि का सत्कार कर अर्घ्य प्रदान किया ।

राजा अत्यधिक उतावला हो उठा था, और चाहता था कि तत्काल मुनि के समक्ष अपनी चिंता प्रकट कर सन्तान-प्राप्ति का स्पष्ट आशीर्वाद प्राप्त कर ले कि मुनि ने स्वयं ही चर्चा छेड़ी, और राजा से उसका कुशल-क्षेम और राज्य की दशा के सम्बन्ध में प्रश्न कर दिया । बस फिर क्या था, राजा का मुँह खुल गया और उसने अपना दुःख प्रकट कर दिया। मुनि तो आये ही इसीलिये थे । वास्तव में वे अनुभव कर रहे थे, कि राज्य के उत्तराधिकारी का अभाव होने से देश की शासन-व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो जायगी । इसलिये राजा की संतानहीनता उन्हें भी खटक रही थी और इसी कारण वे राजा को आशीर्वाद देने चल पड़े थे । उन्होंने राजा को संतानप्राप्ति का आशीर्वाद तो दिया ही, साथ में इस कार्य की सिद्धि के लिये कठिन सूर्योपासना का आदेश भी दिया ।

राजा ने मुनि की आज्ञा सहर्ष शिरोधार्य कर उनसे कुछ दिन वहीं ठहरने की प्रार्थना की, किन्तु मुनि को तत्काल वृन्दावन के लिये प्रस्थान करना था; अतएव उन्होंने अपना दण्ड-कमण्डल उठाया और वहाँ से चल पड़े । राजा ने अत्यन्त सम्मानपूर्वक उन तपोधन महामुनि को विदा किया और स्वयं उछलते आनन्दसागर की बड़ी-बड़ी उछालों से तरंगित होते राजभवन लौट आये ।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

: २ :

वरदान द्वारा पुत्र-प्राप्ति

ग्रीष्मकालीन सूर्य ने अपने प्रचण्ड तेज से धरती को अंगार बना रक्खा था। उस पर प्रज्वलित अग्नि के चार विशाल कुण्ड तो मानो शरीर को भस्म ही किये दे रहे थे, उन चारों कुण्डों के बीच एक टांग के बल खड़े महाराज प्रभाकरवर्द्धन दोनों हाथों को ऊँचा किये सूर्यदेव की उपासना में तल्लीन थे । यह पंचाग्नि तपस्या वास्तव में असाध्य नहीं, तो अति कठिन अवश्य थी; किन्तु राजा ने उसे भी सरल बना लिया। केवल एक इच्छा की पूर्ति ही उद्देश्य था और वह था पुत्र प्राप्ति का उद्देश्य । जिसके लिये राजा संसार के समस्त संभव और असंभव उपायों को कर डालने के लिये दृढ़-प्रतिज्ञ हो चुके थे । उसने अनेक उपाय किये भी थे, किन्तु अभी तक उद्देश्यपूर्ति में असफल रहा । तथापि मुनि की आज्ञानुसार भगवान सूर्यनारायण की यह कठिन उपासना करने में भी वह पीछे न हटा ।

दिन बीत रहे थे, भगवान् सूर्य नारायण ने उपासक की परीक्षा के लिये अपने तेज और अग्नि के ताप में और वृद्धि कर दी और उधर उपासक का शरीर अग्नि की असह्य लपटों से झुलस कर क्षीण होता जा रहा था। किन्तु निश्चय अटल था, वह टल कैसे सकता था । महाराज की इस कठिन तपस्या के कारण सारा राज-परिवार दुःखी और निराश हो उठा था। नागरिकों में भी चिंता हो गई—'आखिर इस तपस्या का कभी अन्त भी होगा ? तपस्या से संतान प्राप्त होगी या नहीं होगी यह तो भविष्य के गर्भ में है; किन्तु यह ध्रुव सत्य है कि यदि महाराज इसी प्रकार तपस्या रूपी क्षय रोग से ग्रस्त रहे, तो उनका यह शरीर इस तपोयज्ञ में आहूत हो जायगा । देश के भावी सम्राट् की प्राप्ति के लोभ में हम वर्तमान सम्राट् को भी खो बैठेंगे'—प्रजा की यह निश्चित धारणा बन गई थी।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

'नहीं, नहीं ! मुझे संतान नहीं चाहिये ।' महारानी यशोमती भी घबरा उठीं । पति की इस उग्र तपस्या ने उन्हें विचलित कर दिया । संतान की चिंता से अधिक उसे अपने सुहाग की चिंता हो उठी । एक तो वह स्वयं पति की तपस्या समाप्त कर देने को उतावली हो रही थीं, उस पर प्रजा वर्ग के समूह के समूह राजभवन आकर उनसे प्रार्थना करने लगे कि जैसे भी हो वह महाराज की तपस्या भंग करायें ।

प्रजा क्या जानती थी, कि महाराज की तपस्या अब पूर्णता के अति निकट पहुँच चुकी है और प्रार्थना करने के लिये महाराज के पास पहुँचने के पूर्व ही उनकी तपस्या की पूर्णाहुति हो चुकी होगी । महारानी यशोमती के नेतृत्व में प्रजावर्ग का समूह जब तपःस्थल पर पहुँचा, तो यह देखकर उसके आश्चर्य और आनन्द का ठिकाना न रहा कि महाराज अपनी तपस्या में सफल हो चुके हैं । महीनों से जो महाराज खड़े होकर कठोर तपस्या में संलग्न थे, आज उन्हें उसकी पूर्णाहुति के बाद दण्डवत् करते देख प्रजावर्ग का हृदय नाच-नाच उठने लगा—'महाराज को भगवान सूर्य नारायण से संतान-प्राप्ति का वरदान मिल गया है ।' प्रजावर्ग को विश्वास हो गया । 'तभी तो उन्होंने तपस्या भंग कर दी । अन्यथा महाराज जैसे दृढ़-प्रतिज्ञ स्वतः अपने प्रयास में हार माननेवाले नहीं हैं ।'

महाराज प्रभाकरवर्द्धन के जयकारों से आकाश गूँज उठा । महाराज भी, जो अभी तक अपने आराध्यदेव सूर्यनारायण को दण्डवत् किये भूमि पर लेटे हुए थे, एकत्रित जनसमूह की प्रबल हर्षध्वनि सुन कर उठ बैठे । उन्होंने जनता को और भी हर्षोल्लसित करते हुए अपने वरदान की समस्त कथा कह सुनाई । वरदान की कथा सुननी थी कि प्रजा ने एक बार फिर हर्षध्वनि से आकाश-पाताल एक कर दिया और तब प्रजासमूह से घिरे हुए महाराज प्रभाकरवर्द्धन ने राजभवन की ओर प्रस्थान किया ।

वास्तव में महाराज ने इतनी कठोरतम तपस्या की, कि जिसने विधाता का अमिट लेख भी मिटा दिया । भगवान सूर्यनारायण को बाध्य होकर उन्हें संतानप्राप्ति का वरदान देना ही पड़ा । आकाशवाणी

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

द्वारा सूर्यदेव ने प्रभाकरवर्द्धन को वरदान दिया कि उसे एक नहीं तीन संतानें प्राप्त होंगी—दो पुत्र और एक कन्या । महाराज को और चाहिये भी क्या था ? संसार में जिस वस्तु को उन्होंने अपने लिये दुष्प्राप्य और दुर्लभ समझ लिया था, उसकी आज उन्हें अचानक प्राप्ति हो गयी, यह क्या कम प्रसन्नता की वात थी ! सारा राजपरिवार आनन्दमग्न हो उठा । महाराज प्रभाकरवर्द्धन और यशोमती का तो पूछना ही क्या ? वे दोनों तो मानों स्वर्ग के, नहीं–नहीं, वैकुण्ठ के महानन्द का अनुभव करने लगे ।

कुछ काल बाद भगवान सूर्यनारायण के वरदान के फलस्वरूप रानी यशोमती ने गर्भ धारण किया । रानी का गर्भ धारण करना था कि राजा की व्याकुलता और भी वढ़ गई । वर्षों से निःसंतान रहने और कठिनतम तपस्या करने में भी जो व्याकुलता और क्लेश राजा को नहीं हुआ वह आज प्रतीक्षा की घड़ियों में हो रहा था । गर्भ-धारण की नौ मास की अवधि राजा के लिये पहाड़ वन गई थी । संतान का मुख देखने के लिये राजा का मन इतना अधिक उतावला हो रहा था कि इस उतावलेपन ने उसे विक्षिप्त-सा वना दिया । राज्यभवन के अन्य छोटे-छोटे बच्चों को प्रतिक्षण गोद में लिये राजा पागल-सा हुआ दिन भर उनके साथ क्रीड़ा करने में व्यस्त रहता था । कभी उनके साथ गुल्ली-डंडा खेलता, तो कभी आँखमिचौनी, कभी धूपछाँव और कभी घोड़ी-घोड़ी । छोटे-छोटे बच्चे राजा को घोड़ा वनाये उस पर चढ़ते और राजा को इस खेल में परमानन्द का जो अनुभव होता, इसे या तो वही राजा ही जान सकते या कोई वैसा ही संतानहीन पिता । वास्तव में इस तीव्रतम व्याकुलता में डूबे राजा को बच्चों का सहारा ही उबार सकने में समर्थ था अन्यथा राजा तो विक्षित-सा हो ही चुका था,

राज-कार्य छूट चुका था । राजा का प्रत्येक क्षण बच्चों के साथ खेल-कूद में बीत रहा था । किन्तु यह पराये बच्चे भी कब तक राजा के हृदय की शांति बन सकते थे । चार मास वीतते-वीतते राजा का मन इन बच्चों से भी ऊब उठा । उसे अपनी संतान चाहिये थी । ये पराये बालक उस का

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

मन कब तक बहला पाते । राजा फिर विक्षिप्त-सा हो उठा । आखिर ये नौ महीने बीतेंगे या नहीं ? युग बीत गये किन्तु ये नौ मास न बीते । राजा की व्याकुलता ने उग्र रूप धारण कर रखा था । भगवान भी कितना कठोर है । नहीं तो क्या १५ दिन का महीना नहीं बन सकता था । पूरे-पूरे ३० दिन बीतें तब जाकर एक महीना पूरा होता है। और नौ महीने ! वह तो एक पूरा युग बीत जाय तब भी पूरा न हो ।

इधर रानी भी कृश होती जा रही थी । पाँचवाँ मास भी बीत चुका था । कृश होना भी स्वाभाविक था। कभी इस प्रकार कृश होने का अवसर मिला भी तो नहीं था। प्रथम अवसर था जब कि रानी को गर्भ-धारण के कठिन क्लेश और अनुभव हो रहे थे । रानी के उज्ज्वल कपोल सायंकालीन कमल की तरह मुरझा गये थे । अलसाई आंखों में कुछ वेदना की स्पष्ट झलक दिखाई देने लगी थी । उदर के उभार ने उसके चलने में कठिनाई उत्पन्न कर दी थी। और तभी आठ महीने बिता कर रानी ने नवें मास में प्रवेश किया । अंतिम मास था, किन्तु अत्यन्त ही क्लेशकर । शारीरिक वेदना तो उत्कट थी ही, संतान-प्राप्ति की प्रतीक्षा से उत्पन्न व्याकुलता भी कम न थी । इस व्याकुलता ने तो और भी अधिक तंग कर रखा था । राजा के लिये यही सबसे अधिक क्लेशकर था । पर किया भी तो कुछ नहीं जा सकता था । महीने के दिन घट सकते थे और बिना नौ महीने पूरे हुए संतान-दर्शन हो नहीं सकता नहीं था। तब ! तब क्या ? जैसे-तैसे तड़प-तड़प कर एक मास और बिताना पड़ा।

नौ महीने पूरे हुए । धीरे-धीरे प्रसव के दिन निकट आने लगे । राजा की व्याकुलता ने उत्कट उत्सुकता का रूप धारण कर लिया । सारा राजपरिवार उस दुर्लभ चिर-चिन्तनीय शुभ घड़ी की प्रतीक्षा करने लगा और तब सहसा अन्तःपुर से किसी नवजात के रोने की ध्वनि सुनाई पड़ने लगी । राजा का मन नाच उठा । नहीं, वह स्वयं भी उठकर पागलों की तरह नाचने लगा—'जाओ, शीघ्र जाओ ! अन्तःपुर में उस बालक के दर्शन करो । राजा ने सेविकाओं को आदेश दिया और स्वयं

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

भी उस ओर दौड़ पड़ा। किन्तु वहाँ तक कैसे पहुँच पाता? द्वार बन्द था। प्रसूतिगृह में उसका जाना संभव न था। लाचार वृद्ध राजा बाहर ही आशा लगाये खड़ा आनन्द मना रहा था। इतने में ही प्रसूतिगृह का द्वार खुला और राजा चौंक उठा। सामने अन्त:पुर की प्रधान बांदी खड़ी थी। उसने कहा—'आपको बधाई हो महाराज! आपको पुत्ररत्न प्राप्त हुआ है।'

पुत्र का नाम सुनते ही राजा तो वास्तव में विक्षिप्त हो उठा—'पुत्र, पुत्र! क्या तुम सच कह रही हो प्रियंवदा?' राजा ने दासी के दोनों कंधे झकझोर कर पूछा। इस विक्षिप्तावस्था में राजा यह भूल गया कि पर-स्त्री को इस प्रकार स्पर्श करना अनुचित है। प्रियंवदा भी सिकुड़-सी गई। उसका मुख लाल हो गया, किन्तु राजा की दशा पर विचार कर चुप हो गई। बाद में उसने कहा—'हाँ महाराज! आप बड़े भाग्य-शाली हैं। आपकी तपस्या सार्थक हो गई, आपको पुत्र उत्पन्न हुआ है।'

राजा की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। उसने चट अपने गले से अपना सब से अधिक मूल्यवान हार उतार कर बांदी के गले में डाल दिया—'लो प्रियंवदा! यह कुछ भी नहीं है। तुमने पुत्रोत्पत्ति का शुभ समाचार सुनाकर मेरा जितना बड़ा उपकार किया है उसके बदले में यह नौलखा हार तुच्छ है। जाओ! मंत्री को मेरा यह आदेश दो कि सारे नगर में उत्सव किये जायँ। दीप-मालिकाएँ सजाई जायँ। जाओ, जाओ। सारे नगर में आज प्रसन्नता की लहर दौड़ा दो। लोग इस आनन्द में नाच उठें। सारा नगर नाच उठे। जाओ। मेरे आदेशों का तुरन्त पालन हो, प्रियंवदा!'

दासी गयी और महाराज के आदेश का तत्काल पालन किया। सारे नगर में महाराज को पुत्रोत्पत्ति होने का समाचार विद्युत् गति से फैल गया। नगर का जो व्यक्ति जहाँ, जिस स्थान पर यह समाचार सुनता, वहीं प्रसन्नता से फूला न समाता और राजभवन की ओर दौड़ा चला जाता। आ-बाल-वृद्ध नर-नारी यह शुभसंवाद सुन कर प्रसन्नता से नाचते, उछलते-कूदते राजभवन आ पहुँचे और एक घंटे के भीतर वहाँ लाखों

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

की भीड़ आ जमा हुई। सभी को उत्सुकता थी, आश्चर्य था और था तीव्र आनन्द। सभी जनता शिशु का दर्शन करने के लिये उतावली हो रही थी। जनता की अधीर भीड़ ने राजकुमार की जयजयकार से राजभवन गुंजा ही नहीं दिया वरन् तीव्रध्वनि से उसकी ईंटों को भी हिला-सा दिया।

क्यों न हो, चिर प्रतीक्षा और कठिनतम तपस्या के बाद जिस शिशु की आज प्राप्ति हो सकी, उस अद्भुत और अनोखे बालक को देखने की तीव्र उत्सुकता होना तो अनिवार्य है। जिस बालक की प्राप्ति की अभिलाषा ने महाराज को वर्षों तक पंचाग्नि में झुलसाया और जलाया, रानी यशोमती को महीनों उपवास और निर्जल व्रत रखवाए, सारी प्रजा को राज्य-चिंता का रोग लगा कर पीड़ित किया उसकी सहसा प्राप्ति जान कर जनता का अधीर हो उठना आश्चर्यजनक नहीं।

असंख्य नागरिकों की गगनभेदी ध्वनि से राजभवन गूंज उठा और तब महारानी अपनी चिर-रिक्त गोद में चिरचिन्तित किन्तु नवजात शिशु को लिये सतृष्ण नेत्रों से उसके शांत, सौम्य और सुन्दर मुख का रसपान करती खिड़की पर आ खड़ी हुई। महारानी के आते ही प्रजा का आनन्दसागर एक बार पुनः उमड़-उमड़ कर उछल पड़ा और उसकी भयंकर गड़गड़ाहट पृथ्वी भर में व्याप्त हो गई। इस बार जनता के जयकारों ने आकाश-पाताल एक कर दिया। सारी जनता ने शिशु राजकुमार, नहीं भावी प्रजापालक सम्राट् के दर्शन किये। तृषित आँखें तृप्त हो गईं। चिर चिन्तित चित्त को धैर्य-प्राप्ति हुई। दुखित हृदय की वेदना शांत हुई। किस्मत एक बार फिर लौट आई। जनता में नया उत्साह, नई उमंगें और आनन्द का अपार सागर ही लहरें मारने लगा।

राजभवन का तो मानों रंगरूप ही बदल गया। जहाँ पहले उदासी ने घर कर रखा था, वहाँ अब प्रसन्नता और आनन्द की लहरें दौड़ पड़ीं। जो स्थान पहले सूना-सूना लगता था, वहाँ अब नया संसार ही बस गया। जहाँ कभी महाश्मशान या तपोवन की तरह नीरवता और शांति का साम्राज्य व्याप्त रहता था, वहाँ अब दुनिया दौड़ने लगी थी।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

राज भवन में तो मेला-सा लग रहा था। कहीं वधाई देने के लिये विभिन्न देशों से आये महाराज के वन्धु-वान्धवों की भीड़, तो कहीं मित्र अथवा अधीन राजाओं या उनके प्रतिनिधियों का जमाव। कहीं नगर के प्रतिष्ठित नागरिकों का समूह और जनसाधारण का हड़कम्प। सारे राज-भवन में कुंभ पर्व का दृश्य उत्पन्न था। उस पर आगत वन्धुओं की सेवा में संलग्न दास-दासियों की दौड़-धूप ने तो उस मेले में हलचल मचा रखी थी।

एक मास तक तो यही कुंभ जारी रहा और तव जाकर उसमें कुछ शिथिलता आ पाई। शिशु के जिस रुदन, मचलने और किलकिलाने पर माता-पिता सौ-सौ बार वलि-वलि जाया करते हैं, उसकी अपूर्व प्राप्ति पर इन अभागे और निराश माँ-बाप को कितनी प्रसन्नता और हर्ष हुआ होगा, यह वे ही जान सकते हैं या कोई अन्य भुक्तभोगी। अनुमान द्वारा इसका निश्चय किया जाना कठिन है।

किन्तु इन दिनों को भी वर्षों वीत गये। अव महाराज प्रभाकरवर्द्धन इस वृद्धावस्था में अपने युवा जीवन का सुख पा रहे थे। गृहस्थी और दाम्पत्य की कली खिल उठी थी और राजा-रानी उस कली का मधुर रस पान करने में व्यस्त थे।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

: ३ :

हर्ष का उदय

चार वर्ष बाद एक नई कली का उगना आरम्भ हुआ। पौधे को सींचा जा चुका था। कली अपना रूप प्रकट करने को प्रायः तैयार-सी हो चुकी थी किन्तु उसका पूर्ण प्रादुर्भाव होने में अभी कुछ विलम्ब था। वास्तव में मुनि ने राजा को तीन संतानें होने का आशीर्वाद दिया था। रानी के गर्भवती होने पर राजभवन एक बार फिर जगमगा उठा। चार वर्ष पूर्व हुए पुत्रोत्सव के चिह्न अभी पूरी तरह मिटे भी न थे कि एक नया आनन्दसागर उमड़ पड़ा। महारानी के गर्भवती होने का समाचार अब केवल राजभवन तक ही सीमित न रहा। धीरे-धीरे नगर में इस बात की चर्चा फैलने लगी और अंत में इस चर्चा ने इतना जोर पकड़ा कि राजभवन को इस समाचार की पुष्टि की घोषणा करनी पड़ी।

घोषणा होने की देर थी कि नगर में एक बार पुनः भूकम्प-सा आ गया। प्रजा के आनन्द का क्या ठिकाना! नाचना, गाना, बजाना जोरों में प्रारम्भ हो गया। प्रजा ने उत्सवारंभ के सभी कार्य पूरे कर डाले। अब उसको विधिवत् उत्सव आरम्भ करना शेष था। सारी प्रजा और सारा राजभवन तीव्र उत्सुकता के साथ उस समय, उस दिन और उस घड़ी की प्रतीक्षा करने लगा, जब प्राची की रिक्त गोद में बालरवि का उदय होगा।

इसमें भी विवाद था। महाराज को पुत्र-प्राप्ति तो पहले ही हो चुकी थी। इस बार नगर की महिलाओं की जहाँ तीव्र इच्छा हुई कि महारानी को कन्यारत्न प्राप्त हो, वहीं असंतुष्ट पुरुष अभी एक और पुत्र पाने के अभिलाषी बने थे। इसी विषय को लेकर पति-पत्नी, मां-पुत्र और भाई-बहनों में तीव्र विवाद उठ खड़ा होता। पत्नी का निश्चयपूर्वक कहना था कि अब की बार कन्या उत्पन्न होगी तो पति महोदय विश्वास के साथ

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

कहते कि नहीं, अभी एक पुत्र और होगा तब भले ही तीसरी बार कन्या हो। स्त्री-पुरुषों के इस प्रश्न का समाधान जब आपसी विवाद से न होता तो वे ज्योतिषियों, वैद्यों और सिद्ध-महात्माओं के पास जा-जाकर पूछना आरम्भ करते। किन्तु सच्चे ज्योतिषियों और महात्माओं द्वारा जब पुत्र होने की ही भविष्यवाणी की जाती तब तो स्त्रियों को बड़ी निराशा होतीं और वे तरह-तरह की मनौतियां मानतीं तथा मंदिरों में जाकर लम्बी-लम्बी प्रार्थनाएँ करतीं कि भगवान हमारी लाज बचाये रहना, हमारी पुरुषों से लाग लगी है। इस प्रतिद्वन्द्विता में कहीं हार न खानी पड़े।

इधर पुरुष निश्चित हो रहे, क्योंकि उन्हें महात्माओं और ज्योतिषियों की भविष्यवाणी ने आश्वस्त कर दिया था और वे निश्चयपूर्वक जान चुके थे कि महारानी की भाग्यशाली गोद पुनः एक बार पुत्र-विभूषिता होगी।

होना वही था, जो विधाता की इच्छा थी। धीरे-धीरे समय बीता। नौ मास की अवधि समाप्त हुई और वह दिन भी आ पहुँचा जब कि ऐसे शिशु ने, जिसन दिग्दिगन्त-तक अपना यश-प्रताप फैलाकर इतिहास में अपना नाम अमर कर दिया, अवतार धारण कर महाराज प्रभाकर के कुल को कृतार्थ कर दिया। ज्येष्ठ का महीना था। कृष्णपक्ष की द्वादशी के दिन सायंकाल, गोधूलि के उपरांत इस प्रकाशमान् शिशु ने सारे राजपरिवार और समस्त प्रजा वर्ग के हृदय हर्षित करते हुए महारानी के गर्भ से बाहर पदार्पण किया।

बस फिर क्या था! बालक का इधर गर्भ से पदार्पण हुआ, उधर जन-जन के हृदय से आनन्द का वेगवान् आनन्द-सागर उछालें मार-मारकर बाहर उमड़ने लगा। बाहर निकल कर उस आनन्दसागर ने तो मानो आपत्ति ढाह दी। उसका वेग इतना तीव्र था कि उसमें स्त्री-पुरुष, बाल-वृद्ध और सभी नागरिक बहने लगे और किसी प्रकार भी उस वेग का प्रतिकार करने की शक्ति उनमें न थी; किन्तु वह वेग ऐसा न था कि किसी के लिये दुःखप्रद और कष्टदायक होता। वह आनन्द-सागर का वेग था जिसमें बहने के लिये तो सभी उत्सुक रहते ह।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

किन्तु नगर की स्त्रियों में आनन्द का वेग इतना तीव्र न था, जितना पुरुषों में। यद्यपि स्त्रियां इस आनन्दोत्सव में किसी पुरुष से कम योग न दे रही थीं किन्तु उनके हृदय में इस बात का दुःख अणुरूप में बना ही रहा कि महारानी को इस बार कन्या-रत्न उत्पन्न न होकर पुनः पुत्रोत्पत्ति हुई है। चाहे इसे जाति प्रेम कहा जाय या कुछ और, किन्तु राजभवन की किशोरियों के हृदय की उत्कट अभिलाषा मन ही मन उत्पन्न होकर रह गयी कि महाराजा को एक सुन्दर-सी कन्या उत्पन्न होगी। धीरे-धीरे जब वह कुछ बड़ी होगी तो सहेलियाँ बनकर वे उस के साथ तरह-तरह की क्रीड़ाएँ करेंगी और युवा होने पर उसके साथ प्रेमी-प्रेमिका के खेल रचायेंगी। अन्त में एक दिन——घर में एक छोटा-सा दुल्हा आयेगा जिसके साथ अपनी राजकुमारी को नई-नवेली दुल्हिन-सी देखकर उनकी तृषित आँखें तृप्त हो जाएँगी।

उनकी ये कल्पनाएँ मन ही में धंसी रह गईं, पड़ी रह गईं, गड़ी रह गईं। अब फिर उन्हें कौन निकालेगा, कैसे निकालेगा और कब निकालेगा, इसी की उन्हें चिंता थी। किन्तु अब तो जो होना था, वह हो ही गया। बस ही क्या था! फिर भी सहेलियाँ और नगर की अधिकांश महिलाएँ यही मनाने लगीं कि हे भगवान! इस बार तो तुमने हमारी प्रार्थना ठुकरा दी किन्तु अगली बार हम पर कृपा रखना। भगवान हमें कन्या चाहिये, सहेली चाहये, राजकुमारी चाहिये, दुल्हिन चाहिये। इसके सिवाय हम नहीं मानेंगी, नहीं मानेंगी, नही मानेंगी।

अस्तु! पुत्र उत्पन्न हुआ। यद्यपि महाराज प्रभाकर की यह द्वितीय संतान थी किन्तु अपेक्षाकृत इस बार आनन्दोत्सव अधिक धूमधाम से मनाया गया। न जाने इसमें कुछ दैवी प्रेरणा थी, जो लोगों को अधिक उत्साह, अधिक उमंग और अधिक आनन्द के साथ उत्सव मनाने की शक्ति देकर बालक के भावी सम्राट् होने की पूर्व सूचना दे रही थी। किन्तु वास्तव में किसी को ज्ञात न था कि यह द्वितीय पुत्र ही दिग्दिगन्त का विजेता महासम्राट् हर्षवर्द्धन होगा। यदि यह मालूम ही हो जाता तो फिर आनन्दोत्सव

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

का यह सब अपार सागर आकाश लांघ कर सातवें लोक पर ही न जा चढ़ता ! तब उसकी आनन्द सीमा कितनी और कहाँ तक होती, इसका सहज अनुमान कठिन ही नहीं, कठिनतम है ।

इसी अन्त:प्रेरणा ने तो महिलाओं के खिन्न हृदय के आनन्द सागर की उछालों में शिथिलता नहीं आने दी । अन्यथा वे तो निराश-हृदय हो चुकी थीं ।

उत्सव का वर्णन कहाँ तक किया जाय । कृष्णपक्ष की अंधेरी रात में राजभवन दीपमालिकाओं से इस प्रकार सजाया गया था कि शीतल चन्द्रमा की कौन कहे, वहाँ रात्रि में मानो तेजस्वी सूर्य ही जगमगाने लगा था । दूर-देश से आनेवाले पथिकों को तो बल्कि भय मालूम होने लगता था । दूर से देखने पर ऐसा मालूम होता कि मानो राजभवन अग्नि की भीषण लपटों की चपेट में आ रहा हो । एक ओर असंख्य दीपों का तीव्रतम प्रकाश, उस पर सुवर्ण-रत्न-जटित संगमरमर से निर्मित राजभवन की अट्टालिका के विभिन्न भाग । दीपों के प्रकाश से वे रत्न इस प्रकार जगमगा रहे थे कि दर्शकों की नेत्रावली उस अट्टालिका पर अटकी रह जाती ।

राजभवन ही नहीं, समस्त राजमार्ग और राजधानी के सारे बाजार और गली-कूचे दीपमालिकाओं के सुन्दर हार पहने सजे-सजाये खड़े दर्शकों के मनोहरण का अपूर्व साधन बन रहे थे । यही नहीं, कहीं आतिशबाज अपनी आकाशभेदी आतिशबाजियों का प्रदर्शन करते दिखाई देते थे । कहीं तमाशगीर अपने विभिन्न जादू के खेल दिखाकर लोगों, विशेषकर बच्चों को मुग्ध किये गलियों में भीड़ लगाये खड़े दीख पड़ते और कहीं सैनिकों के दल अपनी तलवारों, भालों और विभिन्न शस्त्रों के दाँव-पेंच दिखाते प्रतियोगिता करते दीख रहे थे । अभिप्राय यह कि सारा नगर तहर-तरह के उत्सवों का घर बन रहा था ।

स्थान-स्थान पर भंडारे हो रहे थे । कहीं गरीबों को भोजन-वस्त्र बाँटा जा रहा था। कहीं साधुओं और भिखारियों को भिक्षाएँ दी जा रही थीं और कहीं ब्राह्मणों को बड़ा-बड़ा दान दिया जा रहा था । इस

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

प्रसन्नता में महाराज ने कारागारों के द्वार खोल डाले । सभी बन्दियों को चिरप्रतीक्षित मुक्ति मिली । वे नवजात शिशु को ग्राशीर्वाद देते हुए कारागार के द्वार से भाग-भागकर यों निकले जैसे भूखे सिंह पिंजड़े से । महाराज प्रभाकरवर्द्धन के द्वार पर ब्राह्मणों, भिक्षुकों ग्रौर गरीबों को इस प्रकार मुक्तहस्त दान मिलने लगा कि कोषाध्यक्षों को चिंता होने लगी कि कहीं महाराज सारा कोषागार ही न लुटा दें । किन्तु जो राज्य सत्य, न्याय ग्रौर धर्म द्वारा पालित हो वहाँ का कोषागार भला खाली हो सकता था ! उस कोषागार में तो स्वयं महारानी लक्ष्मी का वास था । उस ग्रटूट खजाने को तीस दिन तीस रात तक निरन्तर लुटाते रहने पर भी उसमें तनिक भी न्यूनता दिखाई नहीं दी ।

कोषागार तो लुटाये ही गये, किन्तु राजाज्ञा से सजे-सजाये बाजारों की पंक्तियों की पंक्तियां भी लुटा दी गईं । किसी बाजार में सुन्दर-सुन्दर पक्वान्नों, मिष्ठानों के ढेर लगे थे किन्तु दुकानदार वहाँ से हटा दिये गये थे । जिसकी जितनी इच्छा हो मधुर मिठाई ले जाए ग्रौर ग्रपने परिजनों को जाकर बाँटे । इस लूट से जनता ने विशेषकर गरीबों ने ग्रत्यधिक लाभ उठाया। जिसको देखो झोलियाँ भर-भरकर सुन्दर मिठाइयाँ उठाये लिये जा रहा है । कोई मिठाइयों की लूट के लिये बहुत से टोकरे ही उठा लाया है किन्तु उसे रोकनेवाला कोई नहीं । जिसे कुछ नहीं मिला वह ग्रपनी धोती का पल्ला खोलकर उसमें रसगुल्ले, बालूशाही, इमरती ग्रौर कलाकन्द भर कर लिये जा रहा है । ग्रभिप्राय यह कि बाजार में मिठाइयों की लूट, पूरी लूट जिसे वास्तव में लूट कहना चाहिये, मच गई थी ।

मिठाई का बाजार ही क्यों, गृहस्थी के ग्रन्य ग्रावश्यक सामानों के बाजार भी लुटाये गये । किसी को वस्त्र की ग्रावश्यकता हुई तो वह वस्त्र की दूकान से वस्त्र के थान के थान उठा लाया । किसी को बर्तनों की ग्रावश्यकता पड़ी तो वह दौड़ा-दौड़ा गया ग्रौर टोकरा भर कर कटोरियाँ, थाली, लोटे, करछुल ग्रौर पतीलियाँ ही उठा लाया । जिन गरीबों

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

को रूखे-सूखे टुकड़ों के अतिरिक्त कभी और कुछ भी उपलब्ध न था, उन्हें आज दुर्लभ मधुर मिष्ठान्नों के ढेर के ढेर मिल गये, जिन्हें वे महीने भर निरन्तर खाते रहें, तो भी समाप्त न हों। जिन अर्धनग्न भिक्षुकों को फटे-पुराने, मैले, दुर्गन्धपूर्ण वस्त्रों के अतिरिक्त और कुछ भी प्राप्त न था, उन्हें आज सुन्दर राजोचित बहुमूल्य वस्त्र पहना कर यशस्वी राजा ने उनके भाग्य की अमिट रेखा भी मिटा दी। जिस दरिद्र गृहस्थ को टूटे-फूटे मिट्टी के बर्तनों में अधपका भात और अधजली रोटी खाने को मिलती थी, उसे आज बाजारों की लूट में इतने बहुमूल्य पीतल, चाँदी और सुवर्ण तक के बर्तन मिल गये, जिनमें सुन्दर पक्वान्न खाकर उसकी आत्मा राजा को शत-शत आशीर्वाद दे रही थी।

इस आनन्दोत्सव में स्वामी एवं सेवक, विद्वान तथा अनपढ़, छोटे और बड़े, सुरासेवी एवं संयमी, भद्रा कुमारियों तथा कुरूप वृद्धा स्त्रियों के बीच कोई भी भेदभाव न रहा। सभी अपनी-अपनी मस्ती में इस प्रकार भूल रहे थे कि स्वामी को न अपने सम्मान का ध्यान था और न सेवक को अपने दासत्व का। कहीं विद्वान मूर्खों की मंडली में बैठ कर ही आनन्दोत्सव मनाने में संलग्न थे तो कहीं बड़े-बूढ़े अपना वृद्ध समाज न खोज कर बच्चों के साथ ही नाच-गा रहे थे। कहीं-कहीं तो मद्यप लोग संयमी पंडितों की मंडली में आ घुसे; किन्तु उन्होंने उन सुरासेवियों को आने से इसलिये नहीं रोका कि आज का आनन्द सब के लिये, प्रत्येक छोटे-बड़े नागरिक के लिये समान था। जहाँ सोलह शृंगार किये षोडशी युवतियों को अपने साथ की सहेलियों का झुंड नहीं मिला, वहाँ उन्होंने वृद्धाओं के घेरे में जाकर ही नाचना-बजाना आरम्भ कर दिया। अभिप्राय यह कि किसी को किसी का भेदभाव नहीं रहा। सब सुध-बुध खोये आनन्द-सागर में डुबकियाँ मार रहे थे। किसी को किसी का पता नहीं था कि कौन क्या कर रहा है।

जन्मोत्सव के बाद बारहवाँ दिन आया। शिशु का नामकरण किया जाने लगा। राजज्योतिषों ने शिशु के नामकरण का आदि अक्षर 'हकार'

२

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

बतलाया । इस पर माता से पूछा गया कि उनके हृदय में अपने प्रिय पुत्र का नाम कौन-सा जंचता है ?

मां को ये सब सभ्य नाम भला क्योंकर अच्छे लगते ! हरिया, हनुआ, हरमन जैसे दुलार भरे नामों में किसी मां का जो प्यार छिपा रहता है, वह भला हर्षवर्द्धन, हरिवर्द्धन, हनुमतवर्द्धन में कहाँ से दिखलायी दे । किन्तु बालक की मां न केवल मां ही थी, वरन् एक राग्य की राज्यमाता भी थी । उसने अपने पति के हर्षवर्द्धन नाम के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया और वह अज्ञात भावी सम्राट बालक हर्ष के नाम से पुकारा जाने लगा ।

नामकरण के बाद शिशु अपने वास्तविक अस्तित्व में आया । बड़ा भाई राज्यवर्द्धन भी अपनी मां की गोद का अधिकार किसी दूसरे के द्वारा छीन लिये जाने से उससे एक प्रकार से सौतियाडाह करने लगा । किन्तु था तो वह आखिर भाई ही न ! एक वीर्य से उत्पन्न भाई में सहज प्रेम होना स्वाभाविक था । चारवर्षीय राज्यवर्द्धन को अपने साथ खेलने के लिये एक मित्र की प्राप्ति हुई । अथवा यों कहें कि नन्हा-सा एक खिलौना मिल गया । हर्ष के कुछ बड़े होने पर राज्यवर्द्धन की बाल-क्रीड़ाएँ आरम्भ हुईं । आंगन में जब दोनों विविध खेल रचाते उस समय माता-पिता के तृषित नेत्रों को कितनी शांति मिलती, यह कहना कठिन है । दोनों शिशुओं के आपस में झगड़ने पर जब मां उनका झगड़ा निपटाने के लिये मध्यस्थ के रूप में पीढ़े पर बैठ दोनों के बेतुके झगड़े सुनती, तो उसे क्या ही आनन्द मिलता, इसका सही वर्णन कोई मां ही कर सकती है । धूल-मिट्टी में लोटने-पोटने के बाद दौड़ते-दौड़ते दोनों बालक जब सिंहासन पर विराजमान अपने पिता की गोद में जा चढ़ते, उस समय वह राजाधिराज पिता उनके धूल भरे वस्त्रों की परवाह न कर किस प्रकार उन्हें गले से लगा कर चूम लेता, इस आनन्द का वर्णन क्या सहज है ?

—:०:—

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

: ४ :

बहन राज्यश्री का जन्म

प्राणप्रिय शिशुओं की बाल-क्रीड़ा का आनन्द भोगते प्रौढ़ दम्पति के कई वर्ष बीत गये । जो घर सूना था, उसका सूनापन भाग चुका था और वहाँ बालकों की किलकिलाहट और रुदन, झगड़े और ऊधम ने एक नया संसार बसा दिया था । स्त्री-पुरुष जिस दुनिया का दर्शन पाने के लिये कठोर परिश्रम किया करते हैं, वह आज भाग्यवान् राजा-रानी को सुलभ हो रहा था । उनकी सभी चिंताएँ दूर हो चुकी थीं, सभी कष्ट, दुःख न जाने कहाँ लुप्त हो गये थे । नन्हें बालकों की सुन्दर-सुन्दर क्रीड़ाओं में वे अब सुखपूर्वक अपनी प्रौढ़ावस्था बिता रहे थे । इसी बीच तीसरे वर्ष एक और घटना, दुर्घटना, नहीं नहीं सुघटना घटित हुई। राजा को भगवान् आदित्यनारायण ने तीन संतानें होने का वरदान दिया था । अभी तो दो ही संतानें उत्पन्न हुई थीं । तब ! तब क्या ? एक बार फिर वसंत ऋतु के मादक पावन ने पति-पत्नी की मुरझाई कलियों को विकसित कर दिया । यद्यपि राजा-रानी की प्रौढ़ावस्था भी पार हो रही थी, किन्तु भगवान् के वरदान ने दोनों के ढीले यौवन में पुनः उभार लाना आरम्भ किया । पति-पत्नी को एक नये जीवन का अनुभव होने लगा । जिस राजा की सांसारिक तृष्णाएँ समाप्त-सी हो चुकी थीं, उसका मन पुनः डोलने लगा । उसका वृद्ध शरीर नवयुवकों की तरह चंचल हो उठा ।

पत्नी ने शुभघड़ी में गर्भ धारण किया । कितना सुख, कितना हर्ष और आनन्द भरा समय था वह ! जिस अभागे दम्पति को एक भी संतान न थी । प्रयत्न कर-कर के जो हार चुके थे । आज तीन-तीन संतानें मिल गईं । भला इससे बढ़ कर और आनन्द एवं सुख क्या हो सकता है ? किसी गृहस्थी के लिये संसार का सबसे बड़ा सुख, आनन्द और ऐश्वर्य

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

यही है कि उसके घर में एक छोटा-सा बालक हो, जो इधर-उधर गिरता-पड़ता, खेलता और ऊधम मचाता फिरे। इसी सुख के लिये कौशल्या-दशरथ ने बड़ी-बड़ी तपस्याएँ कीं, नन्द-यशोदा ने सहस्रों वर्षों तक कठिन-तम तप किये। केवल इसी सुख के लिये! एक छोटा-सा नन्हा हो! गोद में पड़ा-पड़ा रोने लगे तो मां उसके मुंह में झट स्तन पकड़ा कर उसे चुप करा दे। कहीं वह खेलते-खेलते गिर पड़े तो माता-पिता चट दौड़ कर उठा लें और छाती से चिपका लें। कहीं नन्हे-से लाल को चोट न आ जाय! उसे किसी प्रकार का कष्ट न हो। रात-दिन प्रतिक्षण बालक का ध्यान! उसी की सेवा। वह मां की गोद में मूत दे, टट्टी कर दे, कपड़े खराब हो जायँ; किन्तु मां को क्लेश नहीं होता, क्रोध नहीं आता। रात को सोते-सोते नन्हें बालक को भूख लग जाय और वह रोने लगे, तो मां अपनी मीठी नींद त्यागकर भी बालक को मिठाई ला देती है। उसे इन सब में कष्ट का अनुभव नहीं होता, बल्कि सुख मानती है। पता नहीं इसमें क्या सुख है? इतना कष्ट देने पर भी बालक से प्यार, ममता और प्राणों से अधिक मोह! उससे सुख, अत्यधिक सुख मिलता है तभी न? वास्तव में यह सुख है। गृहस्थी का वास्तविक सुख, आनन्द और सर्वस्व यही है। इसी सुख की प्राप्ति के लिये तो इस वृद्ध पिता ने सूर्यनारायण की कठिनतम तपस्या की थी। वही सुख आज उसे प्राप्त हो रहा है। दो सुन्दर बालक उसे प्राप्त थे ही, अब तीसरी और अंतिम संतान भी उसे प्राप्य होने का सौभाग्य मिल गया।

इस बार भी स्त्री-पुरुषों में होड़ लगी थी। दोनों वर्ग अपनी-अपनी जाति से प्रभावित थे और चाहते थे कि रानी को उसी की समजाति का शिशु उत्पन्न हो। पुरुष चाहते कि पुत्र हो और स्त्रियों की तो पुरानी इच्छा कन्या उत्पन्न होने की थी ही। किन्तु इस बार पुरुषों की इच्छा प्रबल नहीं रही। दो-दो बार उनकी हार्दिक इच्छाएँ पूर्ण हो चुकी थीं और उनके अनुकूल राजपुत्र उत्पन्न हो चुके थे। उनका मन भर चुका था इसलिये उनकी होड़ में उत्साह नहीं रह गया था। देखा गया है कि

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

जो कार्य उत्साहपूर्वक किया गया हो, उसी में सफलता मिलती है और जिसमें उत्साह न हो एवं कार्य आरम्भ करते समय ही यह सन्देह उत्पन्न होने लग जाय कि सफल होगा अथवा नहीं, तो वह कभी सफल नहीं होता। यही स्थिति पुरुषों की थी। पुरुषों के हृदय में सन्देह उत्पन्न हो चुका था कि हो न हो, कहीं इस बार कन्या ही उत्पन्न हो। वास्तव में पुरुषों की इस संदिग्ध अवस्था से लाभ उठा कर ही स्त्रियों ने बाजी मार ली। वैसे स्त्रियों का मंदिरों में मनौती मानना, ज्योतिषियों, विद्वानों तथा महात्माओं से पूछना जारी रहा; किन्तु उनके हृदय में विश्वास जम चुका था कि भगवान इस बार उनकी प्रार्थना अवश्य सुनेगा। दो-दो बार उसने इन निगोड़े मर्दों की प्रार्थनाएँ स्वीकार कर हम अबलाओं की एक न सुनी, किन्तु इस बार तो उसे दया आ ही जायगी। महिलाओं के अटल विश्वास ने वास्तव में ईश्वर को भी झुका दिया तथा उसे भी उनकी प्रार्थना पर ध्यान देना पड़ा, और—

और नौ मास की अवधि बीतने पर महारानी यशोमती ने जिसे शिशु को जन्म दिया, वह थी सुन्दर, सलोनी कन्या! बस फिर क्या था? स्त्रियों ने पहाड़ सिर पर उठा लिया। उनकी जीत हो गयी। पुरुषों को उनसे हार खानी पड़ी। क्या कहने थे इस बार स्त्रियों के! वे इस प्रकार घूर-घूरकर अपने पति, पिता, पुत्र और भाइयों को देखती थीं, मानो वे इस घमंड में पुरुषों को कहीं रहने ही न देंगी। उनकी जीत हो चुकी थी जीत! उनके पैर भला क्योंकर धरती पर पड़ते?

कन्या के उत्पन्न होने का समाचार नगर में फैलना था कि घर-घरमें स्त्रियां नाच उठीं। आनन्द से उछल पड़ीं। इस आनन्द में भी पुरुषों ने भाग लिया किन्तु इस पर स्त्रियां उन्हें ताने मारतीं—'तुम काहे नाचते हो? कोई तुम्हारा लड़का थोड़े ही जन्मा है? मालूम नहीं तुम्हें? इस बार हमारी जीत हुई।'

पुरुष बेचारे क्या करें? वास्तव में उनकी पराजय हुई थी। उन्हें स्त्रियों के सभी ताने सुनने और सहने ही पड़े। यह उत्सव अधिकतर

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

स्त्रियों ने ही मनाया । स्त्रियों का यह आनन्दोत्सव अपेक्षाकृत सुन्दर और भव्य था । घर-घर में, गली-गली में, कूचे-कूचे में स्त्रियों के रागरंग ही सुनाई और दिखाई पड़ते थे । इस आनन्दोत्सव में स्त्रियाँ पागल-सी हो उठी थीं । जहाँ देखो वहीं स्त्रियों के झुंड के झुंड ही दिखाई पड़ते । झुंड गाते-बजाते मंदिर की ओर जा रहे हैं, तो कहीं स्त्रियों की टोलियाँ बधाई देने के लिये राजभवन की ओर तीव्रता से बढ़ी चली जा रही है । हर घर में, हर मुहल्ले में नाच-गाना, बजाना, कीर्तन, भजन और मंगलगीत ही सुनाई पड़ते थे । किसी घर में ढोलकियों पर थपाथप हाथ पड़ते और वे बेचारी जोर-जोर से गा रही थीं । कहीं सामूहिक गान में निरन्तर गाते-गाते स्त्रियों के गले इस प्रकार बैठ गये थे कि उनकी सुरीली आवाज पुरुषों के समान सुनाई पड़ने लगी थी । बाहर से सुननेवाला यही समझता था कि या तो पुरुष गा रहे हैं या हिंजड़े ! किसी घर में नृत्यों का जोर-शोर था । कोमलांगी युवतियों के सामूहिक नृत्यों ने नाचते-नाचते अट्टालिकाओं में भूकम्प-सा ला दिया था । ऐसा लगता था कि कहीं भवनों की छतें ही न बैठ जायँ, किन्तु इतना होते हुए भी स्त्रियों का जोश ठंढा न हुआ । वे निरन्तर अपने चिरचिन्तित उत्सव में लगी रहीं ।

इधर राजभवन की नवयुवतियाँ अपनी प्रिय सहेली पाकर अपार आनन्द से नाच-नाच उठीं । उनके मनोरथ पूर्ण हुए । उनका जीवन सार्थक हो गया । इधर महारानी को कन्या उत्पन्न हुए अभी चार दिन भी नहीं बीते कि उधर सहेलियों में आगामी कार्यक्रम बनने आरम्भ हो गये । कुछ सहेलियाँ राजकुमारी के लिये गुड़िया बनाने में ही व्यस्त हो गईं कि जब राजकुमारी बड़ी होगी तो वे उसके साथ गुड़ियों का खेल खेलेंगी । कुछ सहेलियाँ राजकुमारी के विवाह की तैयारियाँ करने में ही लग गईं । उनमें कोई दूसरों को हाथ से मढ़ी हुई साढ़ी दिखला कर कहती—'जब मेरी परम प्रिय राजकुमारी का ब्याह होगा तो मैं यह साड़ी भेंट में दूंगी ।' दूसरी कोई सुन्दर आभूषण ही ले आई । तीसरी अपने हाथ से कढ़ा रेशमी रूमाल ही ले आई, तो चौथी सोने के सितारों से जड़ी चोली ही

6 Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

लेतीं आई—'यह इतनी मजवूत है कि राजकुमारी अपने उभरते जोवन को इसमें कस कर बांध सकेंगी जिससे वह उनके कावू में रह सके।' पाँचवीं को कुछ नहीं मिला तो एक सुवर्णजटित प्याला ही उठा ले आई—'राजकुमारी एकान्तवास के समय अपने प्राणेश्वर को इसमें सुरापान करायेंगी।' छठी को एक नई सूझ आई। वह वहुत ही सुन्दर घघरा ले आई—'राजकुमारी अपने पति के घर में यह घाघरा पहनकर छमछम करती जिधर से निकल जायँगी, वहाँ विजली कौंध पड़ेगी। उस उस समय उसके सौंदर्य पर सौ-सौ मदन वलिवलि जायँगे।' सातवीं राजकुमारी के लिये वह अनुपम वस्तु लाई कि सभी सहेलियाँ उसके सामने मात खा गईं। वह एक सुन्दर महीन गुलावी आंचल ले आई –"जव एकांत में खड़ी मेरी राजकुमारी यह आंचल ओढ़े घूंघट में से तिरछे नयनों द्वारा अपने अनुभव-शून्य नवविवाहित पति पर कटाक्षवाण का वार करेंगी तो वह वेचारा अल्हड़, कामिनियों के क्रीड़ारहस्यों से अनभिज्ञ, 'हाय' कह कर छाती न पीट उठेगा?'

सारी सहेलियों ने इस सातवीं का लोहा मान लिया और इसका 'घूंघट' का उपहार सर्वोत्तम ठहराया गया। यह थी आतुरता और उत्सुकता उन सहेलियों की। भला वताइये, अभी कन्या को उत्पन्न हुए चार दिन भी नहीं वीते और यहाँ उसके विवाहोत्सव की तैयारियाँ भी कर डाली गईं। उसके लिये भेंट उपहार भी निश्चित हो गये। वेचारी सहेलियाँ करतीं भी क्या? सारा दिन खेलने-कूदने के अतिरिक्त न काम न काज। चंचल-प्रवृत्ति नवयुवतियों को विवाह के पूर्व और काम रहता भी क्या है। इधर-उधर खेलना, सहेलियों से गप करना या वैठ के गुड़ियों का विवाह रचना। किसी में यदि अधिक भावुकता हुई, तो वह एकान्त में वैठ कर अपने भावी पति का हृदयपट पर चित्रण ही करती। यही सव तो काम हैं लड़कियों के!

अस्तु, कन्या के जन्मोत्सव में भाइयों के जन्मोत्सव से कम आनन्द और हर्ष नहीं मनाया गया। कन्या का सर्व सम्मत नाम रखा गया

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

'राज्यश्री' । इसमें किसी को विरोध नहीं हुआ । राज्यश्री की उत्पत्ति से मानो राजा के सभी मनोरथ पूरे हो गये । राजा ही क्यों, महादेवी यशोमती, सारा राजपरिवार और समस्त प्रजावर्ग की इच्छाएँ पूरी हो गईं । महाराज प्रभाकरवर्द्धन की वृद्धावस्था से चिन्तित हो जो लोग वर्षों से राज्य के उत्तराधिकारी की उत्पत्ति की बाट जोह रहे थे, प्रति क्षण, प्रतिपल जिनका चिन्तनीय विषय यही था, उन्हें आज एक नहीं, दो-दो राजपुत्र प्राप्त हो गये । उनके मन की सभी चिन्ताएँ और वेदनाएँ दूर हो गईं । वे लोग अब निश्चिन्त हो रहे । जिन स्त्रियों को जातिप्रेम के कारण राज-कन्या-प्राप्ति की बड़ी लालसा थी और इसके लिये जो अहर्निश समस्त देवी-देवताओं को मनाती फिरती थीं, उनके भी मनोरथ पूर्ण हो गये, उनके भी हृदय का भार हल्का हो गया । सूर्यनारायण के वरदान के अनुसार राजा को तीन संतानें प्राप्त हो चुकी थीं । अब राजा को और कोई चिन्ता न थी । सभी प्रसन्न थे, आनन्दमग्न थे ।

: ५ :

कल्लोल क्रीड़ाएँ

राजपुत्र अपनी बोधावस्था को प्राप्त हो चुके थे । अब उन्हें राजोचित शिक्षा देना आवश्यक था । बड़ी तपस्याओं के बाद राजा-रानी संतान का मुख देख सके थे। इसलिये उनका उन पर अत्यधिक स्नेह था । एक क्षण के लिये उनका आँखों से ओझल होना माता-पिता के लिये सह्य न था, अतः राजभवन में ही बालकों की शिक्षा का प्रबन्ध किया गया । महाराज की आज्ञा से राजभवन के एक कक्ष में ही विद्यालय की स्थापना कर दी गई, जिससे राजपरिवार के समस्त बालक वहाँ शिक्षा पा सकें ।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

अकेले पढ़ने में उनके दोनों लाडलों का मन न लग पायेगा । इसी विचार से राजभवन में विद्यालय स्थापित किया गया ।

दोनों बच्चों को पढ़ाने के लिये राज्य के सुयोग्य विद्वान शिक्षक की नियुक्ति हुई । आरम्भ में रानी यशोमती के लाडलों की तोतली वाणी ने वर्णमाला का अभ्यास किया । अपने नन्हों के छोटे-छोटे गोल-गोल मुंह से 'क' माने कबूतर और 'ख' माने खरगोश का पाठ सुनकर माता-पिता आनन्दमग्न हो उछल पड़ते । धीरे-धीरे बालकों को लिखने का भी अभ्यास कराया गया । लिखने की काली तख्ती और खड़िया-मिट्टी लेकर जब राज्यवर्द्धन और हर्षवर्द्धन अपने छोटे-छोटे सुकोमल हाथों से उस पर टेढ़े-मेढ़े अक्षर बनाते और अपने हाथ खड़िया मिट्टी में भर लेते उस समय राजा-रानी की प्रसन्नता का ठिकाना न रहता । होनहार बालकों ने अल्प काल में ही अपनी आरंभिक शिक्षा समाप्त कर दी । अब उन्हें उच्च शिक्षा दी जाने लगी । गुरुओं ने प्रथम उन्हें व्याकरण-शास्त्र का ज्ञान कराया । यद्यपि व्याकरण के कठिन सूत्रों का ज्ञान करना सरल कार्य नहीं था किन्तु कुशाग्र बुद्धि बालकों ने इसमें भी अधिक समय नहीं लगाया । छोटे भाई हर्ष ने तो बहुत शीघ्र व्याकरण का पूर्ण पाण्डित्य प्राप्त कर लिया । इसी प्रकार निरन्तर अध्ययन करते हुए दोनों राजकुमारों ने कई वर्षों में शिल्प विद्या, चिकित्साशास्त्र, तर्क, न्यायशास्त्र तथा अध्यात्मविद्या का गंभीर अध्ययन किया और उनमें कुशलता प्राप्त कर ली ।

अब अंतिम विद्या थी जिसका ज्ञान करना प्रत्येक राजपुत्र के लिये अत्यन्त आवश्यक ही नहीं अनिवार्य होता है, वह थी शस्त्रविद्या । किन्तु इसके ज्ञान में भी कुशल राजकुमारों को विलम्ब नहीं हुआ । दोनों राजकुमारों को कुशल सेनापति शस्त्रविद्या सिखाते, बाण चलाने में दोनों अति शीघ्र पारंगत हो गये । हर्ष का निशाना इतना अचूक होता कि सुई जैसी पतली वस्तु भी उसके चलाये बाण से बच न पाती । इसी प्रकार तलवार, भाला और उपयोगी शस्त्रों को चलाने में राजकुमार निपुण हो चुके थे । राजकुमारों को शस्त्राभ्यास का इतना शौक हो गया था कि

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

निरन्तर शस्त्र चलाते-चलाते उनकी हथेलियों पर गड्ढे पड़ गये और उनके हाथों का गोरापन नष्ट-सा हो गया। शस्त्रविद्या के अतिरिक्त राजकुमार व्यायाम करने में भी दक्ष थे। व्यायाम के निरन्तर अभ्यास ने उनके शरीर बहुत पुष्ट और बलिष्ठ बना दिये। इस प्रकार सर्वविद्यासम्पन्न, सर्वगुणोपेत राजकुमारों ने शीघ्र ही युवावस्था में प्रवेश किया।

इधर राजकुमारी राज्यश्री भी बड़ी हो चुकी थी और उसने भी स्त्रियोचित शिक्षाएँ ग्रहण कर कुशलता प्राप्त कर ली थी। उसने नृत्य एवं संगीत कला का अच्छा अभ्यास कर लिया था। चित्रकला में तो वह इतनी निपुण हो चुकी थी कि उसकी तूलिका में सजीवता नाचने लगती। अल्पावस्था में ही समस्त शास्त्रों एवं पुराणों का गंभीर अध्ययन कर राज्यश्री ने अपनी कुशाग्र बुद्धि का परिचय दिया। इसी बीच महारानी यशोमती के भाई मालवनरेश देवगुप्त का एक दूत नरेश के अष्टवर्षीय पुत्र भांडी के साथ महाराज प्रभाकरवर्द्धन के यहाँ आया। मालवनरेश ने अपने संदेश में कहलाया था कि वह अपना पुत्र भांडी महाराज प्रभाकरवर्द्धन के दोनों पुत्रों की सेवा को अर्पित कर रहा है। महाराज ने मालवनरेश की यह सजीव भेंट स्वीकार कर ली और बदले में बहुत से रत्न और सुवर्ण कलश दूत द्वारा मालवनरेश को भेज दिये।

भांडी भी बहुत मिलनसार बालक था। राज्यवर्द्धन और हर्षवर्द्धन के साथ कुछ दिनों में ही वह इस प्रकार हिल मिल गया मानों उनसे पुरानी गहरी मित्रता हो।

इसी के कुछ दिनों बाद मालवनरेश ने पुनः एक और सजीव भेंट भेज दी। उसने अपने दोनों सौतेले छोटे भाई माधवगुप्त और कुमारगुप्त को भी भेंट स्वरूप महाराज प्रभाकरवर्द्धन के दरबार में भेज दिया। महाराज इन दोनों बालकों को पाकर जहाँ प्रसन्न हुए वहाँ आश्चर्यचकित भी। आखिर मालवनरेश इस प्रकार अपने राजकुमारों की भेंट देकर उन्हें इतना प्रसन्न क्यों कर रहा है? अवश्य ही इसमें कुछ चाल है। एक पूर्वविजित शत्रु, जो बलपूर्वक दबा कर मैत्री स्थापित करने

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

को बाध्य किया गया, उसके द्वारा इस प्रकार दी गई भेंट में रहस्य अवश्य था। राजा इसको कुछ-कुछ समझ रहे थे, किन्तु उन्होंने दोनों बालकों को ग्रहण करने में आनाकानी नहीं की।

राजकुमारों की शिक्षा समाप्त होने से जहाँ महाराज प्रभाकरवर्द्धन की चिन्ताएँ दूर हुईं, वहाँ राजकुमारी राज्यश्री के सयानी होने से नई चिन्ताएँ भी उत्पन्न हो उठीं। सयानी कन्या कब तक घर में बैठाई जा सकती है? उसके लिये योग्य वर ढूँढ़ निकालना राजा के लिये एक नई समस्या थी। अब राजा निरन्तर इसी चिन्ता में डूबा रहता। इस जीवन का कौन भरोसा? कब चला-चली की तैयारी हो जाये। राजकुमार तो फिर भी प्रायः अपने पैरों पर खड़े होने योग्य हो चुके हैं, किन्तु कन्या को तो किसी न किसी किनारे करना ही होगा। शास्त्र-मर्यादा के अनुसार जो पिता अपने जीवित रहते अपनी युवती कन्या का विवाह नहीं कर डालता, उसे घोर नरक का भागी होना पड़ता है। यही चिन्ता राजा और रानी को भी खाये जा रही थी।

लड़की अब पूर्ण सयानी हो चुकी थी। भारतीय कन्याओं को कम आयु में ही युवावस्था के लक्षण आ घेरते हैं। राजकुमारी तो भला ग्यारह वर्ष की हो चुकी थी। उसके नयनों में युवावस्था की सहज लाज के साथ-साथ चांचल्य आदि गुणों का भी प्रवेश हो चुका था। बाल्यावस्था का चांचल्य छोड़ कर उसकी गति राजहंस की मंद चाल का अनुकरण करने का अभ्यास करने लगी थी। उसके शरीर के अंग-प्रत्यंग में यौवन निखरने और उभरने लगा था। वह अब नवयुवती का पूर्ण रूप धारण कर चुकी थी।

नटखट सहेलियों के साथ राज-उद्यान में पायल की छम-छम ध्वनि से पक्षियों के एकांत चहकने-फुदकने में विघ्न डालती राजकुमारी राज्यश्री विभिन्न क्रीड़ाएँ करती घूमती फिरती। कभी उस का मन संगीत-लहरियों से नाचने लगता, तो कभी वह मधुर गीत गाना चाहती और इसके लिये ज्यों ही कुछ गुनगुनाने लगती कि सहेलियों का जमघट उसे आ घेरता। राजकुमारी घबराकर मुँह बन्द कर लेती। नया-नया यौवन

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

था, संभाले संभलता नहीं था । किन्तु बेचारी को यह भी पता नहीं था इस यौवन का उपयोग क्या हो ? हृदय से अन्तर्प्रेरणाएँ होतीं—'नाचूँ, गाऊँ, किसी प्रेमी को प्रेम के गीत सुनाऊँ किन्तु निगोड़ी सहेलियाँ तो एक पल मेरा पीछा नहीं छोड़तीं । मैं बैठूँ तो मेरे साथ, उठूँ तो मेरे साथ । जहाँ जाऊँ, वहाँ मेरे पीछे; कोई काम करूँ तो मेरे पीछे लगी रहती हैं ये सब । आखिर किसी से अपने मन की बात अकेले में कहूँ तो कैसे ?'—बेचारी अनजान, अल्हड़ राजकुमारी की आत्मा रो पड़ती । अभी यौवन से नया-नया पाला पड़ा है । वह क्या जाने इसे कैसे संभाला जाता है ? जो कुछ समझ में आता भी है, उसे ये पिछलग्गू करने ही नहीं देतीं । हाय परमात्मा ! राजकुमारी घबरा जाती—'चलो हटो यहाँ से । हर समय मेरे पीछे क्यों लगी रहती हो ?'

'हमारे बिना आपका अकेले मन लगेगा ?' एक नटखट सहेली ने पूछा ।

'हाँ, हाँ लगेगा ! केवल तुम ही हो मेरा मन बहलानेवाली ?' राजकुमारी कह बैठी ।

'अच्छा तो कोई और भी है ? हम भी तो नाम सुनें उसका ? कोई छलिया तो नहीं है ?' कई सहेलियाँ एक साथ बोल पड़ीं ।

अब राजकुमारी को अपनी भूल समझ में आई कि वह क्या कह गई ? 'तुम्हारा सर ! मैं अपने आप से बातें करूँगी । समझीं ! अब भाग जाओ यहाँ से ।'

'अपने आप से बातें करेंगी ? ओ ! तो दिल में ही कोई बैठा जान पड़ता है ?' एक चतुर सहेली ने कहा ।

'तुम नहीं मानोगी ! तुम्हारे दिल में बैठा होगा, मेरे दिल में तो केवल मैं ही हूँ ।'

'तो बातें किससे करोगी ?'

'अपने आप से ?'

'अच्छा ! अब अच्छी तरह समझ गईं ।'

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

'अच्छा समझ गई की बच्ची, यहाँ से जाती हो या मैं उठूँ।' राजकुमारी क्रोध में खड़ी हो गई।

'अच्छा हम जाती हैं राजकुमारी जी! किन्तु देखियेगा! अकेले में कहीं आपको दुष्ट चंचल भँवरे तंग न करने लगें!'

और सब सहेलियाँ भागकर पास के झुरमुट में जा छिपीं। यह थी, यौवन क्रीड़ा की एक झांकी। यहीं से यौवन की पहली सीढ़ी आरम्भ होती है। राजकुमारी उस सीढ़ी पर पाँव रख चुकी थी।

कहीं राजकुमारी ने एकांत देखा, तो तूलिका उठा कर चित्र बनाने जा बैठी। उंगलियाँ नाचने लगीं। साथ-साथ मन भी नाचने लगा। दोनों का मधुर नृत्य समाप्त हुआ तो क्या देखा, सामने सुन्दर राजकुमार का चित्र विद्यमान है। राजकुमारी घबरा उठी, कोई देख न ले। चित्र में अभी रंग भरना शेष था। चुपके-चुपके वह यह कार्य करने लगी, किन्तु छाया की तरह पीछे-पीछे रहनेवाली सहेलियों को इसकी गन्ध लग गई। वे खोजती-खोजती वहाँ तक आ ही पहुँचीं और दूर से जब राजकुमारी को चित्र बनाते देखा तो उन्हें भेद समझते देर न लगी। एक चतुर सहेली दबे पांव धीरे-धीरे वहां तक गई और पीछे से चित्र का रूप-रंग देखा। देखते ही उसका हृदय नाच उठा कि आज राजकुमारी के साथ अच्छा विनोद होगा। राजकुमारी अपने मनोऽभिराम का चित्र बनाने में इतनी मुग्ध थी कि उसे इस भावी की आशंका न हुई। उसे पीछे खड़ी 'चोर' सहेली तक का पता न चला। उस सहेली ने अब वहीं से संकेत कर अन्य सभी सहेलियों को बुलाया, किन्तु वे सब बड़ी मूर्ख निकलीं। संकेत पाते ही दौड़ पड़ीं। उस बेचारी सहेली के सब किये-कराये पर पानी फेर दिया। उसने बड़ी कठिनाई से चुपचाप राजकुमारी के हृदय के रहस्य को पकड़ा था और इन सबने दौड़ लगा कर सब गड़बड़ कर दिया। राजकुमारी चौंक गई। सहसा सहेलियों का गोल आते देख कर राजकुमारी घबरा गई। उसने झट उस चित्र को फाड़ डाला। इतने परिश्रम और हृदय की एक-एक भावना से रंगा-बनाकर चित्र इन मूर्खाओं की करतूत से नष्ट हो गया!'

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

चित्र को फाड़ते देख सभी स्तब्ध हो गयीं। राजकुमारी की आँखे तो मानो क्रोध से बरसने लगीं—'यहाँ क्यों आईं ? मैंने कह दिया कि मुझे अकेले में भी कभी सांस लेने दिया करो !'

'किन्तु वह चित्र किस का था ?'

'किसी का था, तुमसे मतलब ?' राजकुमारी खीझ उठी।

'अरी उसी का होगा, जिससे यह अकेले में बातें किया करती हैं ?' एक ने दूसरी से धीरे से कहा।

'अच्छा तो उसी का था, मुझे दण्ड दोगी ?' राजकुमारी ने क्रोध में कहा।

'नहीं, राजकुमारी जी ! आपको भला हम दण्द दें ! राम, राम ! किसमें शक्ति है जो आप को दण्ड दे। बस हम यही सुनना चाहती थीं कि यह उसी का चित्र है ?' राजकुमारी को क्रोध में देख कर सब सहेलियाँ वहाँ से भाग गईं। बेचारी अनजान राजकुमारी यह नहीं जानती थी कि सहेलियों का काम ही मनोविनोद है। व्यर्थ ही उन पर वह बिगड़ गई। किन्तु बाद में उसे इसका पश्चाताप हुआ।

ये नित्य की घटनाएँ थीं जिनसे राजकुमारी के यौवन का सहज ही परिचय प्राप्त हो सकता है। युवावस्था की इन्हीं घटनाओं से. राजा परिचित था और इसलिये राजकुमारी के विवाह की प्रबल चिन्ता उसे हो रही थी। उसने विभिन्न राज्यों में अपने दूत दौड़ाये, जिन्हें शीघ्र ही राजकुमारी के लिये सुयोग्य वर का अन्वेषण कर लौटने का आदेश दिया। इधर राजा के पास भी अनेक राज्यों के राजकुमारों की ओर से राजकुमारी के विवाह के प्रस्ताव आने लगे किन्तु महाराज प्रभाकरवर्द्धन को उनमें से एक भी पसन्द न आया। यद्यपि महारानी यशोमती मातृहृदय के सहज स्वभाव के कारण किसी गौरांग, सुन्दर, बलिष्ठ राजकुमार से शीघ्र पुत्री का विवाह कर देने के पक्ष में थीं क्योंकि स्त्रियाँ अधिकतर रूप-रंग पर ही मुग्ध हो जाया करती हैं, किन्तु राजा को राजनीतिक दृष्टि से भी विचार करना था। किस राज्य से विवाह-सम्बन्ध होने पर उनके

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

राज्य को लाभ है और देश का भला है, इस पर उन्हें प्रथम सोचना-विचारना था। स्त्रियाँ क्या जानें ये सब कूटनीतिक चालें। उन्हें तो सुन्दर-सा दुल्हा चाहिये, बस। इसके अतिरिक्त वह न कुछ जानतीं और न सोचती ही हैं।

राजा के सामने यह समस्या विकट रूप धारण किये खड़ी थी। जिन राज्यों की ओर से विवाह के प्रस्ताव हुए, उनमें से जिस-जिस का प्रस्ताव ठुकराया जायगा वे सब उनके शत्रु बन जायँगे। विवाह तो किसी एक से होगा, शेष स्वतः शत्रु बन खड़े होंगे। इसलिये नीति यही कहती है कि उनमें से किसी के साथ विवाह न किया जाय। ताकि सभी चुप रहें। इधर निरन्तर अन्वेषण के बाद दूत भी लौट आये। सभी ने अपना-अपना विवरण दिया। किन्तु दुर्भाग्यवश उनमें से एक भी ऐसा न निकला, जो राजा की कूटनीतिक कसौटी पर खरा उतरता। राजा बहुत निराश हुए। आखिर कब तक युवती कन्या घर में बैठायी जायगी। वास्तव में महान् चिन्ता का विषय था किन्तु उनकी यह चिन्ता अधिक गंभीर रूप धारण न कर पाई। कारण, शीघ्र ही उनका ध्यान कन्नौज के राजकुमार ग्रहवर्मा की ओर गया, जिसकी सुयोग्यता एवं विद्वत्ता के समनुकूल होने के साथ-साथ राजनीतिक परिस्थितियाँ बहुत कुछ अनुकूल ही पड़ती थीं। कन्नौज में उस समय मौखरि राजाओं का राज्य था और मौखरि राजा मालवा के गुप्त राजाओं के शत्रु थे। इस प्रकार गुप्त राजाओं के विरुद्ध अपनी शक्ति प्रबल बनाये रखने के लिये ही महाराज प्रभाकरवर्द्धन ने यह विवाह सम्बन्ध करना उचित समझा।

महाराज प्रभाकरवर्द्धन ने गुप्त राजा महासेन को पराजित किया था। फलस्वरूप उसने अपनी कन्या यशोमती का विवाह प्रभाकरवर्द्धन से कर दिया था, किन्तु उसका उत्तराधिकारी पुत्र अभी तक शत्रुता छिपाये था और अवसर की ताक में था। इन्हीं सब गंभीरताओं पर विचार कर प्रभाकरवर्द्धन ने उक्त विवाह सम्बन्ध करने का निश्चय कर लिया।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

: ६ :

विवाह की धूमधाम

समस्त औचित्यानुचित्य का गंभीर विचार कर महाराज प्रभाकरवर्द्धन ने महारानी यशोमती के परामर्श से अपने विशिष्ट दूत के साथ नाऊ को नारियल देकर कन्नौज रवाना कर दिया। अवस्था कम होने से राजकुमार ग्रहवर्मा वृद्ध मंत्रियों के परामर्श से राज-कार्य देखता था। उसने थानेश्वर राज्याधिपति प्रभाकरवर्द्धन के दूत का समुचित सादर-सत्कार किया; किन्तु नारियल ग्रहण करने के विषय में वृद्ध मंत्रियों से प्रार्थना करने के लिये कहा। कुशल दूत ने महाराज प्रभाकर का संदेश सुनाते हुए इस विवाह सम्बन्ध से होनेवाली समस्त राजनीतिक भलाइयों को मंत्रियों के सामने रखा और कहा कि अवयस्क राजकुमार को इससे अपने शत्रु राज्यों को दबाये रखने की शक्ति में वृद्धि होगी और कन्नौज को एक प्रबल शक्तिशाली राज्य की मैत्री का लाभ होगा।

वृद्ध मंत्रियों ने बड़ी गंभीरता से दूत की वार्ता पर विचार किया और अंत में सभी ने नारियल स्वीकार कर लेने का ही सर्वसम्मत निश्चय किया। बस फिर क्या था! राजकुमार ने नारियल ग्रहण कर लिया। थानेश्वर की की कन्नौज से सगाई पक्की हो गई।

दुन्दुभियाँ बज उठीं। नगाड़ों पर धमाधम चोटें पड़ने लगीं और तब सभी मांगलिक कृत्यों के बीच विवाहोत्सव की तैयारियाँ शुरू हो गईं। इधर निमंत्रण स्वीकार होने का समाचार सुन कर वृद्ध राजा प्रभाकरवर्द्धन और रानी यशोमती तो मानों आनन्द से उछल-उछल कर आकाश छूने लगे। राकुमारी राजश्री को जब ज्ञात हुआ तो उसका अंग-अंग आनन्द से नाच उठा। वह फूली न समाई। हृदय तो आनन्द के राग गा रहा था। किन्तु उसकी आँखें लाज में गड़-सी गयीं। वह सारी-की-सारी लाज में

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

सिकुड़-सी जा रही थी । कोई उसे जा कर मिलता तो वह झट उसके सामने से भाग कर छिप जाती मानों उसके देख लेने से इसके नवल सुन्दर-सलोने मुखड़े को नजर लग जायगी, इसीलिये तो शायद वह सब की नजर बचाती भाग रही थी ।

रानी यशोमती ने स्वयं जाकर अपनी लाडली को यह शुभसंवाद सुनाना चाहा, किन्तु वह कहीं मिले तब न ? वह तो तितली-सी इधर-उधर भाग-भाग कर छिपती फिर रही थी । कहीं पर्दे के पीछे, कहीं पलंग के नीचे, तो कहीं छत के ऊपर । अन्त में रानी ने शृंगरा-गृह में उसे अपने बाल संवारते हुए जा पकड़ा ।

'अरी, कहाँ भागी-भागी फिर रही है । सारा राजभवन ढूंढ़ मारा कहीं पता ही नहीं तेरा !'

'क्या है आखिर ऐसा काम, जो मेरे विना बिगड़ा जा रहा है ?' मुस्कराहट लिये ज़रा झुंझला कर राजकुमारी बोली ।

'सभी तुझे खोजते फिर रहे हैं । ले मुँह तो मीठा कर ।' रानी ने झट पल्ले से एक लड्डू निकाल कर अपनी प्यारी बिटिया के मुँह में डाल दिया ।

'क्या है, क्या है ?' लड्डू मुँह में चबाते हुए बिटिया बोली, और इतने में माँ ने झटके से बिटिया को पकड़ कर गोद में बिठा लिया ।

'मेरी नन्हीं-सी बिटिया !' और एक प्यार भरा मीठा चुम्बन ले लिया।

'माँ तुम्हें हो क्या गया है, छोड़ो मुझे !' राजकुमारी छुड़ाने का प्रयत्न करने लगी ।

'जिसके लिये तू इतनी भागती फिर रही है ! लज्जा से गड़ी जा रही है ! और बात क्या है । मेरी बिटिया अब दुल्हिन बनेगी ! हैं, न ?"

अब तो मानों राजकुमारी को लज्जा ने कस कर जकड़ लिया । उसने माँ की गोद में मुँह छिपा लिया ।

'लजाती है ? हाँ, उच्च घराने की कुलवधुओं का लाज ही तो एक आभूषण है । आ, मैं तेरे बाल संवार दूं ।' और माँ बिटिया को उठा कर बाल संवारने लगी ।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

'दर्पण में मेरी लाडली का चेहरा कितना निखरा है। मेरी चाँद-सी सुन्दरी बिटिया को पा कर कन्नौज का राजकुमार धन्य-धन्य हो उठेगा। ससुराल में जा कर हमें भूल तो न जाओगी?' स्नेह से आतुर होकर मां ने एक बार फिर अपनी कन्या के गाल चूम लिए। और आधे बाल संवरा कर ही राजकुमारी माँ के पास से भाग खड़ी हुई।

मां कितनी प्रसन्न थी, पिता को कितना आनन्द था! जीवन भर की आनन्द राशि आज उन्हें एक दिन में मिल गई। कन्या का विवाह होगा। सुन्दर-सा दुल्हा उसे ब्याहने आयगा। बाजे बजेंगे। मंगल गीत गाये जायँगे। नगाड़े बजेंगे, दुन्दुभियों का शोर होगा। सर्वत्र आनन्द ही आनन्द होगा। न जाने क्या-क्या होगा! कितना सुन्दर स्वप्न था, क्या ही आनन्ददायक कल्पना थी।

उन्हीं सुन्दर स्वप्नों में समय बीतता रहा और अन्त में वह समय भी आ पहुँचा जब राजकुमारी के विवाह को केवल चार-पाँच दिन ही शेष रह गये। विवाह की तैयारियाँ प्रायः पूर्ण हो चुकी थीं। समस्त नगर-वासी विवाहोत्सव की तैयारियों में दिन-रात जुटे थे। सभी अपनी-अपनी गली, और बाजार, अपनी दूकानों और मकान सजाने में व्यस्त थे। सजावट और आनन्द का ज़ोर-शोर इसलिये भी अधिक था कि महाराज प्रभाकरवर्द्धन को बड़ी-बड़ी तपस्याओं के बाद तो ये संतानें मिलीं। उस पर उनके जीवन-काल में विवाहोत्सव का प्रथम अवसर था। और संभवतः यही उनके लिये अंतिम अवसर भी था क्योंकि भावी, जिसकी करनियों से वे अनभिज्ञ थे, उनकी मृत्यु का संदेश भी कुछ दिनों के बाद ही लिये खड़ी थी। यही कारण था कि उनके आदेश से विवाहोत्सव की विशेष तैयारियाँ हो रही थीं। नगर की सड़कें इस प्रकार मांज-धोकर साफ की गयीं कि चमचमाहट में दर्पण का मुकाबिला करने लगीं। स्थान-स्थान पर ढंग-ढंग के मनोहर द्वार सजा-सजा कर बनाये गये थे। कोई द्वार केवल रंग-बिरंगे फूलों से ही बनाया गया था, जिसकी शोभा अद्वितीय थी। कोई केवल अशोक पत्तियों से ही इस प्रकार बनाया गया कि उसकी शोभा

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

फूलों के द्वार से कम न थी। कोई-कोई द्वार सुन्दर-सुन्दर बहुमूल्य वस्त्रों से सजाया गया, जिसकी अपनी अनोखी छटा थी। किसी कुशल कारीगर ने लकड़ी के टुकड़ों को घड़-घड़कर ऐसा सुन्दर द्वार बना डाला कि देखने वाले उसकी कारीगरी देखकर दंग रह गये। सड़कों पर द्वारों की भरमार-सी लगी थी। पग-पगपर भांति-भांति के सजे सजाये द्वार दुल्हे के स्वागत में मस्तक झुकाये खड़े थे।

सर्वत्र सभी नागरिकों ने अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार अपने मकान, भवन और अट्टालिकाएँ सजाईं। सारी अट्टालिकाएँ दीपकों के प्रकाश से चमचमाती जगमग-जगमग कर रही थीं। धनिकों ने अपनी अट्टालिकाओं को दुल्हिनों-सा सजा रखा था। राजभवन का तो कहना ही क्या, स्वर्गाधिपति इन्द्र की दिव्य अट्टालिका भी आज प्रभाकरवर्द्धन के राजभवन के राजमहल की अलौकिक छटा को देखकर शर्मा-शर्मा जाती थी।

राजभवन में अच्छा-खासा मेला लग रहा था। कहीं दास-दासियाँ दौड़ते दिखाई देते। कहीं आनेवाले बन्धुओं और मेहमानों की भीड़ लगी दीखती। कहीं विवाह की आवश्यक सामग्री पहुँचाते व्यापारियों और दूकानदारों का दल दिखाई देता। दास-दासी राजभवन को सजाने में जुटे थे। राजकुमारी का विवाह होने से दासियाँ अधिक तत्पर दिखाई दे रही थीं। यद्यपि दास लोग भी अपने काम में पर्याप्त संलग्न थे किन्तु दासियाँ हर समय उन्हें डाँटतीं और उलाहने दिया करतीं—'राजकुमारी का विवाह है न, इसीलिये काम में शिथिलता दिखा रहे हो।' कोई दासी अपने पति से कहती, 'तुम्हारे राजकुमार जी का विवाह होगा तो हम लोग भी समझ लेंगी, प्रातःकाल से कै काम किये हैं तुमने ?'

इसी प्रकार पुरुषों की आफत आई रहती। इस अवसर पर राजभवन में तो मानों स्त्रियों का राज्य हो रहा था। दासियों से लेकर छोटे-बड़े, अधिकारी, उच्चाधिकारी एवं मंत्रियों, सचिवों तक की पत्नियाँ हर समय अपने पतियों से तकाजा किया करतीं कि राजकुमारी के विवाहोत्सव में जो-जो काम उन्हें सौंपा गया वह पूरा हुआ या नहीं। अपने काम पर

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

जायें तो अपने उच्चाधिकारियों की डाँट-फटकार सुनें, घर में आयें तो धर्मपत्नी जी प्रश्नों की झड़ी लगा दें। पुरुष भी यही सोच कर गम खा जाते कि इनकी राजकुमारी का विवाह हो लेने दो। राजकुमारों का विवाह होगा, तो हम लोग भी पूरा बदला ले लेंगे। राजकुमारी तो एक है और राजकुमार हैं दो। अच्छा ही रहेगा, एक का दो-दो बार बदला लिया जायगा।

भवन के बाहर-भीतर सर्वत्र ढंग-ढंग की सजावट हो रही थी। कहीं दासियाँ कमरों में सुन्दर-सुन्दर बेलदार पर्दे लगा रही थीं। कहीं कोई स्थान-स्थानपर फूलदान और गमले सजाकर रख रही थीं। कहीं कुछ दासियाँ मिलकर भवन के विभिन्न भागों में झालरें और रंग-बिरंगे हिंडोले टांग रही थीं। जल्दबाजी में इतनी ऊंचाई पर झालरें टांगने के लिये सीढ़ी न मिल सकी तो वे एक-दूसरे की कमर और कंधे पर ही चढ़ कर यह कार्य सम्पन्न करने लगीं। इस उतरने-चढ़ने में यदि वे गिर भी जातीं और उन्हें कहीं चोट भी आ जाती, तो वे इसकी इसलिये परवाह न करतीं कि उनकी राजकुमारी का विवाह है। दो-चार दिन शेष हैं। यदि अपने शरीर की परवाह की गयी तो काम पूरा न हो पायेगा।

राज-उद्यान की सजावट में सैकड़ों मालिनें दिन-रात अपने पतियों को जोते रहीं। कहीं थक-कर एकाध मिनट पति महोदय सुस्ताने लगे या सोचा, चलो देर दोपहर में विश्राम ही कर लें, तो बस मालिन के नथुने फूल उठते। अपनी बड़ी-सी नथिया के बीच से दीख पड़नेवाले दांत निकाल-निकाल उसे खाने दौड़ पड़ती—'जब देखो खटिया पर पड़े मिलेंगे। अरे! यह भी मालूम है मेरी राजकुमारी के विवाह को केवल तीन दिन बाकी रह गये हैं। राजकुमारी का विवाह हो जाय फिर चाहे छ महीने खटिया पर पर पड़े सोते रहना, मैं कुछ न बोलूँगी।' माली को पत्नी की पूरी बातें सुनने की हिम्मत न होती। जहाँ उसके कान में इस महाभारत का प्रथम अक्षर पड़ा कि खटिया छोड़ कर दरवाजे के बाहर नजर आने लगता अन्यथा पत्नी के चन्डीरूप की भयंकरता को कौन सहन करे!

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

विवाह के विविध स्वादिष्ट और मधुर मिष्ठानों के निर्माण में सैकड़ों हलवाई अपनी सहधर्मिणियों के साथ लगे थे। वास्तव में यह सर्वाधिक कठिन कार्य था। दिन-रात अग्नि के भीषण ताप से हलवाइयों का शरीर झुलस रहा था। वह तो उनकी सहधर्मिणियां साथ थीं—जिनकी प्रेरणा, प्रोत्साहन और आवश्यकतानुसार डाँट-डपट के कारण कम समय में अधिक से अधिक मिष्ठानों का भंडार तैयार हो गया अन्यथा अकेले हलवाई होते तो अवश्य कार्य सन्तोषजनक न होता।

कहीं कोई हलवाई आग पर खड़े चासनी के बड़े कड़ाहे को उतारने के लिये कपड़े की इधर-उधर खोज करता है कि तब तक क्या देखता है कि पास में खड़ी स्त्रियों द्वारा बिना कपड़े की सहायता के ही गरम-गरम कड़ाहा उतार कर नीचे रख दिया गया है और उन स्त्रियों को अपने जले हुए हाथों की ओर तनिक भी ध्यान नहीं है।

तरकारी अथवा साग काटते-काटते जल्दी में चाकू से किसी हलवाइन की अँगुली कट गई और रक्त बहने लगा; किन्तु देखा यह गया कि उसने अपनी अँगुली की ओर देखा तक ही नहीं और साग काटने में इसलिये लगी रही कि उसकी राजकुमारी के विवाह में आये मेहमानों के भोजन में विलम्ब न हो जाये। यह थी दास-दासियों, नहीं नहीं दासियों की राजकुमारी के विवाहोत्सव में संलग्नता।

सखी-सहेलियाँ अपनी अलग ही तैयारियाँ कर रही थीं। बहुत-सी राजकुमारी के दहेज में दिये जानेवाले वस्त्रों को गिन-गिन कर सुन्दर ढंग से तह करने और तह कर-कर उन्हें विभिन्न संदूकों में सजा-सजा कर रखने में इतनी व्यस्त थीं कि उस समय उनसे कोई अन्य आवश्यक बात भी करे तो उसे सौ-सौ गालियाँ पड़ने लगें। बहुत-सी रानी की विश्वस्त सहेलियाँ राजकुमारी के अनगिनत सुन्दर-सुन्दर रत्न सुवर्णजटित आभूषणों को संभालने में ही व्यस्त थीं। आभूषणों को नित्य बक्सों से निकालना, उन्हें गिनना, फिर सुकोमल कपड़ों से उन्हें साफ करना और उन सुन्दर-सुन्दर गहनों को देख-देख कर अपना मन रिझाना और अन्त में सायंकाल उन्हें

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

पुनः बक्सों में संभाल कर रख देना । यही सब काम तो था उन अति व्यस्त सहेलियों का ।

जिन्हें कोई काम न था, वे राजकुमारी से छेड़छाड़ करने और उससे तरह-तरह का मनोविनोद करने में ही व्यस्त थीं। क्यों नहीं, यही तो दो-चार दिन और थे । फिर कहाँ मिलेगी राजकुमारी ! जो कुछ हिलना-मिलना खेलना-कूदना और हंसना-खिलखिलाना था, बस दो-चार दिन ही तो और था । इसीलिये बेचारी सहेलियाँ अपनी प्रिय सखी राजकुमारी को घेरे-घेरे रहतीं । इस मनोविनोद में भी कभी-कभी सहेलियों का मन विह्वल हो जाता और उनकी आँखों से आँसू बहने लग जाते । चार दिन बाद उनकी राजकुमारी उनसे बिछुड़ कर कहीं दूर, बहुत दूर चली जायगी। सहेलियों को विह्वल देख राजकुमारी को भी रोना आ जाता और वह तो सिसकियाँ भर कर रोने लगती । तब सहेलियाँ अपने आँसू पोंछ कर एक-दूसरे को डाँटने-फटकारने लगतीं—'हटो, रुला दिया राजकुमारी को ! नहीं राजू ! तुम चाहोगी तो हम तुम्हें हर महीने दस-पांच दिन के लिये यहाँ बुलवा लिया करेंगी ।'

दूसरी कहती—'क्या हुआ यदि राजकुमारी दस-पन्द्रह दिन अकेले रह जाया करेगी। हाँ, हाँ ! राजकुमारी पन्द्रह दिन वहाँ तो पन्द्रह दिन यहाँ रहा करेगी । हम चाहे लड़ के, चाहे झगड़ के महाराज और महारानी से यह शर्त अवश्य स्वीकार करायेंगी ।'

तीसरी कहती—'नहीं, नहीं जब दूल्हा यहाँ आयेगा तो हम लोग उसे अकेले में पकड़ कर डरा-धमका कर यह शर्त मनवा लेंगी । उससे कहेंगी कि यदि वह ऐसा नहीं करेगा तो एक बार यहाँ आने पर हम राजकुमारी को वापिस न भेजेंगी ।'

चौथी ने कुछ और ही बात कही—'यह सब बात तो ठीक है किन्तु तुम सब यह भी जानती हो कि वहाँ पहुँचकर राजकुमारी का अपने पिया से इतना मन लग जायेगा कि हम लोगों को याद तक न करेंगी । यह तो अभी का रोना है, बाद में तो पिया की मीठी-मीठी बातों में कौन नहीं

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

फँस जाती ? और जब गोद में नन्हा-मुन्ना बालक खेलने लगेगा तब फिर हमें कौन पूछता है ?'

अब तो रोती राजकुमारी भी मुस्करा पड़ी—'हट, निगोड़ी कहीं की ।'

'निगोड़ी नहीं, जो कुछ कहा है सोलहो आने ठीक है । क्यों ?' सखी ने राजकुमारी को गुदगुदी की । राजकुमारी को बरबस हंसी छूट पड़ी और सब सहेलियाँ एक साथ खिलखिला पड़ीं ।

इसी तैयारियों में तीन दिन बीत गये और वह दिन आ पहुँचा जब दुल्हे की सजी-धजी बारात आनेवाली थी । आज सायंकाल बारात आने वाली है । दास-दासियाँ, काम-काज करनेवाले और सभी लोगों के पैरों की गति और दिनों से दुगुनी तीव्र हो गई । नौकरों-चाकरों की दौड़-धूप से राजभवन की छतें मानों गिरना चाहती थीं । सभी ओर हल्ला-गुल्ला शोर ! 'जल्दी करो, यह उठाओ, वह उठाओ, यह बढ़ाओ' की ध्वनियों से सारा राजभवन गूंज रहा था । इसके अतिरिक्त बाजे-गाजे, दुन्दुभि-नगाड़ों के शोर से तो मानों आकाश फट रहे थे ।

आज तो महाराज प्रभाकरवर्द्धन और महारानी यशोमती भी कामों में अति व्यस्त थीं । महाराज अपनी देख-रेख में विवाह-मण्डप की सजावट करा रहे थे और साथ ही समागत बन्धुओं एवं अतिथियों की व्यवस्था का निरीक्षण कर रहे थे । रानी अपनी प्यारी बिटिया के विस्तृत दहेज की सभी वस्तुओं को अपने सामने गिन-गिन कर रखवा और सहजवा रहीं थीं । विवाह में भाग लेने आए विभिन्न मित्र राजाओं एवं सम्बन्धियों की स्त्रियों के निवास, भोजन, रहन-सहन की सुख-सुविधा के निरीक्षण का भार भी महारानी पर था । किसी को किसी प्रकार का रत्ती भर भी कष्ट न हो, स्वयं रानी यशोमती इस बात की देख-भाल कर रही थीं । राजकुमारी के विवाहोत्सव में बड़े-बड़े राजाओं और उनके सम्बन्धियों ने सपरिवार भाग लिया था । उन सबकी पूर्ण और समुचित सेवा करना सहज काम नहीं था, किन्तु राजा और रानी इस कार्य में स्वयं इतना परिश्रम कर रहे थे कि सभी आगन्तुक उनकी सुन्दर व्यवस्था से अत्यधिक प्रसन्न थे ।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

इस दौड़-धूप में सायंवेला आ पहुँची । बारात के बाजे की ध्वनि सुनाई देने लगी । बारात देखने के लिये सड़कों पर नर-नारियों का चींटियों की तरह जमाव था । मकान, भवनों और विशाल अट्टालिकाओं की छतों और खिड़कियों पर तो मानों भंवरों सहित शुभ्र कमल के पुष्पों की सृष्टि हो रही थी । प्रत्येक भवन और अट्टालिका की छतें सुन्दरी युवतियों से से भरी थीं । जिस-जिस सड़क पर से बारात जाने लगी, अट्टालिकाओं पर खड़ी स्त्रियों द्वारा बरसाये गये पुष्पों ने उसे आच्छन्न कर दिया । सड़कों पर बने विभिन्न द्वारों पर से इत्र और गुलाबजल की वृष्टि हो रही थी । दुल्हिन से भी अधिक सजी-धजी नटखट घोड़ी पैरों में घुंघरू बाँध कर इस प्रकार नखरे करती चल रही थी कि देखनेवाले उसकी अदाओं पर मुग्ध हुए जा रहे थे । बारात ज्यों ही राजभवन के पास पहुँची, राजभवन में तो मानों भूकम्प-सा आ गया । राजभवन की युवतियों का सम्पूर्ण दल इस प्रकार खिड़कियों की ओर दौड़ पड़ा मानों किसी भागते चोर को पकड़ना हो । जो स्त्री जहाँ खड़ी जो भी काम कर रही थी, बारात के बाजे की पहली ध्वनि सुनते ही उसके हाथ वहीं रुक गये । अपने-अपने कामों पर से उन सब के हाथ इस प्रकार एक साथ रुक गये जैसे उनको एक साथ ही बिजली का करेंट मार गया हो । एक क्षण में हाथ रुके और दूसरे क्षण में उनके पैर खिड़कियों की ओर बढ़े । अब उन्हें वहाँ तक पहुँचने में कितनी देर लगी, इसका अनुमान आप स्वयं कर लें ।

मंत्रियों सहित राजा ने स्वयं आगे बढ़ कर बारात का स्वागत किया और तब बारातियों ने राजभवन में प्रवेश किया ।

बारातियों के निवास की उत्तम व्यवस्था की गयी थी । दूल्हे को एक विशिष्ट सजा-धजा भव्य भवन प्रदान किया गया । बारातियों का सम्पूर्ण अतिथ्य सत्कार राजा की ओर से बड़ी धूम-धाम से हुआ । प्रत्येक बाराती महाराज प्रभाकरवर्द्धन की उत्तम व्यवस्था की जी भर प्रशंसा कर रहा था ।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

दुल्हा घर में आ चुका था। राजभवन की सभी युवतियाँ तितली-सी उड़ती उसके पास जा पहुँचीं। सभी को अपनी प्रिय सखी राजकुमारी के अनोखे दुल्हे को देखने की अत्यधिक आतुरता और लालसा थी और आज वह पूरी हो गई। दुल्हे के भवन में जा कर युवतियों ने उसे तंग कर मारा। उस बेचारे को एक पल भी वे सब चैन न लेने देतीं।

दुल्हे को चिढ़ाने के लिये कोई कहती—'दुल्हा है तो सुन्दर किन्तु इतना सुन्दर नहीं कि मेरी राजकुमारी के योग्य हो !'

दूसरी झट उत्तर देती—'तेरे तो योग्य है, तू व्याह करेगी इससे ?'

'हट पगली,' कह कर वह वहाँ से भाग जाती।

इतने में एक और आती और दुल्हे को देख कर कहती—'और सब तो ठीक है, नाक कुछ टेढ़ी-सी है ?'

दूसरी सटाक से उत्तर देती—'तेरे पति की नाक तो सूँढ़-सी लम्बी है। वह अच्छा लगता है तुझे ?' और वह लज्जित हो कर वहाँ से सटक जाती।

अंत में एक सयानी-सी युवती उन सब की भीड़ चीरती अन्दर आ पहुँची—'अरी क्या भीड़ लगा रखी है ? देख-देख कर नजर लगाने आईं हैं सब ? चलो हटो यहाँ से। इतना अच्छा-सा दुल्हा है।' और पास में जा कर वह दुल्हे को हल्की-सी चपत जमाती वहाँ से भाग गयी। उसके साथ और सब भी खिलखिलाती वहाँ से भाग गईं।

दुल्हे का पीछा छोड़ कर उन सबने दुल्हिन को आ घेरा। आखरी दिन था अपनी प्यारी सहेली से मिलने-जुलने का। लगीं सब उससे छेड़-छाड़ करने।

एक ने कहा—'हाय, हाय ! राजकुमारी का दुल्हा तो ऐसा काला-सा है कि देख कर डर लगे।'

दूसरी बोली—'और उसके बड़े-बड़े दाँत मुँह से बाहर निकले हुए हैं। भूत-सा लगता है, भूत-सा ! ना बाबा ! हम तो अपनी अच्छी राजकुमारी का व्याह उससे न होने देंगी।'

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

राजकुमारी इतनी भोली थी कि जब तक तीसरी कुछ बोलती, उन दो की बातें सुन कर ही डर-सी गयी। उसका मुँह उदास हो गया और भयभीत होकर सखियों की ओर दीन मन से देखने लगी।

उसकी दीन दशा पर सखियों को दया आ गई। तीसरी ने कहा— 'नहीं राजू! यह तुम्हें चिढ़ाने के लिये ऐसा कह रही हैं। तुम्हारा दुल्हा तो इतना सुन्दर है कि चाँद, नहीं गन्धर्व, नहीं नहीं इन्द्र की सुन्दरता भी उसके सामने मात हो जाय। किन्तु वह हमारी राजकुमारी से अधिक सुन्दर नहीं।'

अब जाकर राजकुमारी की सांस में सांस आयी। उसने अपनी इस सहेली की ओर ऐसी संदिग्ध दृष्टि से देखा कि वह सच बोल रही है या झूठ? किन्तु उसकी मुद्रा से राजकुमारी को विश्वास हो गया कि हाँ, वह जो कुछ कह रही है वह सर्वथा सत्य है। अब राजकुमारी को कुछ ढाढ़स हुई।

यही सब खेल खेलते रात्रि में मुहूर्त्त की वह शुभ घड़ी भी आ पहुँची, जब दो अनजान जीवों का एक स्थान पर पवित्र गठबन्धन होता है, मिलन होता है। वह मिलन, जो जीवन का सबसे प्रथम और अन्तिम मिलन होता है। जिस संमिलन के सम्बन्ध को संसार की कोई भी ताकत नहीं तोड़ सकती।

विवाह-मण्डप वैदिक ब्राह्मणों के मन्त्रोच्चारण से गूंज उठा। हवन के विशाल कुण्ड में बार-बार दी जानेवाली घृताहुति से प्रज्वलित अग्नि की लपटें इस प्रकार लपलपाती निकल रही थीं कि उसके सामने बैठे वर-वधू के सुकोमल गोरे गाल बिल्कुल लाल हो रहे थे। परस्पर अत्यन्त निकट बैठने के कारण जहाँ वर को युवती-संग और वधू को पुरुष-संग से रह-रह कर रोमांच हो रहा था, और इससे उन दोनों के मुख पर गहरी लालिमा छा रही थी, वहीं अग्नि का तीव्र ताप उनकी मुख लालिमा में और भी वृद्धि कर रहा था। इन दोनों कारणों से वर-वधू के लालिमामय रूप

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

इस प्रकार दमक रहे थे मानो मध्याह्नवेला में आकाश में दो-दो तेजोमय सूर्य प्रकाशमान हों ।

इतनी प्रतीक्षा के बाद अब विवाह कृत्य होते विलम्ब नहीं लगा । राजकुमारी तो जब से विवाह मण्डप में आई, न जाने ध्यानस्थ हो क्या सोचने में लगी रही । उसके हृदय में न जाने कैसे-कैसे भाव उठ कर लहरें मार रहे थे। और वह उनमें सुध-बुध विहीन हो गोते खा रही थी। कब पुरोहित ने उसका पाणि वर के हाथ में दे कर—उसे वचनबद्ध कराया, उससे परिक्रमा कराई गई । उसे कुछ खबर न थी । माता-पिता उससे जैसा कराते जा रहे थे, वह संज्ञाहीन-सी चुपचाप करती जा रही थी, उस का मन और आत्मा तो न जाने क्या क्या सोचते-सोचते कहाँ जा पहुँचा था। संभवतः जब तक यहाँ पाणिग्रहण का कृत्य होने लगा, तब तक वह कन्नौज के राजमहलों की सैर करने चला गया ।

वास्तव में राजकुमारी अपने हृदय में अपने भावी सुखमय जीवन की आनन्दमयी कल्पनाओं को सोचने में तन्मय थी और इधर इतने में सम्पूर्ण कृत्य समाप्त हो गया। और, जब उससे विवाह मण्डप से उठ कर अन्दर चलने को कहा गया, उसकी तन्द्रा टूटी और वह विक्षिप्त-सी आँखें फाड़-फाड़कर देखने लगी, 'एं ! उसका पाणिग्रहण हो गया और वह राजकुमार के पीछे-पीछे जा रही है !' अब तो मानों वह लाज से सिकुड़-सी गई । इसकी सारी सुध-बुध लौट आई । और वह धीरे-धीरे स्त्रियों के जमघट के बीच एक सजे-सजाये भवन के अन्दर पहुँची ।

विवाह सम्पन्न हो चुका था । बारात की विदाई का कृत्य शेष था । बाराती भी वापसी की तैयारियों में लगे थे । इधर राजकुमारी जाने का नाम सुनकर रो-रोकर जान देने लगी। जिस मां-बाप की गोद में फली-फूली, जिस घर में उसका लालन-पालन हुआ और वह इतनी बड़ी हुई, उसे ही आज छोड़कर पराये घर में, पराये पुरुष के साथ उसे जाना होगा । पता नहीं वह पराया अनजान पुरुष उससे कैसा व्यवहार करेगा, उसे मारेगा, पीटेगा, खाने को ठीक से देगा या नहीं । वहाँ उसे बात-बात

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

में प्यार करनेवाली दुलारनेवाली प्यारी मां, प्राणों से अधिक चाहनेवाला पिता, पलकों पर उठानेवाली सहेलियाँ, ये सब कहाँ मिलेंगी ?' यही सोच-सोच कर राजकुमारी का दिल बैठा जा रहा था और उसकी आँखें आँसुओं के झरने बहा रही थीं, किन्तु नहीं राजकुमारी ! जिसे तू पराया पुरुष समझ रही है वह पराया नहीं, वही तो तेरा सर्वस्व है। पराये तो ये मां-बाप हैं, जो केवल बचपन में लालन-पालन के उत्तरदायी हैं । स्त्री के सारे जीवन का उत्तरदायित्व तो पुरुष पर है, पति पर है ।' परन्तु यह काहे को राजकुमारी की समझ में आये । मेरा घर, मेरी मां, मेरी सहे-लियाँ, बस यही वह चिल्ला रही थी । घंटों तक वह रोती रही, अन्त में माता यशोमती ने अपनी लाडली को गोद में लेकर उपदेश देना आरम्भ किया 'नहीं, वही तेरा वास्तविक घर है । उस घर की तू रानी होगी, मालकिन होगी । जैसे मेरा इस घर में राज्य है, वैसे तू भी तो उस घर में राज्य करेगी ।' माता ने अच्छी प्रकार राज्यश्री को पति-सेवा का उपदेश दिया । मां के उपदेश से बेटी को बहुत-कुछ ढाढ़स मिली । उसे अब अपने कर्त्तव्य का ज्ञान हुआ । आखिर राजकुमारी ने भी तो धर्मशास्त्रों और पुराणों का अध्ययन किया था । वैसे तो माता-पिता से विदाई के के समय मोह हो जाना स्वाभाविक ही है ।

अन्त में वड़े ही करुण वातावरण में मां-बाप की लाडली, सहेलियों की प्यारी और नागरिकों की स्नेहमयी राजकुमारी डोली में बैठाई गयी । अब तो माता-पिता और सहेलियों का भी धैर्य छूट गया । अपनी प्राणों से प्यारी लाडली की विदाई पर उनकी आँखें भी भर आईं, किन्तु उनकी आँखों में आँसू थे और हृदय में संतोष था, अपार हर्ष था । उनकी प्राणा-धिक प्रिय पुत्री को चाँद-सा सुन्दर, वृहस्पति-सा विद्वान और गुणी तथा इन्द्र-सा वैभवशाली पति मिला, इसका उन्हें क्या कम हर्ष था ?

बड़ी ही धूमधाम और सजधज के साथ बारात की बिदाई हुई । बारात धीरे-धीरे बढ़ रही थी, और इधर राजभवन के द्वार पर खड़े महाराज प्रभाकरवर्द्धन, महारानी यशोमती और राजपरिवार के सभी

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

नर-नारी सूने हृदय से मूकवाणी द्वारा अपनी लाडली को शत-शत आशीर्वाद और शुभ कामनाएँ दे रहे थे—'नहीं बेटी ! तू अकेली नहीं जा रही है, तेरे साथ हम सबकी शुभ कामनाएँ और शुभाशीर्वाद हैं और फिर सब से बढ़ कर तेरे प्राणधन, सर्वस्व, साक्षात् परमेश्वर स्वरूप तेरे पति तेरे साथ हैं, तुझे भय चिन्ता और दुःख कैसा ?'

: ७ :

युद्ध के लिये प्रस्थान

चिन्ताओं का प्रायः अंत हो चुका था। महाराज प्रभाकरवर्द्धन और महारानी यशोमती अपनी वद्धावस्था का अवशेष सुखपूर्वक बिता रहे थे। एक दिन अचानक उनके मन में विचार उत्पन्न हुआ 'क्यों न अब राजपाट पुत्रों के हवाले कर दूँ ! इस जीवन का कौन भरोसा ? अपने जीते जी पुत्रों को राजगद्दी दे कर फिर निश्चिन्त हो कर ही शांतिपूर्वक मत्यु का स्वागत कर सकूँगा।' उन्होंने निश्चय कर लिया, किन्तु एक बाधा सामने आई। अभिषेक होने से पूर्व राजकुमारों का विवाह हो जाना तो आवश्यक है। फिर एक चिन्ता खड़ी हो गई। 'ऐं ! पर इतनी बड़ी भूल मुझसे कैसे हो गई ? केवल कन्या का विवाह करके ही मैं निश्चिन्त हो

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

रहा । कितना बड़ा अपराध हुआ ?' राजा पछताने-से लगे । दर्पण के सामने जाकर अपने केशों पर हाथ फेर कर देखा, उन पर इतनी सफेदी आ चुकी थी ! और इधर राज्यकुमारों का विवाह तक नहीं हुआ । राज्याभिषेक तो एक ओर रहा । चिन्तित महाराज ने तत्काल दरबार में मंत्रि-परिषद की बैठक बुलाई । सारी परिस्थिति सामने रखी । शीघ्र दोनों कुमारों का विवाह होना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है । मंत्रियों ने विभिन्न राजाओं की कन्याओं के नाम लिये ।

प्रधानमंत्री शत्रुमर्दन बोले, 'पांचालेश की कनिष्ठ कन्या बड़ी सुन्दर और गुणवती है ।'

दूसरे मंत्री ने कहा 'किन्तु वहाँ की राजनीतिक परिस्थिति पर भी तो ध्यान देना होगा ।'

एक वद्ध मंत्री चट बोले, 'विन्ध्य नरेश की भी दो कन्याएँ हैं, विन्ध्य प्रदेश से मैत्री सम्बन्ध होने पर हमारी पश्चिमी शक्ति में विकास होगा ।

वृद्ध मंत्री की बात राजा को कुछ जँची, बोले, 'इस सम्बन्ध से अपना काफी लाभ हो सकता है ।'

'किन्तु विन्ध्य राज्य कोई इतना बड़ा नहीं, जो हमारी शक्ति को द्विगुणित करने में समर्थ हो ।' प्रधानमंत्री बोल पड़े ।

'तब कोई शक्तिशाली राजा आपकी दृष्टि में हो तो बताइये ।' वद्धमंत्री ने कुछ मुस्कराकर कहा ।

'मगध में अनेक शक्तिशाली राज्य हैं । बंग का राजा शशांक सदैव हम पर कुदृष्टि रखता है, उसके दमन के लिये मगध से सम्बन्ध बनाना लाभदायक सिद्ध होगा ।'

'तो बातचीत की जाय,' वृद्ध मंत्री ने कहा ।

'किन्तु जो कुछ हो शीघ्र ही हो । मैं चाहता हूँ अगले फाल्गुन तक यह कार्य भी सम्पन्न हो जाय और मैं निश्चिन्त हो रहूँ ।' राजा ने कहा ।

'फाल्गुन तो आ ही गया है महाराज ! जो कुछ करना हो सोच-समझ कर करना होगा । अनेक राजागण हैं, सब ओर दूत भेज कर परिस्थिति

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

का अन्वेषण हो। फिर जो उचित हो किया जाय, मेरा तो यही परामर्श है। आगे महाराज और अन्य सदस्यों की जैसी इच्छा।'

महाराज कुछ सोचने लगे । अन्य मंत्रीगण भी विचार में पड़ गये । एक मंत्री इसी समय बोलने जा रहा था कि द्वार प्रहरी ने आकर प्रणाम किया ।

'क्या है ?' राजा ने पूछा ।

'उत्तर-पश्चिमी सीमा से एक दूत आया है, आज्ञा हो तो अन्दर ले आऊँ ।'

'ले आओ,' राजा ने आदेश दिया। सबकी दृष्टि द्वार की ओर घूम गई । प्रहरी गया और एक दूत को लेकर लौटा । दूत ने झटपट आ कर झुक कर प्रणाम किया, और कुछ हांफने-सा लगा। इसके मुँह पर घबराहट स्पष्ट झलक रही थी ।

'इतने घबराये क्यों हो, दूत ! क्या समाचार है ? सीमाएँ सुरक्षित तो हैं न ?' राजा की मुद्रा पर भी कुछ बल पड़ गये थे । सभी मंत्री दूत के मुख की ओर टकटकी लगाये चुपचाप देख रहे थे ।

दूत ने कहा, 'नहीं महाराज, अशुभ समाचार है, सीमाओं पर फिर हूणों का हमला हो गया है । इसबार हूणों की संख्या दुगुनी है महाराज ! सर्वनाश हुआ चाहता है, पृथ्वीपति ! शीघ्र बचाइये, अन्यथा शत्रु बहुत निकट आ पहुँचेगा ।'

राजा ने त्योरी बदली, 'उन दुष्टों की इतनी हिम्मत ! एक बार मार खाकर भागे तो अब तक मुँह नहीं दिखाया। अब की छठी का दूध न चखाया तो बात नहीं ।'

राजा ने तत्काल आदेश दिया, 'सेनापति को बुलाओ।'

एक सैनिक दौड़ा-दौड़ा गया और सेनापति को तत्क्षण बुला लाया । सेनापति के आते ही राजा ने आदेश सुना दिया ।

बोले--'राजकुमारों को लेकर शीघ्र उत्तर-पश्चिमी सीमा पर पहुँचो।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

दुष्ट हूणों की दुष्टता फिर जम रही है। दस सहस्त्र सुसज्ज सेना ले कर चढ़ाई कर दो ।'

राजकुमारों को साथ ले जाने का आदेश सुनकर सभी मंत्री चौंके, अभी विवाह की चर्चा हो रही थी और अभी युद्ध में भेजा जा रहा है!

प्रधानमंत्री ने निवेदन किया, 'महाराज ! राजकुमारों की अभी अवस्था ही क्या है ? युद्ध के लिये सेनापति पर्याप्त हैं ।'

'अनुभव कैसे होगा ? मेरे बाद राज्य के उत्तराधिकारी ये ही होंगे, बड़े-बड़े युद्ध लड़ने पड़ेंगे । अभी से दुनिया न देखेंगे तो गद्दी क्या खाक संभालेंगे । कन्याओं की खोज कर रखो, विवाह लौट कर होगा।'

और आदेश पाते ही विशाल चतुरंगिणी चल दी । राजकुमार राज्य-वर्द्धन और हर्षवर्द्धन के लिये युद्ध का प्रथम दर्शन था । इसलिये माता-पिता से आशीर्वाद लेने आये ।

माता ने दोनों को गोद में बिठा कर सिर पर हाथ फेरा, 'मां दुर्गा मेरे लालों की रक्षा करेंगी । मेरा आशीर्वाद तुम्हें विजय प्रदान करेगा, जाओ बेटा ! विजयी होओ ।'

और माता का चरण स्पर्श कर वे वीर बेटे पिता के पास आये। पिता ने भी वीरोचित आशीर्वाद दिया और विजय की शुभकामना की। नागरिकों के भव्य स्वागत के पश्चात सेनापति के संरक्षण में सेना का नायक राज-कुमार राज्यवर्द्धन अपने छोटे भाई को साथ लेकर वहाँ से रवाना हुआ ।

दिन अधिक नहीं लगे । तीसरे ही दिन थानेश्वर की विशाल सेना हिमालय की सुहावनी तलहटी में जा पहुँची । शांत पहाड़ियां गूंज उठीं । दश सहस्त्र सेना की अतुल ध्वनि ने पर्वत-शिखर पर निनाद किया। एक बार पर्वतराज भी कांप उठे । वन्य पशु इधर-उधर भाग कर खोहों में छिप-गये । पक्षियों की चिहुँक बढ़ गयी। ऐसा मालूम होने लगा मानो पर्वत-शिखर पर सागर गड़गड़ा रहा है। सागर-सी विशाल सेना मीलों तक फैली थी। उस पर पहाड़ों की ऊबड़-खाबड़ भूमि ! समतल मैदान था ही नहीं। इसलिये दस शहस्त्र सेना के निवास के लिये काफी क्षेत्र चाहिये था। राज्य-

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

वर्द्धन ने दूर-दूर पहाड़ियों में अलग-अलग भाग कर सेना को कई टुकड़ियों में बाँट दिया और सेना का वहाँ एक अच्छा खासा दुर्ग बन गया। जितनी ऊँची-ऊँची पहाड़ियाँ थीं, उन सब पर सैनिकों के शिविर लगाये गये। अगल-बगल खाइयाँ थीं, इनमें सेना को अपनी रक्षा के पर्याप्त साधन सुलभ थे। बीच में एक रमणीक पहाड़ी पर दोनों राजकुमारों का शिविर बना और युद्ध-स्थल उस पार पहाड़ियों के नीचे तरेटियों में। उधर से ही हूण लोग मार करते थे और इन्हीं पहाड़ियों को अपने अधिकार में करने की उन्हें धुन थी। ये पहाड़ियाँ जिनके अधिकार में हो जायँ वह अजेय था। ऊपर से भयंकर मार करने में बहुत बड़ी सुविधा भी थी।

हूणों को पता लग चुका था कि शत्रु उनके सिरों पर आ चुका है। उन्होंने उस दिन रात्रि में ही हमला करने का निश्चय किया। राज्यवर्द्धन का गुप्तचर अपने कार्य में बड़ा निपुण था। वहाँ पहुँचते ही उन्होंने प्रथम अपने गुप्तचरों को शत्रु का बल आंक लाने का आदेश दिया। हूण भी महान पराक्रमी थे। इस बार उनकी सैनिक शक्ति भी कुछ कम न थी, किन्तु उनका युद्ध प्राय: लूट-मार के रूप में होता था। फिर भी इस बार इन्हें व्यवस्थित ढंग से लड़ना था। इस की भी तैयारी की जा रही थी।

गुप्तचरों ने उस रात्रि हमला होने का संदेश ला कर दिया। बस फिर क्या था ! दुन्दुभियाँ बज उठीं। सभी सेनाओं को तत्काल तैयार हो जाने का आदेश दिया गया। सेनापति और राजकुमार ने परामर्श करके आधी सेना पहाड़ियों के पारवाली तरेटियों में भेज देने का निश्चय किया, शेष सेना को लघु भ्राता हर्षवर्द्धन के अधिकार में छोड़ स्वयं उन्होंने युद्ध-स्थल की ओर जाने की तैयारी की। हर्ष की सहायता के लिये ममेरे भाई भांडी को शिविर में रहने दिया गया।

धड़ाधड़ सैनिक नीचे उतरने आरम्भ हुए। अभी रात्रि का आगमन हुआ ही था। पर्वतों पर गहरा अन्धकार छा रहा था। उसी अंधकार में मशालों की सहायता से बिना किसी रुकावट के सेनापति ने पाँच सहस्त्र सैनिक नीचे तरेटियों में उतार दिये। तरेटियों में पहिले जंगल थे, बाद में गाँव

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

पड़ते थे । ग्रामनिवासी हूणों के अत्याचार से प्रायः त्रस्त ही रहते थे । इसी-लिये अपनी रक्षा के लिये उनके द्वारा राज्यवर्द्धन की सेना का साथ देना स्वाभाविक था ।

राज्यवर्द्धन ने एक चाल चली । सामने के जंगलों में थोड़े-से सैनिक बैठा कर स्थान-स्थान पर दूरों पर आग जलवा दी, जिससे हूण समझें कि यहीं शत्रु के शिविर हैं । और अपनी सारी सेना अगल-बगल के गाँवों, जंगलों और खेमों में छिपा दी । योजना यह थी कि जब हूण-सेना गाँवों से होकर उस जंगल की ओर बढ़े जहाँ आग जल रही है, तो उसका पीछा कर जंगल में ही उसे घेर लिया जाय और तब हो घमासान !

यही किया गया । निश्चित समय में, आधी रात के बाद बर्बर हूण आये और शिकार को सामने के जंगलों में पा कर बड़े प्रसन्न हुए । वे समझते थे कि शत्रु सेना पर्वतों पर डटी होगी, किन्तु जंगलों में प्रकाश देख कर उन्हें विश्वास हो गया कि सामने ही शत्रु का पड़ाव है और चुपके से हमला करते ही वहाँ कुहराम मच जायगा, तब फिर विजय-श्री हमारी होगी ! किन्तु उन्होंनें धोखा खाया । ज्यों ही हूण सेना जंगलों में प्रविष्ट हुई, ग्रामीणों की सूचना पा कर खेतों में छिपे भारतीय सैनिक बाहर निकल पड़े और उस जंगलों की भुलभुलैया में उन्हें घेर लिया । भयंकर मार-काट मची । धड़ाधड़ म्लेच्छों के सिर कट-कट कर गिरने लगे । गये थे शत्रु को उल्लू बनाने और बन गये स्वयं । मशालों के प्रकाश में टकराती तलवारें और भाले चमक-चमक कर विद्युत उत्पन्न कर रहे थे । हा, हू, मारो, काटो की तीव्र ध्वनि ने मेघ-गर्जन और तलवारों की चकाचौंध ने बिजली दमकनेका-सा दृश्य उपस्थित कर दिया था ।

किन्तु आखिर कब तक ठहर पाता हूणों का बल ! जब आरंभ में ही उनका मस्तिष्क भुलभुलैया के चक्कर में फंस गया तब उन्हें सफलता कहाँ से मिल पाती ! मची भगदड़ । जिसको जिधर मार्ग मिला, सिर पर पैर रखकर भागा । अंधकार था, कहीं ठोकर खाई कि गिरे । ऊपर से शत्रु की चमचमाती तलवार झपटी और दो टुकड़े कर दिये । भगदड़ से राज्य-

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

वर्द्धन की सेना को और भी अवसर मिला। उसने हूणों की अधिकांश वाहिनी को सुला दिया। शेष थोड़े-बहुत प्राण बचाकर भाग गये। आज के युद्ध में हूणों को करारी पराजय मिली। गर्वोन्नत विजयी भारतीय सनिक शिविर को लौटे। थोड़े-से सैनिक इधर से मारे गये थे, किन्तु यह तो हुआ ही करता है। किसी को इसकी परवाह न थी। रात एक पहर से भी कम रह चुकी थी। राज्यवर्द्धन अपने नित्यकर्म में लग गये और सैनिक-दल विश्राम करने लगा।

: ८ :

हूणों पर धावा

दिन निकला। सूर्य की बालरश्मियाँ सैन्य शिविरों पर दूध-सी खिल उठीं। रात्रि के तुषार-कण पर्वतमालाओं और शिविरों के खेमों पर मोतियों से चमकने लगे किन्तु वह चमक अधिक देर न टिक पाई। बालरवि ने जहाँ जरा अंगड़ाई ली और उसमें स्फूर्ति आई कि उसके तेज से मोती पिघल कर उन्हीं खेमों में विलीन हो गये। रात्रि का तेज चमक उठा। लोगों का आलस्य जाता रहा। सैनिकों के शरीर रात्रि-युद्ध के कारण शीत-पाले से मानों कुण्ठित हो रहे थे। सूर्य के प्रताप नें उनमें नया बल, नई स्फूर्ति और नया तेज भर दिया। सारी सेना सतर्क थी, कहीं धोखे में फिर आक्रमण न हो; किन्तु राज्यवर्द्धन और सेनापति निश्चिन्त थे। वे जानते थे, हूण अब सहज ही आक्रमण न कर पायेंगे।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

सेनानायक बुलाये गये । बैठक आरम्भ हुई । योजना पर विचार शुरू किया गया । सर्व प्रथम गुप्तचरों की टोली शत्रु के शिविर में भेजी गई, जिसे शीघ्र शत्रु की टोह लेकर तत्काल सूचना देने का आदेश दिया गया।

सेनापति न अपनी सलाह दी--'इस बार हूणों के शिविरों पर हमारी ओर से हमला किया जाय। राजनीति कहती है कि प्रतिद्वन्दी के सामने आते ही पहिल जो वार कर दे, उसी की विजय होती है। शत्रु इस समय असावधान होगा । कल की लड़ाई में उसने जो मुँह की खाई है, उससे अब बिना प्रबल तैयारी किये हमला न करेगा । इसलिये उचित यही है कि उसे तैयारी ही न करने दी जाय और युद्ध में फंसा लिया जाय ।'

एक सेनानायक बोला, 'वहाँ जाने पर कहीं हमीं लोगों को धोखा न हो । जैसे हूण लोगों को चकमा देकर आज हमने पराजित किया, उसी प्रकार उन्होंने भी कोई गुप्त षड्यन्त्र हमलोगों के लिये न रचा हो ? तब हमारी सेना उनके पंजे में बुरी तरह फंस जायगी ।'

'किन्तु उन्हें स्वप्न में भी यह विश्वास न होगा कि रात की लड़ाई के बाद आज ही हमलोग उन पर हमला कर देंगे । अभी तो कल की भयंकर मार खा कर संभले भी न होंगे कि दूसरा भीषण आक्रमण होने से उनकी बधिया बैठ जायगी ।'

राजकुमार को सेनापति की सलाह पसन्द आ रही थी । बोले--'वास्तक में इस समय जो हमला करेगा, विजयश्री उसी के हाथ रहेगी । कल की पराजय से हूण कई दिन तक संभल न पायेंगे । हमारा आक्रमण आज ही और इसी समय होना आवश्यक है ।'

राजकुमार की इच्छा के विरुद्ध कौन बोलता ? सभी सहमत हो गये । अधिकांश को यह सलाह पसन्द भी आई थी । केवल गुप्तचरों की सूचना का विलम्ब था । उसके मिलते ही सेना के कूच करने की तैयारी का निश्चय कर लिया गया ।

गुप्तचर आये । बहुत अच्छा और अनुकूल संवाद दिया । बताया कि शत्रु आज क्या, कल तक भी पुनः आक्रमण नहीं कर सकता । वह कुछ

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

दूसरी ही योजना बनाने में व्यस्त है । अभी तो कल की मार के बाद उसे सुध भी नहीं आई।

बस फिर क्या था ? राजकुमार राज्यवर्द्धन के नेतृत्व में चतुरंगिणी सेना के सात हजार सैनिकों ने कूच कर दिया । इस वार भी छोटे भाई हर्ष को शेष सेना के संरक्षण के लिये वहीं रहने दिया गया । वास्तव में महाराज प्रभाकरवर्द्धन की आज्ञानुसार हर्ष युद्ध का केवल तमाशा देखने आये थे । महाराज ने राज्यवर्द्धन और सेनापति को हर्ष को युद्ध में भाग न लेने के लिए आदेश दे रखा था ।

हर्षवर्द्धन खाली बैठे-बैठे क्या करते ? उन्हें शिकार खेलने का बड़ा शौक था । शिविर का भार भांडी पर छोड़ वे नित्य घोड़े पर सवार हो कर पर्वतों में बसे घने जंगलों में निकल जाते और दिन भर आखेट करते घूमते । साथ में सशस्त्र सैनिकों का दल होता । इसी सैर-सपाटे में मनोहर पर्वतों के गर्भ में छिपी प्राकृतिक सुन्दरता की दिव्य छटा देखने को मिलती । कहीं सुन्दर-सुन्दर झरने, उनके किनारों पर बसी नेत्रों को तृप्त करनेवाली मोहक हरियाली और प्रपात से गिर-गिर कर इधर-उधर उड़नेवाले तुषार कण किसी भी मनुष्य को अपने बस में करने का पर्याप्त साधन थे । हर्ष का हृदय उन्हीं में समा-समा जाता था । वन्य पशुओं का संहार छोड़ कर वे प्रकृति की सभी कला देखने में ही फंस जाते । अखंड शांति का साम्राज्य था । झरनों की कल-कल ध्वनि और पक्षियों की चहचहाहट के अतिरिक्त कभी-कभी वन्य पशुओं की गर्जना से वातावरण गूंज उठता था । इतने में ही कहीं कोई सिंह दिखाई दिया कि राजकुमार ने तत्काल धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाई, वाण रख कर कान तक खींचा और निशाना मारा । सिंह गरज उठा । वाण से उसका क्रोध जाग उठा । मुड़ कर झपटने को दौड़ा । चतुर राजकुमार ने दूसरा वाण नहीं छोड़ा और उसे पास आने दिया । सिंह ने समझा कि बस शिकार अब मुंह में, किन्तु ज्यों ही पास आया कि राजकुमार ने उसको भाले पर टांग लिया । भाला सिंह के पेट में धँस गया और वह गरजता हुआ

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

पृथ्वी पर लोट गया । राजकुमार उसके पास पहुँचे; देखा, अभी तक जीवित है । तलवार निकाली और पेट चीर कर रख दिया । यह था, निराला तरीका, राजकुमार के शिकार करने का । भय तो कहीं छू भी नहीं गया था । सिंह को मार डाला, मानों मच्छर मसल डाला । हंसते-हंसते खेलते-खेलते बड़े-बड़े जंगली हाथियों तक को अपने बस में कर लेना राजकुमार का सहज कार्य था । नन्हीं-सी उम्र और इतना बड़ा काम ! तभी तो भाग्य ने, विधाता ने माथे पर भारत का विशाल साम्राज्य लिख दिया था । नित्य लौटने पर बड़े भाई पूछते, 'आज कितने हिंसक पशु मारे ?' सदैव उत्तर होता, वीस-पचीस, तीस और कभी-कभी इस से भी अधिक ।

थोड़े ही दिनों में वह हिंसक पशुओं से भरा गहन वन सूना हो गया । हर्षवर्द्धन ने सब का सफ़ाया कर डाला । जो बचे, वे डर के मारे उस जंगल को छोड़ कर अन्यत्र भाग गये ।

इधर लघु भ्राता हिंसक पशुओं का उद्धार करने में व्यस्त थे, तो ज्येष्ठ राज्यवर्द्धन हूणों का । उस दिन अचानक भारतीय सेना हूणों के शिविरों पर टूट पड़ी । बेचारों को कत्तई पता न था, सब बेसुध पड़े थे । अचानक आक्रमण ने तो और भी उनके पैर उखाड़ दिये । मूर्ख सब, समझते थे कि हमीं शत्रु के डेरे पर हमला करें तो करें, वह तो पंगु है । यहाँ तक चल कर कैसे आयेगा ? पर शत्रु को एक नहीं दो-दो पैर थे और उन्हीं से चल कर उसने उनके निश्चिन्त शिविर पर कहर ढाह दिया । जो जहाँ मिला, वहीं काट कर गिरा दिया गया । फिर भी दिन का समय था । इसलिये हूणों को कुछ अवसर तो मिल ही गया अपनी वीरता दिखाने का । बहुत से शस्त्र लेकर आ डटे । दोनों ओर से घमासान युद्ध हुआ । तलवारों पर तलवारें बजने लगीं । पास का युद्ध था, इसलिये धनुष-बाण बेकार थे । भालों ने भी काफी सहयोग दिया । भारतीय सैनिक घोड़े पर थे, हूण पैदल । घोड़े संभालने का उन्हें अवसर ही नहीं दिया गया । भालों से टाँग-टाँग कर पृथ्वी पर सुलाते गये, किन्तु कुछ देर में उस ओर

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

के वीरों ने भी वीरता दिखाना आरम्भ किया। अब तक घोड़ों को उन्होंने तैयार कर लिया था। आ डटे आमने-सामने। दोनों ओर के घुड़सवार वीरों ने कमाल कर दिया। वायुवेग से हाथ चल रहे थे। किसी के एक हाथ में, तो किसी के दोनों हाथ में तलवारें थीं। लड़ते-लड़ते एक टूट गई तो दूसरी संभाल ली। राज्यवर्द्धन सबसे आगे थे। सेनापति भी साथ में थे। दोनों के सामने दो हृष्ट-पुष्ट बलवान वीर लड़ रहे थे। राज्यवर्द्धन का नया यौवन था। उनमें फुर्तीलापन इतना था कि पता नहीं चलता था—कब तलवार घमाई, कब पैंतरा बदला और शत्रु का सिर साफ़ भुट्टे-सा उड़ गया! सामने वाला वीर भी कम चतुर न था। बड़ी फुर्ती से तलवार घुमा रहा था। राज्यवर्द्धन और उसकी घमासान हो गई। दोनों की तलवारें इस प्रकार खेल रही थीं जैसे चंचल दामिनी। काफी देर बीत गयी किन्तु शत्रु को हारते न देख राज्यवर्द्धन ने एक चाल सोची। घोड़ा उसके घोड़े के साथ जा मिलाया और कूद कर उसके घोड़े के पीछे जा बैठे। पीछे से उसे ऐसा धर दबाया कि उसे लिये-दिये घोड़े से नीचे आ पहुँचे। अब पृथ्वी पर उसे पटकना आरम्भ किया। जब उसकी अच्छी प्रकार दुर्गति हो गई तो कमर से छुरा निकाला कर पेट में भोंक दिया, वह वहीं चित्त हो गया।

सेनापति से जो वीर लड़ रहा था, उसने भी उन्हें खूब छकाया। सेनापति उससे परेशान हो रहे थे, किसी प्रकार भी वह हार खाने को तैयार-न था। सेनापति ने भी बुद्धि लड़ाई। पास से लड़ने में वह दिन भर न हारेगा। यह सोच कर उन्होंने घोड़े की एड़ लगाई और उसे कुछ पीछे हटा ले गये। जब शत्रु से कुछ फासला हो गया तो कमर से छोटी कटार निकाली, नोक से पकड़ा और दे मारा। यह काम इतनी तीव्रता से किया कि शत्रु को बचने का अवसर ही न दिया। कटार उस की छाती में जा लगी और वह आह करके पृथ्वी पर जा लोटा। सेनापति झट घोड़े से कूदे और तलवार से उस का सिर भी अलग कर दिया।

चार घंटे जम कर युद्ध हुआ। अन्त में शत्रु योद्धा मैदान छोड़ कर भागने लगे। बहुत से मारे जा चुके थे। फिर भी काफी सैनिक हूणों

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

की सेना में थे । सेनापति ने उनका पीछा करना चाहा किन्तु राज्यवर्द्धन ने मना कर दिया । कहा—'मध्याह्न हो चुका है । जाने दो । अब सायंकाल या कल देखा जायगा । इनका शिविर तो अपने हाथ आ ही गया है ।'

और युद्ध बन्द हो गया । हूणों के शिविर में से काफी अस्त्र-शस्त्र हाथ लगे, जिन्हें वे छोड़ गये थे । राज्यवर्द्धन ने इस शिविर पर अपना अधिकार कर लिया ।

———

: ९ :

विपत्तियों का आरम्भ

लुटेरे हूणों की शक्ति भी कम न थी । उन्हें पूर्णत: पराजित करने में काफी समय की आवश्यकता थी । राज्यवर्द्धन की प्रबल सेना हूणों को निरन्तर पीछे खदेड़ रही थी और वे पश्चिम की ओर भाग रहे थे; किन्तु राज्यवर्द्धन का दृढ़ निश्चय था कि इस बार हूणों का अस्तित्व समाप्त कर के ही लौटा जायगा । इसी निश्चयानुसार राज्यवर्द्धन उन्हें खदेड़ता हुआ पश्चिम की ओर बढ़ रहा था ।

युद्ध होते महीनों बीत चुकें थे । सायंकाल की वेला थी । सेनाएँ भीषण संग्राम में संलग्न थीं । हर्षवर्द्धन अभी-अभी शिकार से लौटे थे कि प्रहरी ने उनके शिविर में प्रवेश कर प्रणाम किया और निवेदन किया, 'राजधानी से दूत आया है ।' आज्ञा पाकर प्रहरी तत्काल बाहर गया । हर्षवर्द्धन का हृदय धक-धक करने लगा । 'न जाने क्या संवाद लाया होगा ? पिताजी सकुशल तो होंगे न ? राज्य में कुशल तो होगा ?' उनके हृदय की धड़कन बढ़ने लगी ।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

दूसरे ही क्षण प्रहरी के साथ दूत सामने आया और मस्तक झुका कर सामने खड़ा हो गया। हर्षवर्द्धन उसे पहिचानते थे। कुरंगक उसका नाम था। उसने तत्काल झोले में से एक पत्र निकाल कर उनके हाथ में दिया। उसका मुँह घबराया हुआ था। शरीर कांप-सा रहा था। हर्षवर्द्धन देखते ही जान गये कि संवाद में कुछ भयानकता अवश्य है। पत्र खोला, आँखों ने तुरन्त ही सब कुछ पढ़ लिया।

प्रधानमंत्री ने लिखा था—

'मान्यवर युवराज! महाराज का स्वास्थ्य बहुत क्षीण है। वे तीव्र ज्वर से अत्यधिक पीड़ित हैं। औषधियाँ दी जा रही हैं। तत्काल चले आइये।

सेवक, शत्रुमर्दन।'

हर्ष तो बावले-से हो गये। बड़े भाई युद्ध में जूझे हुए हैं। बिना कहे चला जाना भी उचित नहीं, किन्तु कुरंगक ने कहा, 'विलम्ब न करिये युवराज! न जाने क्या का क्या हो जाय?'

हर्षवर्द्धन परिस्थिति की भयंकरता समझ गये। प्रहरी को आदेश दिया—'तत्काल भांडी को बुला लाओ।' वह चला गया। हर्ष ने झटपट भाई के नाम एक पत्र लिखा, जिसमें पिता के रोगग्रस्त होने एवं अपने जाने का समाचार लिखा और पत्र एक सैनिक के हाथ में दे कर आते ही उन्हें दे देने का आदेश दिया।

प्रहरी थोड़ी देर में भांडी के साथ लौटा। हर्ष ने सारा समाचार सुनाया और अपने जाने का निश्चय भी। भांडी सुनकर स्तब्ध रह गया। उसके मुंह पर भय की रेखाएँ खिच आईं—'न जाने भगवान् क्या करना चाहता है। युवराज युद्धक्षेत्र में मौत के मुंह हैं, और इधर महाराज के असाध्य रोग का दु:संवाद।' सोचते ही भांडी का शरीर कांप गया, 'भगवान् तुम्हीं रक्षा करना!'

हर्षवर्द्धन ने भांडी को तुरन्त राजधानी रवाना होने के लिये तैयारी करने की आज्ञा दी और उसे भी अपने साथ चलने को कहा।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

भांडी अपने स्वामी का अत्यधिक आज्ञाकारी था। यद्यपि उसे परिस्थिति कुछ और ही सुझा रही थी। और वह यह जान रहा था कि युद्ध-क्षेत्र से उसका न जाना ही उचित है, क्योंकि बड़े राजकुमार को अकेले युद्ध में छोड़ देने से उनपर न जाने क्या विपत्ति पड़े? हर्षवर्द्धन भी जा रहे हैं। किन्तु उनकी आज्ञा शिरोधार्य कर वह चल दिया और कुछ देर में ही रथ सजा कर भिजवा दिया।

'रथ तैयार है महाराज!' प्रहरी ने अन्दर आकर सूचना दी।

'भांडी कहां हैं?'—हर्षवर्द्धन ने पूछा।

'किसी आवश्यक काम से शिविर में गये हैं। तत्काल आ रहे हैं।'

हर्ष उठ खड़े हुए। चलते-चलते एक बार पुनः उस सैनिक को बुला कर अपना पत्र तत्काल बड़े भाई को दे देने की स्मृति दिलाई और शिविर के बाहर हो गये।

थोड़ी देर में भांडी भी आ गया। हर्ष ने पूछा—'कहां गये थे?'

'उस शिविर के रक्षक को सूचना देने। बिना सूचना दिये जाने से वे लोग घबराने लगते।'

'अच्छा शीघ्र रथ में बैठो। सूर्यास्त होने को है। प्रातःकाल तक आधा मार्ग तय कर लेना है।'

और दोनों रथ पर बैठ गये। सारथी ने घोड़ों पर चाबुक लगाई और वे हवा से बातें करने लगे। रथ से आगे दूत कुरंगक का घोड़ा था और पीछे २० घुड़सवार अंगरक्षक। सभी वायुवेग से चल रहे थे।

मार्ग में कहीं भी विश्राम नहीं हुआ। केवल एक स्थान पर, जब दिन चढ़ चुका, तो शौच-स्नान के लिये घोड़े रोके गये। एक घंटे में ही नित्य-कर्म से निवृत्त होकर फिर आगे प्रस्थान हुआ। हर्षवर्द्धन का मन चंचल हो रहा था—'जितना शीघ्र हो, राजधानी पहुँचें। कहीं पिताजी का स्वास्थ्य अधिक बिगड़ गया तो न जाने क्या होगा?' तीव्रगामी घोड़े तो जितनी उनमें शक्ति थी, दौड़ लगा रहे थे किन्तु हर्षवर्द्धन का मन दौड़ लगा कर पहिले ही पिता के पास, उनकी शैय्या के पास जा पहुँचा था।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

हर्ष एकदम ध्यानस्थ हो सोच रहे थे—'पिताजी को तीव्र ज्वर चढ़ा है। पास में शैय्या पर मां बैठी हैं। बहुत से दास-दासी चारों ओर खड़े हैं। वैद्यराज औषधि घोल कर पिला रहे हैं। फिर भी उन्हें शांति नहीं। वह बिना नीर की मछली की तरह छटपटा रहे हैं, और.....और फिर...... फिर ?' इससे आगे सोचने पर हृदय कांप जाता। फिर न जाने क्या हुआ ?'

यद्यपि हर्ष बहुत साहसी और धैर्यवाले थे किन्तु यही सब कल्पनाएँ उनके लिये भयावह हो रही थीं। बड़े भाई रणक्षेत्र में हैं। भगवान् उनको सकुशल रखें। हूणों की दुष्ट जाति होती बड़ी खतरनाक है। कहीं भाई को कुछ हो न जाय ?

यही सब सोचते-सोचते समय बीत गया। सायंकाल होने लगा। उनका रथ प्रायः सारा मार्ग पार कर चुका था। राजधानी के पास के ग्राम दिखाई देने लगे थे। यह देखकर चित्त को कुछ शांति मिलती, वहीं उसमें घबड़ाहट बढ़ भी जाती—'पिताजी का स्वास्थ्य कहीं अधिक खराब न हो ?'

थोड़ी देर में ही राजधानी आ पहुँची। सारथी ने पलक मारते-मारते राजभवन के हाते में प्रवेश किया और घोड़ों की लगाम खींची। घोड़ों के रुकते ही कूद कर हर्षवर्द्धन नीचे उतरे और झटपट सीढ़ियाँ चढ़ कर दालान पार करते हुए पिता के शयनकक्ष में पहुँचे। जाते ही पिता के चरणों में प्रणाम किया।

पुत्रको आया देखकर वृद्ध राजा ने सन्तोष की साँस ली। छूटते ही प्रश्न किया–'राज्यवर्द्धन तो कुशल से है न ? युद्ध का क्या संवाद है ?"

'ईश्वर कृपा और आपके आशीर्वाद से सब कुशल है। भैया युद्ध-क्षेत्र में थे जब मैं उन्हें छोड़ कर आया। आप अपना बताइये। ज्वर कैसा है ? औषधि क्या ले रहे हैं ?'

'तुम आ गये, अब मैं ठीक ही ठीक हूँ। पहिले यह बताओ, हूणों की सेना इस समय कहाँ तक खदेड़ी जा चुकी है ?'

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

'उन्हें तो सिन्धु पार खदेड़ दिया जायगा, पिता जी ! हमारी सेना के सामने उनकी एक नहीं चल सकती । आधे से अधिक हूणों का सफाया हो चुका है । आप चिन्ता न करें ।'

वास्तव में पिता को पुत्र के आने से काफी आराम मिला । उन्हें अपने यवा पुत्रों की चिन्ता सता रही थी और यही कारण उनके रोग में वृद्धि कर रहा था ।

उस दिन तो प्रभाकरवर्द्धन को कुछ आराम रहा, किन्तु रोग जड़ पकड़ चुका था—दूसरे दिन से पुनः उसने भीषण रूप धारण कर लिया । राजा का स्वास्थ्य दिन प्रति दिन गिरता जा रहा था । हर्षवर्द्धन ने बड़ेसे बड़े कुशल वैद्यराजों को बुलाया और किसी भी मूल्य पर अपने पिता का स्वास्थ्य ठीक करने की प्रार्थना की, किन्तु वैद्यराज क्या कर सकते थे ? शक्ति भर वे इलाज करते रहे । पर ईश्वर की इच्छा कुछ और ही थी, राजा को उन औषधियों से कुछ लाभ न हुआ ।

कुछ दिन वाद ज्वर के साथ-साथ उन्हें संग्रहणी रोग ने भी आ घेरा । अब तो और रोग असाध्य हो गया । सारा नगर शोककुल हो गया । नगर-वासियों की अपार भीड़ राजभवन की ओर दौड़ पड़ी । महाराज का स्वास्थ्य जानने के लिये प्रजा अत्यधिक चिन्तित थी । अपने प्रिय राजा का रोग असाध्य सुन कर उनके कलेजे काँप उठे । सभी लोग मन्दिरों में जा-जा कर देवी-देवताओं से अपने राजा के स्वास्थ्य के लिये प्रार्थना करने लगे । श्रद्धालु महिलाओं ने राजा के रोग-निवारण के लिए बड़े-बड़े कठिन व्रत, उपवास रखने आरम्भ कर दिये । स्त्रियाँ विभिन्न देवियों के मन्दिरों में जा-जा कर माथे टेंकतीं और प्रार्थनाएँ करतीं कि किसी भी प्रकार राजा को स्वास्थ्य-दान मिले ।

सब कुछ हुआ किन्तु राजा के स्वास्थ्य में तनिक भी लाभ के चिह्न प्रकट न हुए । वरन् स्थिति उत्तरोत्तर बिगड़ने लगी । प्रधान मन्त्री के परामर्श से हर्षवर्द्धन ने बड़े भाई को बुलाने के लिए युद्धक्षेत्र में एक के बाद एक कर के कई दूत भेजे; किन्तु बिना युद्ध समाप्त किये वहाँ से

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

लौटना राज्यवर्द्धन के लिए कैसे संभव था ? यदि वे अधूरी लड़ाई छोड़ कर लौट आते, तो इतने दिनों के किये कराये पर पानी फिर जाता । वे और भी जोश से हूणों को खदेड़ने लग गये ।

—:०:—

: १० :

मता-पिता का देहावासान

राजकुमार हर्ष पर यहीं से विपत्ति के बादल मंडराने लगे । हर्षवर्द्धन का सम्पूर्ण जीवन संघर्षमय रहा, किन्तु राज्याधिकार मिलने से पूर्व तो मानों उन पर विपत्तियों का सागर ही उमड़ पड़ा । जिसकी उत्तुंग लहरों में उन्हें बराबर गोते खाने पड़े ।

वास्तव में संघर्षमय जीवन ही मनुष्य के महान् बनने का कारण होता है । सच पूछा जाय तो इन्हीं विपत्तियों ने बालक हर्ष को महाराज हर्ष-वर्द्धन, पृथ्वीविजेता सम्राट् हर्षवर्द्धन महान् बनाया । विपत्तियाँ मनुष्य को अनुभवशील बनाती है और अनुभवी व्यक्ति ही महान् बन सकता है ।

राजा के असाध्य रोग से सभी प्रजा, राज-परिवार, मंत्रीगण, बन्धु-बान्धव, रानियाँ, हर्षवर्द्धन और दास-दासियों तक व्याकुल हो कर विक्षिप्त-से हो रहे थे । इस का सर्वाधिक भार हर्ष पर था । पिता के स्वास्थ्य की चिन्ता सबसे अधिक उन्हें थी, क्योंकि कहीं दुर्भाग्य ने कुछ उल्टा ही किया और राजा चल बसे तो राज्य का क्या होगा ? कहीं उपद्रव फैल कर अराजकता व्याप्त न हो जाय ? उत्तराधिकारी बड़े भाई भी उपस्थित नहीं हैं । कौन राज्य में शान्ति स्थापित बनाये रखेगा ?' उन्हें इन बातों की भी चिन्ता थी । वे जानते थे कि इन सब बातों का भार उन्हीं पर लादा जायगा और इस में वे अपने को असमर्थ पा रहे थे ।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

उन्होंने एक बार फिर कुशल दूतों को बुला कर उन्हें तीव्रगामी वाहनों द्वारा युद्ध-क्षेत्र में रवाना किया और तत्काल बड़े भाई राज्यवर्द्धन को सारी परिस्थिति समझा कर अपने साथ ही लिवा लाने का आदेश दिया । दूत रवाना हो गये ।

इधर इसी समय उन्हें एक दासी ने आकर बहुत ही भयानक और दुःखद समाचार सुनाया। जिसे सुनकर हर्ष रनिवास की ओर भागे गये। जा कर देखा—माता अन्य रानियों के साथ केसरिया बाना पहिने विविध साज-श्रृंगार किये कहीं जाने को तैयार खड़ीं हैं। परिस्थिति को समझते हर्षवर्द्धन को देर न लगी। वे माता के चरणों पर गिर कर फूट-फूट कर रोने लगे। वे चिल्ला पड़े। दहाड़ भर-भर कर सिर पटकने लगे।

'माँ!' हर्ष चीख कर बोले, 'तुम कहाँ चलीं! हमें अनाथ बना कर क्या चल दोगी माँ ?' हर्ष की आँखें झरने बहा रही थीं ।

माँ ने अपने लाल को छाती से लगा लिया। बोलीं, 'सब के माता-पिता तो सर्वशक्तिमान् ईश्वर हैं। मैं तो नाम मात्र की माँ हूँ। मैं ने तुम्हें जन्म दिया लालन-पालन कर बड़ा कर दिया। अब माँ दुर्गा और परमपिता परमेश्वर, ही तुम्हारी रक्षा करेंगे बेटा ! ये तो हम भारतीय नारियों का कर्त्तव्य है, इसे रोकना उचित नहीं।' माँ ने स्नेहपूर्वक वात्सल्य भरे हाथों से पुत्र को ढाढ़स बधाई ।

'किन्तु पिताजी अवश्य अच्छे हो जाएँगे, मां ! तुम पहिले ही हम सब को ठोकर मार कर क्यों चली जा रही हो ?'

'भगवान् करें तेरे पिता युग-युग जियें। किन्तु बेटा! उनकी वृद्धावस्था इस असाध्य रोग को सहन करने में असमर्थ हो चुकी है। औषधियाँ जवाब दे चुकी हैं। आशा करना व्यर्थ है। तुम अपने भाई सहित राज्य का सुखपूर्वक भोग करना। प्रजा की सजग होकर रक्षा करना। देश में सुख-शान्ति स्थापित करना। यही तुम्हारा कर्त्तव्य है।' और रानी यशोमती उठ खड़ी हुईं ।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

हर्ष ने माँ के चरण पकड़ लिये, और फूट-फूट कर रोने लगे। वे किसी प्रकार भी माँ को इस प्रकार सती होने देने के लिए सहमत न थे। बड़े भाई की अनुपस्थिति में इतना बड़ा काण्ड हो जाये ! वह बड़े भाई को क्या उत्तर देंगे ! कहेंगे कि अपनी आँखों से माँ को अग्निकुण्ड में भस्म होते देखता रहा और रोक न सका ? और पिता भी अन्तिम घड़ियाँ गिन रहे हैं। माता-पिता दोनों को खो कर मैं भाई को क्या मुंह दिखाऊँगा ?'

हर्ष ने विनय की—'भैया के आने तक रूक जाओ, माँ ! मैंने बड़े ही तीव्रगामी वाहनों द्वारा कुशल दूत भेजे हैं। वे आते ही होंगे।'

"मैं अपनी आँखों के सामने अपने स्वामी का शरीर शान्त होते नहीं देख सकती। क्या तुम इस का वचन दे सकते हो ? हठ मत करो हर्ष ! मुझे कर्त्तव्यच्युत करने का प्रयास मत करो।' माता की वाणी में गम्भीरता आने लगी।

'बालक हूँ, अबोध हूँ, माँ ! मुझे धैर्य कैसे हो ? मुझे सुबुद्धि दो !' हर्ष की आँखों को यशोमती में माँ दुर्गा के रूप के दर्शन हुए।

'हृदय कड़ा करो, हर्ष ! कर्त्तव्य के लिए हृदय पर पत्थर भी रखने पड़ते हैं। तुमने वेद-शास्त्रों का अच्छी प्रकार अध्ययन किया है। तुम्हें बुद्धि क्या दूँ ? तुम तो स्वयं ही ज्ञानी हो। क्या मेरा पतिव्रत धर्म खंडित करा कर मुझे पाप की भागिनी बनाना चाहते हो। बोलो, बोलो बेटा !'

हर्षवर्द्धन चुप हो रहे। इसके आगे वह क्या बोल सकते थे। अपनी माँ के सच्चे सपूत थे वह। मां को कर्त्तव्यच्युत, और वह भी अपने सुख के लिए, कैसे कर सकते थे। उन्होंने रोते-रोते माँ के चरण छोड़ दिये। मार्ग के सामने से हट गये।

माँ ने उठ कर बालक को हृदय से लगा लिया। मस्तक सूँघा और फिर एक बार स्नेहभरे नेत्रों से पुत्र की ओर देखा तब आगे चल दीं।

किले के भीतर ही उद्यान के उस पार मैदान में कई चिताएँ बनाई गई थीं। राजा की कई छोटी रानियाँ भी थीं। सब द्रुतगति से उस

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

ओर बढ़ने लगीं। पीछे-पीछे हर्षवर्द्धन, दास-दासियाँ, राजपरिवार की महिलाएँ बिलखती हुई जा रही थीं, किन्तु पतिव्रता नारियों को किसी का ध्यान न था। वे बढ़ती जा रही थीं। राजभवन पार किया। उद्यान में पहुँची और फिर उद्यान पार किया तो सामने ही चिताओं की सेज, पतिव्रताओं के लिए फूलों की सेज—वैकुण्ठ जाने का सजा-सजाया विमान दिखाई दिया।

रानी ने कुछ दूर ही सब को रोक दिया और एक बार पीछे की ओर देख कर सबको यथोचित प्रणाम-आशीर्वाद दिया। उन की मुद्रा एकदम गम्भीर थी। केसरिया बाने में, फूलों के साज-शृंगार में वनदेवी-सी लग रहीं थीं। किन्तु हर्षवर्द्धन को वह केसरिया बाना भयानक-सा लग रहा था। मानों वह काल बन कर उनकी माता को घेरने आया हो।

झटपट चिताओं में अग्नि प्रज्वलित की गई। यशोमती ने राजभवन की ओर देखा। मन ही मन पतिदेव को प्रणाम किया और चिता पर चढ़ने को उद्यत हुईं। एक बार पुनः करुणा की जोरदार बाढ़ आई और सारी दर्शक मंडली रो पड़ी।

हर्षवर्द्धन से तो यह दृश्य न सहा गया। 'माँ!' वे चीख कर बोले, 'मुझे भी साथ लिये चलो, मैं स्वर्ग में भी तुम्हारी गोद में बैठा रहूँगा।' और उन्होंने छलांग लगाई।

रानी रुक गईं। पुत्र को गले से लगाया। बोलीं, 'वारबार मोह में क्यों पड़ता है, बेटा! जानता है, पाप होता है ऐसे पवित्र कामों को को रोकने में।'

'मैं अपनी मां के लिए रौरव नरक भी भोग सकता हुँ, माँ!'

हर्षवर्द्धन के गाल बिलकुल भीगे थे। उन्हें पोछते हुए माँ ने कहा, 'किन्तु अपनी माँ को नरक में ठेल कर तो तुझे सुख न होगा। मेरी आज्ञा है बेटा! मुझे जाने दे। आज नहीं तो कल, परसों—एक दिन तो सब की मत्यु आती ही है। क्यों न मैं अभी से इस पवित्र मत्यु का आलिंगन करूँ!'

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

माँ की आज्ञा सुन कर पुत्र सहम गया। आज्ञा का उलघंन कैसे करता ? माँ के चरण स्पर्श कर, वहाँ की धूल अपने मस्तक पर लगा कर वह पीछे हट गया और चिल्ला कर बोला—'बोलो पतिव्रता सती माँ यशोमती की जय !' वह विक्षिप्त-सा हो रहा था।

सारी दर्शक मंडली जय-जयकार कर उठी। सभी की आँखें माँ के वियोग में नदी बहा रही थीं और हृदय में पुत्र के साहस पर उन्हें आश्चर्य हो रहा था। राजभवन में प्रतिध्वनि हुई—'पतिव्रता सती माँ यशोमती की जय !'

अवसर पा कर रानी यशोमति अन्य रानियों के साथ धधकती चिताओं पर चढ़ गई। इधर जयकारों की ध्वनि सुन कर राजभवन के सभी कर्मचारी, मंत्रिगण एवं अन्य अधिकारी दौड़ पड़े और जो कुछ देखा, देख कर उनका हृदय, शरीर और मस्तिष्क एक साथ काँप उठे। वे लोग स्तब्ध, किंकर्त्तव्य विमूढ़ और अकर्मण्य-से हो गये—यह हो क्या गया ? किसी को पता तक न चला और इतना बड़ा दुष्कांड, वह भी राजभवन की सीमा के अन्दर ही ! सब विक्षिप्त-से हो रहे थे।

इधर प्रचण्ड अग्नि की धधकती शिखाओं ने क्षणों में रानीके शरीर को अपनी लपटों में विलीन कर दिया। दर्शकगण की स्थिति का वर्णन कठिन है। सभी के चेहरों पर कुछ विचित्र-सी रेखाएँ नांच रही थीं। अर्धविक्षिप्त-सी हालत ! कोई किसी से बोल न पा रहा था। सब चुप थे। जैसे किसी गूढ़ सोच-विचार में संलग्न हों। या जैसे उन्होंने भांग अथवा सुरा अत्यधिक चढ़ा ली हो। बिल्कुल नशे में चूर ! किसी को सूझ न पा रहा था कि वह अब क्या करे ? महाराज को जा कर क्या उत्तर दें ? गिरते-पड़ते सब लोग किसी प्रकार राजभवन में आये।

मृत्यु-शय्या पर पड़े महाराज प्रभाकरवर्द्धन ने मंत्री को बुलाया। पूछा—'कैसा शोर था ! कौन मेरी रानी की जय पुकार रहा था ? कहाँ है वह ? हर्षवर्द्धन कहाँ है ?' राजा ने एक साथ प्रश्नों की झड़ी लगा दी।

मंत्री मौन थे। किसी के मुँह से किसी प्रकार का बोल न निकल पा रहा था। हर्षवर्द्धन लज्जित और दुःखित अवस्था में एक दम पीछे छिपे खड़े थे। प्रधानमंत्री ने उन्हें आग्रहपूर्वक पिताके सामने ला खड़ा किया। पिता के

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

सामने ग्राते ही मानों युवक हर्ष तो पुनः एक बालक हर्ष हो गये । बड़े-बड़े सिंहों, मतवाले हाथियों को खेल-खेल में यमपुरी भेज देने की सामर्थ्य रखने वाले साहसी, महान् धैर्यशाली राजकुमार हर्षवर्द्धन ग्राज बालकों की तरह साहसहीन ग्रौर बेचैन हो रहे थे। उन्होंने पिता के चरण पकड़ लिये। राजा के रोग-शैय्या पर पड़े होने के कारण लोगों को नहीं चाहिये था कि वे उनके सामने इस प्रकार शोक विह्वल होकर ग्राते। कमसे कम हर्षवर्द्धन को पिता के सामने इस प्रकार रोते देख कर लोगों को उन्हें रोकना चाहिये था; किन्तु किसी में इतनी सामर्थ्य नहीं थी। वास्तव में उस समय थी भी भयंकर परिस्थिति। सब लोगों के देखते-देखते राजमहिषियों का इस प्रकार धधकती चिताग्रों में कूद कर प्राण दे देना एक साधारण घटना नहीं थी। ऐसे समय धैर्य-धारण सरल बात न थी, किन्तु उस धैर्यहीनता का परिणाम ग्रौर भी बुरा हुग्रा। पुत्र को इस प्रकार विह्वल देख कर ग्रौर सभी मंत्रियों, राज-परिवार के सभी लोगों एवं दास-दासियों तक के मुरझाये चेहरे तथा कम्पित गात देख कर कठिन रोग से ग्रस्त राजा ग्रौर भी व्याकुल हो उठे।

उन्होंने कठिनाईपूर्वक शय्या से उठ कर पुत्र से पूछा—'ग्राखिर बात क्या है, जो तुम लोग एक दम घबराये, बेचैन-से दीख रहे हो। रानी कहाँ है, उसे जल्दी मेरे सामने लाग्रो। मेरे बच्चे को क्या हो गया है? बात क्या है मंत्री! तुम्हीं कुछ बताग्रो।' राजा भी विह्वल हो उठे।

'मैं ग्रपराधी हूँ पिताजी! मैं कुछ न कर सका। मैंने बहुत बड़ा ग्रपराध किया है।' हर्ष पुनः रो उठे। राजा चकित थे। ग्राखिर ये लोग उनके इतना कहने पर भी रानी को नहीं बुला रहे हैं। कुछ दाल में काला ग्रवश्य है। 'तो रानी को नहीं बुलाग्रोगे?' राजा शय्या से स्वयं उठने लगे—'मैं स्वयं बुला लाता हूँ।'

ग्रब मंत्रिगण संभले। राजा को पकड़ कर शय्या पर बैठाया। 'ग्राप चिन्तित न हों राजन्! हम लोग ग्रभी सारी परिस्थिति श्रीमान् के सामने रख देंगे।'

'तो बताते क्यों नहीं रानी कहाँ हैं?' राजा का शरीर काँप रहा था। वे तकिये के सहारे बैठ गये।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

'प्रभु ! हम ने उन्हें बहुत समझाया। अनुनय-विनय की, किन्तु उन्हों ने हम लोगों की प्रार्थना पर कोई ध्यान न दे कर....।'

'रुक क्यों गये, कहो ! तुम्हारी कौन-सी प्रार्थना ठुकरा दी रानी ने ? आगे कहो।' अधिक बोलने से राजा की पीड़ा बढ़ रही थी। उन्होंने दोनों हाथों से हृदय थाम लिया।

'श्रीमान् का रोग असाध्य देख कर उन्होंने अपने पातिव्रत धर्म का पालन किया और अन्य रानियों के साथ सती.....!' इसके आगे मंत्री के मुख से शब्द न निकले। गला भर आया। शरीर काँपने लगा।

सुनते ही राजा को तो मानो पाला मार गया।—'हा ! तुम लोगों ने मुझे बताया तक नहीं। रानी को खो कर अब मैं कैसे जीऊँगा।' इस संवाद ने राजा के हृदय पर गहरा धक्का पहुँचा या और वे मूर्च्छित होकर शय्या पर गिर पड़े।

सभी लोग शोकमग्न हो राजा की शय्या घेरे खड़े थे। वृद्ध प्रधानमंत्री ने सभी को समझाया कि राजा के सामने इस प्रकार शोकाकुल होकर खड़े होने से उन का रोग और बढ़ेगा। उन्हों नें सब को वहाँ से चले जाने का आदेश दिया। केवल राजकुमार हर्ष, प्रधानमंत्री के साथ दो एक और मंत्री तथा कुछ दास-दासियों को छोड़ कर आज्ञा पा सभी वहाँ से चले गये। पिता के रोग बढ़ने का भय देख कर हर्ष ने बलात् अपने आँसू रोके और धैर्य धारण कर शान्तिपूर्वक पिता की शय्या के पास जा बैठे।

तत्काल कई वैद्यराज बुलाये गये जिन्होंने मूर्च्छा भंग होने की अनेक बहुमूल्य ओषधियाँ दीं। ओषधियों का असर बहुत देर बाद हुआ और किसी प्रकार महाराज की मूर्च्छा भंग हुई। मूर्च्छा टूटते ही बोले, 'किसकी आज्ञा से तुम लोगों ने रानी को सती होने दिया ? तुम सब लोग मिल कर उन्हें रोक भी न सके ?'

कोई इसका क्या उत्तर देता ? जब महारानी अपने प्राणप्रिय पुत्र के प्यार से न झुक सकीं तो उन लोगों के समझाने से कैसे मान जातीं ? सभी लोग मस्तक नीचा किये खड़े रहे।

रानी के देहावसान ने तो राजा के जीवन की रही-सही आशा भी खो दी। राजा हताश बेसुध हो पड़े रह गये। उन्हें क्षण-क्षण में मूर्च्छा आने लगी। वैद्यों

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

ने अनेक ओषधियाँ दीं। कभी उन से लाभ हो कर मूर्च्छा टूट जाती, कभी वे मूर्च्छित ही पड़े रहते। सभी को राजा के जीवन से निराशा होने लगी। वैद्य-राज तक को विश्वास हो गया कि अब राजा के जीवन की अन्तिम घड़ियाँ निकट है। वास्तव में पत्नी की मत्यु का सदमा मत्यु शय्या पर पड़े रोगी के लिए कैसे सह्य होता !

राजा अपनी मत्यु की बाट जोहने लगे। इसी समय एक और ही विचित्र एवं भीषण दुर्घटना हुई जो वास्तव में राजा की मत्यु का अन्तिम कारण बनी। राजा के कुशल एवं अष्टांग आयुर्वेद शास्त्र के महापंडित सुषेण और रसायन नामक दो वैद्य, जो राजा के रोग का आरंभ से निदान कर रहे थे, आये और मूर्च्छा भंग होने की उन्हें ओषधि दी। दुर्भाग्यवश उस ओषधि का कोई परिणाम न निकला और मूर्च्छा भंग न हुई। वैद्यों ने राजा की नाड़ी देखी। उनकी निराशा बढ़ चली। उन्हें बड़ा दुःख हुआ और सन्ताप भी। इस परिस्थिति से उनकी आत्मा पर एक बहुत बड़ा आघात भी हुआ। 'जिस राजा का जीवन भर अन्न ग्रहण किया, रोगग्रस्त होने पर हम उसके किसी काम न आ सके और उसकी मूर्च्छा तक भंग न कर सके ! इतनी विद्याओं का अध्ययन किया। मरे हुए को जीवन-दान देने की शक्ति रखनेवाली ओषधियाँ भी आज हमें धोखा दे गईं।' यह कारण वैद्यराजों के लिए बहुत दुःखदायी बना और वे दुखी हृदय, अपमानित अवस्था में वहाँ से चले आये। उन्हें इस बात की इतनी ग्लानि हुई कि राजभवन से लौट कर उन्होंने सीधे वन में जाकर जंगल की सूखी लकड़ियों की चिता बनाई और उसमें आग लगा कर अपने प्राण दे दिये।

जब राजा को यह ज्ञात हुआ तो उनके प्राणपखेरू उड़ने लगे। उन्हें भी अपने जीवन से बहुत सन्ताप होने लगा—मैं इतने जीवों की मत्यु का कारण बना। सभी रानियाँ मेरे कारण चिता में कूद कर जल मरीं उसका भी इतना दुःख न था, पर इन ब्राह्मण चिकित्सकों की मत्यु भी मेरे ही कारण हुई।' यह चिन्ता उन्हें समूचा निगले जा रही थी।—'मैं ब्रह्म-हत्यारा हूँ, पापी हूँ, अपराधी हूँ। मेरा जीवन व्यर्थ है। मुझे अब एक क्षण भी जीने का अधिकार नहीं, तरह-तरह का विलाप करते राजा को पुनः मूर्च्छा हो आई।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

राजा की यह स्थिति देख कर सभी पूर्णतः निराश हो उठे। नगर-वासियों में राजा की इस स्थिति का समाचार विद्युद्वेग से फैल गया। राजभवन के बाहर नागरिकों की प्रबल भीड़ एकत्रित होने लगी। सभी महाराज के स्वास्थ्य की दशा जानने को उत्सुक थे तभी महाराज की मूर्च्छा भंग हुई और उनके मुख से ये शब्द निकले—'हर्ष कहाँ है? मेरे पास बुलाओ!'

हर्ष समीप ही बैठे थे। पिता का संकेत पा कर उनके बिल्कुल निकट जा बैठे। राजा ने पुत्र का हाथ अपने हाथ में ले कर क्षीण स्वर में कहा, 'बेटा हर्ष! यह पृथ्वी तुम्हारी है। तुम इस के उत्तराधिकारी बनो।.... ऐसा कहना पुनरुक्ति ही होगी; क्योंकि तुम स्वयं चक्रवर्ती पद के लक्षणों से संयुक्त हो। प्रजा का सतर्क और सावधान हो कर पालन करो। शत्रुओं का मान मर्दन कर......सम्पूर्ण पृथ्वी......पर....अपना अखंड राज्य स्थापित करो......।' राजा की वाणी अत्यधिक क्षीण थी और हर्ष कान लगा कर उसे सुन रहे थे। अन्त में पिता ने कहा—'तुम दोनों भाई सुख से रहो और अपनी प्रजा को सुखी बनाओ।' और राजा ने आँखें मूंद लीं —'ओं शान्ति! शान्ति!! शान्ति!!!'

सारे राजभवन में कुहराम मच गया। सारी प्रजा शोकाकुल हो विलाप करने लगी। स्त्रियों का विलाप देख कर तो पत्थर भी पिघल उठते। स्वयं हर्ष का धैर्य टूट गया। वे भी बच्चों की तरह रोने और चिल्लाने लगे। किन्तु वृद्ध मंत्रियों ने उन्हें धैर्य दिया और समझाया कि रोने से कुछ न होगा। प्रथम पिता की अन्त्येष्टि क्रिया सम्पन्न करना ही कर्त्तव्य है।

बड़ी ही धूमधाम और राजसी सम्मान के साथ राजा प्रभाकर की अन्त्येष्टि क्रिया सम्पन्न हुई। नगर का विशाल जनसमूह अपने राजा का अन्तिम दर्शन करने के लिये उमड़ पड़ा। सभी की आँखें मेघ बरसा रही थीं। अत्यन्त शोकाकुल और करुण वातावरण में राजा का अन्तिम संस्कार हुआ। दाह क्रिया से निवृत्त होकर निराश एवं दुखी हृदय ले कर सभी लोग वापिस लौटे। हर्ष के जीवन की यह दूसरी दुःखद एवं विपत्ति-जनक घटना थी।

———

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

: ११ :

कन्नौज पर शत्रु-ग्राक्रमण-राज्य

चारों ग्रोर मनोहर चाँदनी छिटकी पड़ी थी। ग्राकाश में तारागण ग्राँख-मिचौनी खेल रहे थे। चन्द्र के प्रकाश से रजनी का श्याम-सलोना मुखड़ा निखर-निखर कर प्रेमियों के मन को मचला-मचला देता। वसन्त ऋतु का मलय पवन ग्रपनी मीठी-मीठी, भीनी-भीनी सुगन्ध से उनके कोमल हृदयों पर ऐसा ग्राघात करता कि वे विचलित होकर काँप-काँप जाते।

कन्नौज का विशाल राजभवन ग्रपनी ऊँची-ऊँची ग्रट्टालिकाग्रों द्वारा ग्राकाश की ऊँचाई नापने का ग्रसफल, नहीं-नहीं, सफल प्रयास किया करता। संगमरमर के चमकीले पत्थरों में जड़े रत्नों एवं सुवर्णनिर्मित कंगूरों पर पूर्णचन्द्र की चमकीली चन्द्रिका इस प्रकार छिटकी थी कि राजभवन जगमग जगमग कर रहे जुगुनुग्रों से भरे ग्ररण्य का-सा शोभायमान हो रहा था। राजभवन के बीचोंबीच वाली विशाल ग्रट्टालिका चांदनी की शुभ्र साड़ी में लिपटी स्वयं ग्रपनी शोभा से मुग्ध हो खड़ी हँस रही थी। ऐसा लगता, मानों उसकी हँसी इन्द्रपुरी की भव्यता को चुनौती दे रही हो। ग्रट्टालिका के चारों ग्रोर मनोरम, रमणीक राज-उद्यान था। वहीं तरह-तरह के पुष्पों से लदे पौदों की सजी-सजाई पंक्तियों के बीच बने फव्वारे ग्रपने तुषारों से उन पौधों पर ग्रमृतवर्षा कर रहे थे ग्रौर कहीं वापियाँ ग्रपने जलस्पर्श से ठंडक प्राप्त किये पवन के मन्द-मन्द झोंकों से उन्हें तृप्ति प्रदान कर रही थीं।

ग्रट्टालिका के ग्रन्दर ग्रन्धकार छाया था, किन्तु कहीं-कहीं दीपक की धीमी लौ पवन के थपेड़ों से बुझती-सी काँप रही थी। मध्यरात्रि होने को थी। ग्रट्टालिका के भीतर के एक सुन्दर भवन में फूलों की-सी सुकोमल सेज पर सोलह श्रृंगार किये बैठी एक नवेली न जाने किस की राह देख रही थी। खिड़की में से ग्रा रहे चन्द्र के धवल प्रकाश से घूँघट के

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

महीन आँचल में छिपा नवेली का दूध-सा मुखड़ा स्पष्ट झलक पड़ता था। लम्बे-से घूँघट के अन्दर से उसके विशाल चंचल नयन बाहर की किसी वस्तु को इधर-उधर खोजने में संलग्न थे। सिर से पैर तक आभूषणों से लदी, लाज से अपने में ही सिकुड़ती जा रही, नवयुवती अपने स्वामी की प्रतीक्षा करती जान पड़ती थी।

थोड़ी देर बाद भवन का द्वार खुला और एक सुन्दर युवा राजकुमार ने अन्दर प्रवेश किया। अद्भुत कान्ति, मनोहर स्वरूप, घुंघराले केश और सुन्दर सजे हुए वेश में राजकुमार की शोभा ने मानो वहाँ प्रकाश फैला दिया। स्वामी को आया देख नवेली और भी सिकुड़ कर बैठ गई। मानों उसके सौदर्न्य को स्वामी की तीखी नजरों की नजर न लग जाय। उसने घूंघट को और भी नीचे खींच लिया। लज्जा उसमें और वह लज्जा में समाई जा रही थी। स्वामी धीरे से उसके पास आये और सेज पर आ बैठे। लाज के मारे नवेली के मन की धड़कन बढ़ गई। सुहाग-रात के बाद इस प्रकार खुल कर पति से सामना होने का प्रथम अवसर था। उसे रोमांच हो उठा।

स्वामी ने कहा, 'लजाती हो प्रिये! जानती हो तुम्हारा प्रेम पाने के लिये मेरा मन तड़प-तड़प कर रह जाता है। आज मुझ से नहीं रहा गया और मैं तुम्हारे कक्ष में चला आया।'

नवेली ज़रा और इठलाई, घूंघट पैरों तक खींच लिया।

'क्या मुझसे बोलोगी भी नहीं? मैंने ऐसा कौन-सा अपराध किया है?'

'स्वामी!' नवेली के मुख से इतना ही निकला कि वह लाज के मारे काँप-सी गई।

'कहो, रुक क्यों गई? मैं तुम्हारी बातें सुनने को उतावला हो रहा हूँ।' और पति नवेली के थोड़ा और समीप हो गया। नवेली कुछ और सिकुड़ने लगी।

'मैं आपके चरणों की दासी हूँ।'

'और मैं तुम्हारा..........।'

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

'नहीं-नहीं, ऐसा न कहिये !' पति की बात रोक कर वह बोली। 'आप मेरे सर्वधन परमेश्वर हैं।'

'सो तो ठीक ही है। पतिव्रता नारी के लिये पति परमेश्वर रूप ही होता है। किन्तु तुम्हारी-जैसी पवित्र नारी पा कर मैं भी धन्य हूँ। तुम्हारी जैसी पत्नी संसार में दुर्लभ है।'

'जैसी हूँ आपकी हूँ !' और क्षण भर के लिए दोनों चुप हो गये। थोड़ी देर बाद पति बोले, 'राज्यश्री ! देखती हो यह रात कितनी सुहावनी है ?'

'हाँ स्वामी !'

'आकाश में चन्द्र और चंद्रिका मिलकर किस प्रकार आनन्दपूर्वक खेल रहे हैं !'

'हाँ !' अब तक राज्यश्री का घूंघट खिसक कर कुछ ऊपर चला आया था।

'साथ में तारागण किस प्रकार आँख-मिचौनी खेल रहे हैं। देख रही हो ?'

'देख रही हूँ स्वामी ! सारा संसार अखंड निद्रा में तन्मय है और वे अकेले एकान्त क्रीड़ा में संलग्न हैं।' राज्यश्री कुछ साहसपूर्वक इतना बोल गई।

'ऐसी रात फिर कभी भी आयेगी ?' ग्रहवर्मा ने भोलेपन से पूछा।

'क्यों नहीं आयेगी, बार-बार आयेगी।'

'मुझे तो ऐसा लगता है, यह रात फिर कभी लौट कर नहीं आयेगी।'

'ऐसा न बोलिये नाथ ! ईश्वर बार-बार ऐसा सुहावना समय लायेगा।'

'जब हम तुम दोनों मिलेंगे, क्यों ?' ग्रहवर्मा हँस पड़े। राज्यश्री की मुस्कुराहट ओठों तक आ कर ही रह गई, किन्तु लाज सारे शरीर में व्याप्त हो रही।

'किन्तु हमारे तुम्हारे मिलन में तो एक बहुत बड़ी बाधा है।' ग्रहवर्मा रहस्यवचन बोले।

....

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

'वह क्या नाथ ?' राज्यश्री ने उत्सुकता से पूछा।

'तुम्हारे दर्शन पाने को मैं तड़प रहा हूँ और तुम्हारा घूंघट उसमें बाधा बनकर खड़ा है।'

राज्यश्री मौन हो रही। उसने निचला ओठ दाँतों से दवा लिया। लज्जा से कुछ और सिकुड़ गई। उस के मुंह पर लाज की लालिमा फैल गई।

'मुझे यों ही निराश रखोगी ?' ग्रहवर्मा ने कहा, 'यह कार्य मैं स्वयं अपने हाथों ही कर डालूँ, क्या आज्ञा दोगी ?'

ग्रहवर्मा उठ कर खड़े हो गये। राजकुमारी ने आँखें नीची कर लीं। बोली, 'मैं स्वामि चरणों की दासी हूँ।' ग्रहवर्मा ने राजकुमारी के घूँघट की ओर हाथ बढ़ाया।

हाथ घूँघट की ओर बढ़ा ही था कि एक दुर्घटना हो गई। बाहर का द्वार खटखटा उठा। कोई जोर-जोर से द्वार खटखटा रहा था। ग्रहवर्मा का हाथ काँप गया। आनन्द का सारा प्रवाह वह गया।

उन्होंने पूछा—'कौन है ?'

'सेवक श्रीमान् !' उत्तर मिला।

'क्या काम है ? इस समय क्यों परेशान किया ?'

'जल्दी द्वार खोलें श्रीमान् ! एक भीषण शोक संवाद !'

पति-पत्नी काँप उठे। ग्रहवर्मा ने जल्दी-जल्दी पाँव बढ़ा कर द्वार खोला, देखा—सेवक ताड़ के पत्तों की तरह काँप रहा है।

'क्या हुआ ? तुम इस प्रकार काँप क्यों रहे हो ?' ग्रहवर्मा ने आश्चर्य-भरे शब्दों में पूछा।

'महाराज, यह पत्र ! थानेश्वर का दूत यह पत्र लाया है।'

ग्रहवर्मा ने सेवक के हाथ से पत्र ले लिया और खोल कर पढ़ने लगे। थानेश्वर का नाम सुन कर राज्यश्री भी चौंक उठी। पलंग से उतरने को हुई कि ग्रहवर्मा बोल पड़े—'हा ! सब नष्ट हो गया। थानेश्वर लुट गया। हम भी लुट गये ?'

'क्या हुआ स्वामी ?' राजकुमारी ने घबराहट से पूछा।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

'कुछ मत पूछो। दुर्भाग्य ने हम से माताजी और महाराज दोनों को छीन लिया। दोनों अब इस संसार में नहीं हैं।'

राज्यश्री पर तो वज्रपात हुआ। 'मां चली गई! पिता जी भी नहीं रहे?' राजकुमारी पागल-सी हो उठी। दहाड़ मार कर रो पड़ी।—'मां! तुम हमें छोड़ कर क्यों चली गई! मां! पिता जी को भी साथ लेती गई! पिता जी! पिता जी!' राजकुमारी सिसकियाँ भर रही थी। ग्रहवर्मा की आँखों में भी आँसू थे। उन्होंने राजकुमारी को पकड़ कर पलंग पर बैठाया। वह तो चीख रही थी, चिल्ला रही थी। उसके माँ-बाप चल बसे थे, उसे शान्ति कैसे मिलती!

रोने का शोर सुन कर राजभवन की अन्य स्त्रियाँ एवं कर्मचारी जाग-कर दौड़ आये। सँवाद सुन कर उनके नेत्र भी बहने लगे। भवन की बड़ी-बूढ़ी स्त्रियों ने राजकुमारी को संभाला। वह तो रो-रोकर जान दिये दे रही थी। सारा राजभवन शोकमग्न हो उठा। कहाँ रात के एकान्त समय में दो प्राणी अपने जीवन की सबसे अधिक आनन्द की घड़ी बिता रहे थे और कहाँ यह विलाप-लीला आरम्भ हो गई।

बड़ी कठिनाई से राजकुमारी के आँसू सूखे। बड़ी-बूढ़ियों ने समझाया-बुझाया। उपदेश दिये और तब जा कर राजकुमारी का रोना कुछ शान्त हुआ। ग्रहवर्मा ने सेवकों को आदेश दिया कि तत्काल थानेश्वर जाने की तैयारी की जाय। प्रातः होते ही प्रस्थान किया जायगा।

रात भर अशान्ति रही। किसी प्रकार जागते-जगाते, रोते-धोते रात बीती। सूर्योदय हुआ। राजा की आज्ञा से थानेश्वर जाने की तैयारी में सब दास-दासियाँ जुट पड़ीं।

किन्तु ठीक इसी समय होनी ने एक और अनहोनी कर डाली। विपत्ति पर विपत्ति! दुःख पर दुःख! काल का गतिचक्र जब घूमने लगता है तो ऐसी-ऐसी अनहोनियाँ कर डालता है कि देखनेवाले दंग रह जाते हैं। जिस की किसी को स्वप्न में भी आशा तक नहीं होती वह सामने आ घटती है। यही है विधि की गति और उस का चक्र!

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

कहाँ तो थानेश्वर जाने की तैयारी हो रही थी और कहाँ ईश्वर ने ग्रहवर्मा और राज्यश्री को कहीं और भेजने की तैयारी कर डाली। ग्रहवर्मा स्नानादि से निवृत्त हो पूजा के लिए बैठने वाले थे कि एक दूत दौड़ता-दौड़ता, हाँफता-हाँफता उनके पास आया और बोला—

'महाराज ! सब अनर्थ हो गया। शीघ्रता कीजिये, राज्य पर शत्रुओं का आक्रमण हो गया।'

ग्रहवर्मा घबरा कर उठ बैठे, 'क्या कहा, शत्रुओं का आक्रमण हो गया ?'

'हाँ महाराज ! मालव नरेश की सेनाएँ नगर पर चढ़ आई हैं। नगर में उनका प्रवेश होने ही वाला है।'

'तुम लोग पहिले कहाँ सोते रहते हो, गुप्तचर विभाग बिल्कुल निकम्मा है। जब शत्रु सिर पर आ गया, तब रोने-चिल्लाने लगे। सेनापति कहाँ हैं ? शीघ्र यहाँ बुलाओ।' ग्रहवर्मा की वाणी क्रोध और भय दोनों से काँप रही थी।

'उन्हें भी दूसरा सेवक सूचना देने गया है। वे शीघ्र आपकी सेवा में आते ही होंगे।'

'तुम जा कर महामन्त्री को सूचित करो और कहो शीघ्र सेनाएँ तैयार होने का आदेश दें।'

सेवक चला गया। ग्रहवर्मा ने ताली बजाई। एक दासी ने चट प्रवेश किया। ग्रहवर्मा ने तीव्रता से कहा, 'महारानी से कहो, राजभवन की सब स्त्रियाँ ऊपर के भवन में एकत्र हो जायें। शत्रु का आक्रमण हो चुका है। मैं युद्ध में जा रहा हूँ। राजभवन की रक्षा के लिए महामन्त्री स्वयं रहेंगे। जाओ !'

दासी घबराई-सी चली गई। दूसरे ही क्षण सेनापति वहाँ आ पहुँचे। महाराज को प्रणाम कर बोले, 'महाराज ! युद्ध के लिए सेनाएँ रवाना हो रही हैं। सेना का एक भाग राजभवन की रक्षा करेगा। शेष नगर के चारों द्वारों पर शत्रु का सामना करेगी।'

'किन्तु उस समय, जब शत्रु की सेनाएँ नगर के पास आ चुकी हैं, और सम्भवतः नगर में प्रवेश भी कर चुकी हों, गुप्तचर-विभाग आखिर क्या

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

करता रहता है ? मैं स्वयं युद्ध में चलूँगा। महामन्त्री को राजभवन की रक्षा का भार दिया है।'

'आप स्वयं मत चलें महाराज ! यदि शत्रु प्रबल हुआ तो श्रीमान् पर संकट उपस्थित हो सकता है।'

'यह नहीं हो सकता। शत्रु प्रबल है तो इसका अर्थ यह नहीं कि मैं चूड़ियाँ पहिन कर घर में बैठ जाऊँ ? प्रबल शत्रु का मुकाबला करने से होगा या घर बैठे रहने से ? चलो, मैं शस्त्र धारण करके आता हूँ। शीघ्र आज्ञा का पालन हो।'

सेनापति तीव्रता से लौट गया। ग्रहवर्मा ने भी शीघ्र सिर पर लोहे का कनटोप और छाती पर कवच पहिना, कन्धे पर धनुष-बाण टांगा, कमर के दोनों ओर दो दुधारी तलवारें और दो-तीन छोटी-छोटी कटारें बाँधी और दाहिने हाथ में भाला लेकर चल दिये। नीचे सुन्दर बलवान् सुसज्ज घोड़ा तैयार खड़ा था। छलांग मारते ही उस पर जा बैठे। चलने से पूर्व एक बार राजभवन की ओर देखा। खिड़की पर राजकुमारी राज्यश्री आँसू बहाती खड़ी थी, पति के दर्शन के लिए। वह क्या जानती थी कि पति के यह अन्तिम दर्शन हैं। माता-पिता की मृत्यु के शोक संवाद से रोते-रोते राजकुमारी की आँखें फूल आई थीं। रात के आँसू अभी अच्छी प्रकार सूखे भी न थे कि यह नई विपत्ति आ खड़ी हुई।

राजकुमारी का दाहिना नेत्र फड़क रहा था। उसकी शंका बढ़ने लगी। "आज न जाने क्या होने वाला है!' पति को युद्ध में जाते देख उसकी सूजी हुई आँखों से फिर बूँदें टपकने लगीं। उसके मन में बुरी-बुरी आशंकाएँ उठने लगीं। वह डरी हुई हिरणी-सी भयभीत एवं दीन नेत्रों से पति की ओर देख रही थी।

किन्तु पति के बस में कुछ हो तब न ? युद्ध में जाना अनिवार्य था। पत्नी को देख कर एक बार ग्रहवर्मा मुस्कराये और पत्नी ने मन ही मन पतिदेव को प्रणाम किया कि ग्रहवर्मा का घोड़ा छलांग मार कर दौड़ता नज़र आने लगा।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

'प्यारी माँ चल वसी, पिता छोड़ कर चल दिये और अब पति भी आँखों से ओझल हो चले जा रहे हैं। वे युद्ध में गये हैं। सुना है, शत्रु प्रवल है। कहीं हमारी सेनाएँ शत्रु का मुकावला न कर पाईं तो...? न जाने क्या होगा ...!' राज्यश्री कल्पना से ही काँप उठी। 'ईश्वर उनकी रक्षा करे! मां पराम्वा दुर्गा उनको शक्ति दे कि वे शत्रुओं पर विजय पा कर लौटें।' राज्यश्री मन्दिर में बैठ कर विना अन्न-जल ग्रहण किये मां दुर्गा का स्मरण करने लगी। सप्तशती का पाठ करने लगी।...'देवि प्रसीद परमा भवती भवाय, सद्यो विनाशयसि कोपवती कुलानि।....देवि प्रसीद परिपालय नोऽरिभीतेर्नित्यं यथा सुरवधादधुनैव सद्यः....... ।'

मालवा का राजा देवगुप्त महारानी यशोमती का वड़ा भाई और राज्यश्री का मामा था। उस का स्वर्गीय पिता महाराज प्रभाकरवर्द्धन द्वारा पराजित हुआ था और तभी उसने भेंट स्वरूप अपनी कन्या यशोमती महाराजप्रभाकर वर्द्धन को ब्याह दी थी। जव उसका देहान्त हुआ तो राज्यसिंहासन देवगुप्त को प्राप्त हुआ, किन्तु वह पिता की पराजय को न भूल सका। प्रति क्षण वह अवसर की ताक में रहा करता।

इधर कर्णसुवर्ण का चतुर राजा शशांक भी प्रभाकरवर्द्धन की मत्यु से सावधान हो उठा। वह गुप्तवंशीय राजा था। भारत में पुनः गुप्तवंश का साम्राज्य स्थापित करने की उसे धुन रहती थी। वह था भी बड़ा कूटनीतिज्ञ और नीति-विशारद। जब उसने देखा कि थानेश्वर के शक्तिशाली राजा की मत्यु हो गई और उसके दोनों पुत्रों एवं कन्नौज के राजा ग्रहवर्मा की आयु अभी छोटी है, तो यह अवसर न चूकने का उसने भी निश्चय कर लिया। उसने अविलम्ब मालवनरेश से संधि की और तत्काल मिल कर कन्नौज और थानेश्वर पर आक्रमण कर देने का प्रस्ताव रक्खा। मालवनरेश तो तैयार बैठा ही था। उसी समय सेनाओं के प्रस्थान की आज्ञा दे दी। दोनों की संयुक्त सेनाओं ने एक साथ कन्नौज पर आक्रमण कर दिया।

नगर पर शत्रुओं की चढ़ाई हो चुकी थी। शत्रु ने इस प्रकार चुपचाप और अचानक आक्रमण किया था कि किसी को पता तक न चला।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

जब तक कन्नौज की सेनाएँ मुकाबले में डटने के लिए पहुँचीं, शशांक और देवगुप्त की विशाल वाहिनी कन्नौज के मुख्य द्वारों पर अधिकार कर चुकी थी। उसका एक तिहाई भाग नगर में प्रवेश भी कर चुका था। अब क्या हो सकता था? नगर के भीतर ही मोर्चा बनाना पड़ा। दोनों ओर की सेनाएँ नगर के भीतर ही भिड़ गईं। बड़ा ही भयंकर संग्राम छिड़ गया। यद्यपि मालवा और गौड़ देश की सेनाएँ संख्या, बल एवं शक्ति तीनों में बढ़ी-चढ़ी थीं किन्तु ग्रहवर्मा के साहस ने उनका वह मुकाबला किया कि देवगुप्त और शशांक के दाँत खट्टे हो गये। एक ओर युद्ध कलाओं में अनुभवहीन एक नवयुवक अपनी असावधान और अव्यवस्थित सेनाएँ लेकर लड़ रहा था, दूसरी ओर अनेक महासंग्रामों के विजेता और कूटनीतिपटु शशांक एवं देवगुप्त और उनकी कुशल सेनाएँ प्रबल आक्रमण कर रही थीं; किन्तु एक बार तो उन दोनों की प्रबल सेनाओं को मुँह की खानी पड़ी। राजकुमार ग्रहवर्मा ने अपनी वीरता और साहस से उन दोनों की सेनाओं को नगर के बाहर खदेड़ दिया। किन्तु यहीं उनकी कुछ राजनीतिक भूल हुई जिसका अन्तिम परिणाम उनके प्रतिकूल हुआ। नगर से खदेड़ कर राजकुमार ग्रहवर्मा सेनाएँ लेकर नगर से बाहर भी उनका मुकाबला करने निकल पड़े। यही अनुचित हुआ। उन्हें चाहिए था कि नगर की चहरदीवारी पर युद्ध का मोर्चा बनाते और धनुष-बाणों का युद्ध आरम्भ करते। यह न कर वे ज्यों ही बाहर निकले कि संख्या और बल में अधिक होने के कारण शत्रु सेनाओं ने उनकी थोड़ी-सी सेना को घेरे में ले लिया।

फिर भी राजकुमार ने युद्ध में अपना अपूर्व कौशल दिखाया। उनके हाथों की तलवारें इस प्रकार चल रही थीं मानो विद्युत् चमक रही हो। यद्यपि इस युद्ध का अन्तिम परिणाम कन्नौज के लिये हानिकारक हुआ, किन्तु राजकुमार की वीरता से उन दोनों दुष्ट राजाओं की आधी सेना रणक्षेत्र में सुला दी गई। राजकुमार शत्रु सेना में बुरी तरह फँस चुके थे। उस के व्युह से निकल भागना कठिन था। इधर इनकी सेना का भी प्रायः संहार हो चुका था। शशांक और देवगुप्त जैसे दो-दो रणविद्या-विशारद स्वयं

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

ग्रहवर्मा से दो हाथ करने आये थे। इधर से बूढ़े सेनापति ग्रहवर्मा की रक्षा तो कर रहे थे किन्तु उनका शरीर कब तक अपना कर्त्तव्य निभाता? वे शशांक और देवगुप्त के प्रबल आघातों से धराशायी हो गये। अब राजकुमार अकेले रह गये। अकेले होकर भी शशांक और देवगुप्त की तलवारों का उत्तर देना साधारण कार्य नहीं था किन्तु बेचारे ग्रहवर्मा अकेले क्या करते? उनके शरीर में इतने घाव हो चुके थे कि रक्त की धाराएँ बह रही थीं। रक्त अधिक निकल जाने से उनमें बहुत निर्बलता आने लगी। अन्त में ग्रहवर्मा की तलवार के दो टुकड़े हो गये। उनका वाहन पहिले ही मारा जा चुका था। उन्हें निराश देख कर नरपिशाच देवगुप्त उन की छाती पर चढ़ बैठा और बड़ी ही निर्दयतापूर्वक कटारों से घायल कर-कर के उनकी हत्या कर डाली। अभागिन राज्यश्री के नाथ इस प्रकार पशुओं की मौत मारे गये और एक बहादुर की हत्या से अपने पापी हाथ रँग कर वह दुष्ट ठहाका मार कर हँसने लगा। 'हा-हा, हा-हा! ही-ही, ही-ही!! हू-हू, हू-हू!!!' इस पैशाचिक हँसी में उसके जन्म-जन्मान्तरों का पाप भरा था।

ग्रहवर्मा की मत्यु के पूर्व ही उनकी अधिकांश सेनाएँ प्रायः मारी जा चुकी थीं किन्तु अपने स्वामी का वध देखकर जो रहे-सहे सैनिक थे, वे भी अपनी जान ले कर युद्धस्थल छोड़ कर भाग गए। शत्रुसेना ने विजय-निनाद किया। बड़ी ही धूमधाम के साथ उस का नगरप्रवेश हुआ, किन्तु यहाँ उसे एक और प्रबल मोर्चा लेना पड़ा।

यद्यपि ग्रहवर्मा ने वृद्ध महामन्त्री पर रनिवास की रक्षा का भार सौंपा था और नगर के पतन होने का समाचार सुनते ही उन्हें राजकुमारी राज्यश्री और रनिवास की अन्य स्त्रियों को सुरक्षापूर्वक बचा कर थानेश्वर ले भागना चाहिए था; किन्तु इन्होंने भी भूल की और सोचा—शत्रुसेना के साथ एक मोर्चा और लें। बस, वे रही-सही सेना लिये राजभवन से कुछ आगे बढ़ कर शत्रु से भिड़ गये; किन्तु कब तक मुकाबला कर पाते! विजयोन्माद में उन्मत्त शत्रु-सेना बड़े उत्साह से लड़ रही थी। थोड़ी देर में ही महामन्त्री पराजित हो गये और बन्दी बना लिये गये।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

राजभवन पर शत्रु का अधिकार हो गया। राजकुमारी राज्यश्री ने जब यह स्थिति देखी, प्रथम तो उन्होंने चिता में कूदकर सती हो जाने का निश्चय किया; किन्तु जब देखा कि शत्रु राजभवन पर पहुँच चुका है तो वहाँ से भागने का प्रयत्न किया। घोड़ा तैयार करा कर वे गुप्त मार्ग से भागना ही चाहती थीं कि भाग्य ने यहाँ भी उन्हें धोखा दिया। शत्रु की सेनाएँ राजभवन को चारों ओर से घेर चुकी थीं। इन का घोड़ा ज्यों ही राज-उद्यान पार कर बाहर निकला कि पकड़ लिया गया।

राज्यश्री बन्दिनी बनाकर शशांक के सामने लाई गईं। देवगुप्त ने अपने सामने इसलिये नहीं बुलाया कि सम्बन्ध में वह उसका मामा लगता था। शशांक बड़ा ही क्रूर और दुराचारी राजा था। वह बोला, 'अब देखूँगा, तेरे बाप का भी राज्य, बड़े महाराजाधिराज की उपाधियाँ धारण कर रखी थीं!'

राजकुमारी दाँत पीस रही थी, यदि उस समय उसके हाथ में तलवार या कोई दूसरा शस्त्र होता तो वहीं उस शशांक को मजा चखा देती; किन्तु लाचार थी।

दाँत कटकटा कर बोली, 'मेरे पिता के जीवित रहते आक्रमण किया होता तो तुझ जैसे नीच को वे छठी का दूध चखा देते? जब उनका देहान्त हो गया तो चोरों की तरह चुपके से आक्रमण कर दिया। कौन बड़ी बहादुरी की? अब भी बड़े भैया तेरा काल बन कर आते ही होंगे?'

'देख लूँगा तेरे बड़े भैया को भी!' शशांक की आँखें लाल हो रही थीं। क्रोध में उसने सैनिकों को आदेश दिया, 'बड़ी बकबक कर रही है यह, डाल दो बन्दीघर में, सारी बकवाद शान्त हो जायगी।'

जैसा दुष्ट राजा, वैसे दुष्ट उसके सैनिक! एक नवयुवती को देख कर उनकी दुष्टता का जाग उठना स्वाभाविक था। वे उसके केशपकड़ कर घसीटते हुए ले गये और राजभवन के पास के बन्दीघर का फाटक खोल उसमें ढकेल कर इस प्रकार फेंक दिया मानों अन्न की बोरी फेंकी जा रही हो।

———

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

: १२ :

राज्यवर्द्धन को वैराग्य

संसार में स्वार्थपरायणता ही एक ऐसी वस्तु है जो मनुष्य को अधःपतन के अन्धकूप में ढकेल देती है। दूसरी ओर परोपकारिता ही मनुष्य को महान् बनाने का एकमात्र साधन है। ऐतिहासिक घटनाएँ साक्षी हैं कि स्वार्थी जीव आरम्भ में भले ही कुछ सफलता प्राप्त कर सका हो, किन्तु अन्त में उसकी महान् दुर्गति होकर रहती है। परोपकारी व्यक्ति आरम्भिक जीवन में संसार की बड़ी-बड़ी कठिनाइयाँ और विपत्तियाँ झेलता एक दिन अपने लक्ष्य तक पहुँच ही जाता है। उसे इहलोक और परलोक दोनों में आदर, सम्मान और वैभव प्राप्त होता है।

हर्षवर्द्धन महान् परोपकारी थे। स्वार्थ तो उन्हें छू तक न गया था। पिता के इतने बड़े साम्राज्य की भोग-लिप्सा उन्हें तनिक न थी। यद्यपि अन्तिम समय पिता ने उन्हें स्वयं कहा—'तुम इस राज्य के उत्तराधिकारी बनो' और इस वाक्य के अनुसार सारे मंत्रिगण राज्याधिकारी और प्रजा उन्हें राज्याधिकार देने के पक्ष में ही होती; किन्तु उन्हें इसकी जरा-सी भी लालसा न थी। इसी लिये तो उन्होंने भाई को बुलाने के लिये युद्ध-क्षेत्र में दूत पर दूत भेजे। कोई स्वार्थी भाई होता तो यही सोचता—'अच्छा है, पिता की मत्यु के बाद तो राजसिंहासन मुझको मिलेगा। भाई युद्ध में ही समाप्त हो जाय तो अच्छा हो।' किन्तु नहीं, हर्षवर्द्धन उन भाइयों में से नहीं थे। उन्हें राज्य भोगने की किञ्चित्-मात्र इच्छा न थी। इतिहास में देखा गया है कि राज्यलोभ के लिए कहीं पुत्र पिता की, और माँ अपने औरस पुत्र तक की हत्या करने में संकोच नहीं करती। ऐसे स्वार्थी संसार में लोभ और स्वयंप्राप्त सुख-वैभव को लात मार देना सहज कार्य नहीं। यह हर्ष जैसे महापुरुष के लिये ही सम्भव था, सर्वसाधारण के लिये नहीं।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

हर्ष की निःस्वार्थिता का एक और बड़ा उदाहरण--पिता की मत्यु के उपरान्त हर्ष नित्य विभिन्न मन्दिरों में जा कर बड़ी देर तक प्रार्थनाएँ करते —'हे जगदम्दबे ! हे जगदीश ! इस राज्य की तुम्हीं लाज हो। तुम इस की रक्षा करो। पिता के कथनानुसार मैं यह मिथ्या वैभव और राज-पाट भोगना नहीं चाहता। तुम मेरे पूज्य ज्येष्ठ भ्राता को ऐसी प्रेरणा दो कि वे पिता के मृत्युजनित शोक से संसार से उदासीन न हों और राज्यकार्य का भार वहन करें।'

हर्ष को भय था कि माता-पिता की मत्यु का संवाद सुन कर बड़े भाई राज्यवर्द्धन दुखी हो कर कहीं प्राण-त्याग न कर बैठें। इसलिए वे ईश्वर से बार-बार यही प्रार्थनाएँ करते कि बड़े भाई सकुशल घर लौटें और राजपाट संभालें। निःस्वार्थिता की यह चरम सीमा थी।

पिता की मत्यु का संवाद राज्यवर्द्धन को युद्धक्षेत्र में ही मिल चुका था। उस समय वे हूणों को पूरी तरह पराजित कर चुके थे। समाचार सुनते ही युद्ध-विजय का आनन्द महान् शोक के रूप में विलीन हो गया। माता के सती हो जाने के संवाद ने तो उन्हें और भी अधिक दुखी कर दिया। उन्होंने सेना को वापस लाने का भार सेनापति पर छोड़ तत्काल राजधानी के लिए प्रस्थान कर दिया और दूसरे ही दिन थानेश्वर आ पहुँचे।

राजधानी में हाहाकार मचा था। सम्पूर्ण वैभवों से सम्पन्न नगरी श्रीहीन हो रही थी। यत्र-तत्र नागरिक शोकाकुल हो विलाप कर रहे थे। कोई राजा के अनन्त गुणों का वर्णन कर-करके उनके वियोग में सन्तप्त हो रहा था। कोई अपना और अपने भाग्य का ही दोष बता कर माथा पीट कर रह गया। सब के मुखचन्द्र दुःख और शोक रूपी राहु-केतु से ग्रस्त थे।

राज्यवर्द्धन का रथ राजधानी में प्रविष्ट हुआ। चारों ओर उदासी एवं निराशा छाई हुई थी। सड़क पर आने-जाने वाले लोग राज्यवर्द्धन को देखकर केवल प्रणाम करके निकल जाते। किसी के मुख से 'राजकुमार

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

की जय' के शब्द न निकल रहे थे। स्वाभाविक ही था। महान् शोक में कोई प्रसन्नतासूचक आह्लाद कैसे प्रकट करता !

राज्यवर्द्धन राजभवन आये। पहिले तो वे किसी प्रकार धैर्य बाँध सब लोगों के आश्वासन का कारण बने, किन्तु बाद में सब लोगों को महान् शोकग्रस्त और विह्वल देख वे भी धैर्य खो बैठे और रोने लगे। आखिर उनकी आयु ही क्या थी? कहलाने को बड़े राजकुमार, किन्तु आयु केवल १७-१८ वर्ष ! खाने-खेलने की छोटी-सी उम्र। उस पर इतने महान् संकट, विपत्ति पर विपत्ति ! कैसे उन बेचारों का धैर्य संभल पाता !

वृद्ध मंत्रियों और बड़ी-बूढ़ी स्त्रियों के बहुत समझाने पर राज्यवर्द्धन चुप हुए। स्नानादि से निंवृत्त हो उन्होंने सविधि माता-पिता का तर्पण किया।

लगभग एक सप्ताह शोक में ही बीता। इसी बीच उन्होंने एक दूत कन्नौज भेज कर बहन राज्यश्री को भी इस दुःखद संवाद की सूचना भिजवा दी। आठवें दिन उन्होंने दरबार बुलाया जिसमें मंत्रिमंडल के अतिरिक्त नगर के प्रतिष्ठित नागरिक, सेठ-साहूकार और प्रतिनिधि निमंत्रित किये। राज्यवर्द्धन के सामने अब दूसरी समस्याएँ थीं। राज्य की रक्षा, सुव्यवस्था एवं शासन-संचालन। किन्तु माता-पिता की मत्यु से उनका हृदय इतना अधिक द्रवित एवं दुखित था कि उन्होंने राजदरबार में खड़े होकर बड़े ही करुण शब्दों में स्पष्ट कह दिया—

'प्रजाजन ! माता-पिता के परलोकवास से मेरे हृदय पर गहरी चोट लगी है। मैं राज्य चलाने में असमर्थ हूँ। मैं यह सांसारिक सुख छोड़ कर वनों में जा कर तपस्या करूँगा। मुझे नहीं चाहिये ये मिथ्या ऐश्वर्य, ये झूठे वैभव ! संन्यासी वेश धारण कर मैं अपनी हृदय की शुद्धि का प्रयास करने तपोवन को जा रहा हूँ। राज्य का संचालन हर्ष करेंगे। मुझे आज्ञा दीजिये !'

युवराज की इस घोषणा से मानो प्रजा पर वज्रपात हो गया—'राजा गये, राजमाता गईं। अब युवराज भी हमें अनाथ बना कर चले जायँगे। हम लोग

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

किसके सहारे जियेंगे तब !' जनता चिल्ला पड़ी--'नहीं, हम युवराज को नहीं जाने देंगे। उन्हें अपने सुख के लिये नहीं, तो हमारे सुख की चिन्ता के लिए राज्य-भार संभालना ही होगा।' जनता अड़ गई।

बड़े भाई के ये विचार हर्ष को विष के समान लगे। वे खड़े हो कर बोले, 'आप बड़े हैं ! मुझे आज्ञा दे सकते हैं किन्तु मेरे लिये यह आज्ञा उसी प्रकार है जैसे किसी संयमी के लिए सुरापान की आज्ञा। सेवक के लिए स्वामी से द्रोह और सती नारी के लिए सतीत्व त्याग करने की आज्ञा ! मैं अबोध हूँ। बालक हूँ। मुझसे इतने बड़े साम्राज्य का संचालन असम्भव है। यह प्रजा अनाथ हो जायगी। राज्य में अराजकता और उपद्रव बढ़ जायेंगे। आपका चला जाना जनता के लिए अभिशाप हो जायगा, प्रभ !'

हर्षवर्द्धन के ये करुणाभरे वचन किसी पत्थर-हृदय को भी पिघला देते, किन्तु राज्यवर्द्धन अपने निश्चय से टस से मस न हुए। मंत्रियों ने प्रार्थनाएँ कीं। नगर के बड़े-बूढ़ों ने समझाया-बुझाया किन्तु राज्यवर्द्धन के हृदय पर किसी के कहने-सुनने और समझाने-बुझाने का कोई असर न पड़ा। अन्त में प्रजा के अत्यधिक आग्रह पर रात भर विचार करने की अवधि माँग कर राज्यवर्द्धन ने उनसे अपनी जान बचाई और दरबार समाप्त कर दिया।

वास्तव में रातभर विचार करने का बहाना तो एक चाल मात्र थी। वे जानते थे कि प्रजा के प्रबल आग्रह और हठ के कारण वे अपने निश्चय को कार्यान्वित न कर सकेंगे। इसलिये प्रातःकाल चुपचाप घर त्याग करने का उनका विचार था।

रात हुई। भोजनादि के उपरान्त वे अपने एकान्त शयनकक्ष में चले गये। मंत्रियों एवं हर्ष ने कुछ वार्तालाप करना चाहा किन्तु थकावट का बहाना कर वे शयनकक्ष में जा पहुँचे। सुकोमल शय्या पर पड़ते ही नींद आने को हुई। उस पर चिन्ता से उत्पन्न मस्तिष्क की थकावट। नींद आँखों में बार-बार समा जाती थी किन्तु उन्होंने बरबस निद्रा पर नियन्त्रण किया। उठ कर बैठ गये। उनके मस्तिष्क में विचार-लहरियों के भंवर चक्कर काट रहे थे।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

—'संसार मिथ्या है, असार है। क्षण भर का जीवन ! जीवन मिला है कुछ करने को ! ज्ञान, भक्ति और वैराग्य का मनन करने को। न कि सांसारिक, क्षणिक, मिथ्या सुख-वैभवों में लिप्त होकर व्यर्थ जन्म गँवाने को। तपोवन में चल कर कठिन तप द्वारा अपना जीवन, अपना मन शुद्ध करना चाहिये। यही जीवन का सर्वश्रेष्ठ लक्ष्य है।'

दूसरे ही क्षण विपरीत विचार-समुद्र आ टकराता—'नहीं-नहीं, तुम राजपुत्र हो ! प्रजा-संरक्षण करना तथा राज्य का संचालन करना ही तुम्हारा परम कर्त्तव्य है। प्रजा के सुख-दुःख की चिन्ता न कर संसार की कठिनाइयों एवं विपत्तियों से घबरा जाना राजधर्म नहीं। राजा के पुत्र हो। तुम्हें राज-धर्म पालन से ही मोक्ष एवं मुक्ति मिलेगी।'

'किन्तु नहीं ! प्रजा के संरक्षण के लिये हर्ष जो है। योग्यता और राज्य-संचालन की निपुणता में वह मुझसे बढ़-चढ़ कर है। मेरे अभाव से प्रजा को दुःख न होगा। हर्षवर्द्धन प्रजा-रंजन में पर्याप्त दक्ष है। मुझे तपोवन ही चलना चाहिये। यही उत्तम है। इसी में मेरा कल्याण है। बस बस, यही अन्तिम निर्णय.......।'

और यही सोचते-सोचते रात्रि व्यतीत हो गई। माया पर ज्ञान की विजय हुई। ममता पर व्यक्ति ने विजय पाई और राज्यवर्द्धन के तपोवन-गमन का निश्चय अटल रहा।

प्रातःकाल होते ही राज्यवर्द्धन ने अपने सेवकों को वल्कल-वस्त्र लाने का आदेश दिया। सेवक सहम गये। उनके पैरों में मानो बेड़ियाँ पड़ गईं। एक पग उन का आगे न बढ़ सका। उन्होंने समझा था कि रात भर में युवराज ने अपना निश्चय बदल दिया होगा और अब वे तपोवन नहीं जायेंगे। किन्तु प्रातः उठते ही उनके द्वारा वल्कल-वस्त्र की मांग सुन कर सभी चकित एवं दुखित हो गये।

उन्हें इस प्रकार चुपचाप खड़े देख कर राज्यवर्द्धन ने डाँटा—'जाओ ! मेरी आज्ञा का पालन करो।' और डर के मारे सेवक वस्त्र लाने चल दिये। कुछ ने जाकर हर्षवर्द्धन और मंत्रियों को सूचित कर दिया। थोड़ी देर

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

में ही राज्यवर्द्धन के शयन-कक्ष के बाहर फिर लोगों का जमाव हो गया। सभी फिर रोने लगे, प्रार्थना करने लगे।

हर्ष ने बड़े भाई के चरण पकड़ लिये—'मैं अपने जीते जी आपको यहाँ से नहीं जाने दूँगा।' हर्षवर्द्धन बच्चोंका-सा हठ करने लगे।

इतने में सेवक आज्ञा-पालन कर वल्कल-वस्त्र भी ले आया। सबके विरोध और आग्रह को ठुकरा कर राज्यवर्द्धन ने वल्कल-वस्त्र धारण कर ही लिये। राजसी ठाठ-बाट रखने वाला युवराज उन वल्कल-वस्त्रों में तेजस्वी बालयोगी की तरह शोभायमान हो रहा था। इस वेश में राजकुमार को देख कर राजभवन की महिलाएँ दहाड़ मार कर रो पड़ीं, चिल्ला पड़ीं। राजभवन का वातावरण इतना दीन दिखलाई पड़ने लगा कि कोई भी वज्रहृदय उसे देखकर पिघल उठता। किन्तु राज्यवर्द्धन पर वैराग्य का जो भगवा रंग चढ़ चुका था उसे छुड़ाने की शक्ति किसी में न थी।

वल्कल-वस्त्र पहिन कर युवराज चलने को हुए। करुणा का समुद्र उमड़ पड़ा। सभी की आँखों में आँसुओं की बाढ़ आ रही थी। सब अशान्त, दुखी और शोकाकुल थे। राजमाता गईं, उतना दुःख न हुआ। राजा का परलोक-गमन हुआ, इतना शोक न था। वृद्ध थे, एक दिन तो मृत्यु अवश्यम्भावी थी ही; किन्तु यह नौनिहाल राजकुमार जीते-जी इस संसार को ठोकर मार कर तपोवन की धूल छानने जा रहा है। यह सबको इतना दुःखदायी और अभिशाप जान पड़ा कि वे सब विह्वल हो मूर्च्छित हुए जा रहे थे।

ईश्वर कितना कृपालु है। उसकी कृपा का कोई अन्त है क्या! उसकी क्या इच्छा थी, कोई क्या जानता? सम्भव को असम्भव और असम्भव को क्षण में सम्भव बना देना उसके लिये चुटकी का खेल है। सारी प्रजा, सारे अमात्यगण, बन्धु-बान्धव जिसे बड़ी विनीत प्रार्थनाएँ करके भी रोक न सके; छोटे भाई हर्षवर्द्धन और राजभवन की स्त्रियों के बड़े-बड़े आँसू जिसे न पिघला सके, अपने निश्चय से तनिक भी न डिगा सके, उसे क्षण भर में अपना निश्चय बदलने के लिए बाध्य होना पड़ा।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

राज्यवर्द्धन राजभवन की सीढ़ियाँ उतर रहे थे। पीछे-पीछे रोती हुई महिलाएँ, मंत्रिगण, वन्धु-वान्धव और हर्षवर्द्धन अपना भाग्य कोसते चले जा रहे थे। इतने में राजभवन के द्वार में एक घुड़सवार ने प्रवेश किया। वह राजकुमारी राज्यश्री का संवादक नामक सेवक था। वह दूत ही मानो थानेश्वर की प्रजा का भाग्य वन कर आया। तीव्रता से घोड़े से उतर कर उसने दोनों राजकुमारों को झुक कर प्रणाम किया और झोले से निकाल कर राज्यश्री का एक पत्र दिया। युवराज को वल्कल-वस्त्र पहिने देखकर उसके नेत्रों में भी आश्चर्य और घबराहट भरी उत्सुकता समा गई। वह आँखें फाड़ कर सवकी ओर देखने और परिस्थिति समझने का प्रयास करने लगा।

राज्यवर्द्धन ने वह पत्र पढ़ा और पढ़ कर उनका मस्तक चकराने लगा। उनको सूझ न पा रहा था कि अब वे क्या करें।

'क्या वात है भैया ?' हर्षवर्द्धन ने आश्चर्य से पूछा, 'किसका पत्र है ?'

'स्वयं पढ़ लो।' और राज्यवर्द्धन ने पत्र हर्ष के हाथ में दे दिया।

हर्ष ने पत्र पढ़ा तो उनके मस्तक पर भी बल पड़ गये। भौंहें तन गईं—'मालवनरेश की यह मजाल !' क्रोध से वे दाँत पीस रहे थे। 'तो अब क्या कर्त्तव्य है भैया ?' हर्ष ने क्रोध भरी घबराहट से पूछा। वे हृदय में एक प्रकार से कुछ-कुछ प्रसन्न भी हुये कि इसी बहाने बड़े भाई को वनगमन से रोका जा सकेगा किन्तु वह प्रसन्नता इस नवागत विपत्तिजन्य दुःख से बिल्कुल ढँकी हुई थी।

'मालव को दंड देना होगा ! दुष्ट ने सोचा, थानेश्वर शासकहीन हो चुका है। उसकी करनी का फल शीघ्र मिलेगा।'

'तो !' हर्ष समझ रहे थे कि भैया के विचारों में परिवर्तन हो रहा है, 'युद्ध की तैयारी की जाय ? आप मालवा जायेंगे न ?'

राज्यवर्द्धन ने स्वीकृतिसूचक सिर हिलाया। सभी के मुरझाये चेहरे खिल उठे। सभी के मुख पर प्रसन्नता की लहर दौड़ पड़ी—'ईश्वर की अनन्त कृपा है। इस समय उसने थानेश्वर को अनाथ होने से बचा लिया। दूत के आने में एक क्षण भी देर होती, तो राज्यवर्द्धन जा चुके होते और तब राज्य पर विपत्ति के पहाड़ टूट पड़ते। अकेले हर्ष मालवा से लड़ने जाते या थानेश्वर की रक्षा

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

करते ? सारा राज्य नष्ट-भ्रष्ट छिन्न-भिन्न हो जाता। कन्नौज तो शत्रुओं के चंगुल में जा ही चुका था, थानेश्वर भी उनकी शनिदृष्टि में भस्मीभूत हो जाता।'

सभी ईश्वर का बार-बार धन्यवाद कर रहे थे। किन्तु राज्यश्री के विधवा होने का सभी को महान् दुःख था। अभी बारात गये कठिनाई से ७–८ महीने भी नहीं बीत पाये। अभी तो उसके नन्हे-नन्हे हाथों पर-से विवाह की मेंहदी भी न छूट पाई होगी। नवविवाहिता होने से लाजवश वह अपने पति से खुल कर दो बातें भी न कर पाई होगी और इसी बीच दुर्दैव ने उसका सुहाग छीन लिया। बिदाई के समय माता यशोमती ने उससे कहा था—'पति ही तुम्हारा सर्वस्व है।' आज उसका सर्वस्व छीन लिया गया। उसकी आशाओं की दुनिया उजाड़ दी गई। ११–१२ वर्ष की छोटी-सी आयु ! मतवाला यौवन अपनी मदभरी मतवाली सुरा के दो-एक घूंट ही कठिनाई से उसे पिला पाया था कि निर्दय कठोर विधि ने उसके हाथों से वह प्यार भरा प्याला झटका देकर छीन लिया। वह रोती ही रह गई, चीखती-चिल्लाती रह गई कि—दो-एक घूंट और पी लेने दो। मेरा संसार मत छीनो; मैंने अभी दुनिया का कुछ भी नहीं देखा। मेरी दुनिया तो अभी घूंघट में ही छिपी रही। किन्तु दैव ने एक न सुनी। दैव इन्हीं अर्थों में दुर्दैव और निर्दय कहलाता है।

छः-सात मास की नई व्याही दुल्हिन ! अभी अच्छी प्रकार पति का मुंह भी नहीं देखा था बेचारी ने। घूंघट की ओट से कनखियों से भले ही उसने अपने सर्वस्व धन परमेश्वर पतिदेव के दर्शन कर लिये हों, किन्तु जी भर कर मनचाहा दर्शन वह न कर पाई थी। उसकी आत्मा अभी बिल्कुल अतृप्त थी, अशान्त थी। उसके मन की मन में रह गई और आने वाला एक झलक दिखाकर ही अन्तर्धान हो गया। किन्तु मन मसोस कर ही रह जाना पड़ा उसे।

राज्यश्री स्वयं अनाथ हो गई किन्तु थानेश्वर की प्रजा को उसने सनाथ कर दिया। यही तो परोपकारियों के लक्षण हैं। राज्यश्री का सर्वस्व छिन गया और थानेश्वर की प्रजा को सर्वस्व, प्रजापालक राजा मिला। राज्यश्री का सुहाग लुटा और इसी बहाने थानेश्वर की प्रजा को स्वामी मिला। ईश्वर की लीला विचित्र है। उसे समझ पाना साधारण मनुष्य की बुद्धि के वाहर है।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

बहन के विधवा होने का दुःसंवाद पाते ही राज्यवर्द्धन के वन-गमन की इच्छा न जाने कहाँ लुप्त हो गई ? हृदय का वैराग्य न जाने किस कोने में जा छिपा उनके पाँव लौट पड़े। उन्होंने वन की ओर से मुंह फेर लिया। सारी प्रजा जय-जयकार कर उठी। राज्यवर्द्धन राजभवन में आये, वल्कल-वस्त्र उतार फेंके और उसके बदले कवच, युद्ध का पहनावा और शस्त्र धारण करने के लिए उतावले हो उठे।

: १३ :

राज्यश्री का काशगार से पलायन

काली-काली डरावनी रात। सारे राज्यभवन पर गहरा अन्धका छाया था। नवविजित राजधानी पर शत्रु का कठोर पहरा पड़ा था। स्थान-स्थान पर काली वेशभूषा पहने डरावने भूत सरीखे पहरेदारों की कर्कश ध्वनियाँ रह-रह कर गूंज उठतीं। राजभवन तो पहरेदारों के कठोर शिकंजे में बन्द था। पवन के झोंकों से राज-उद्यान के बड़े-बड़े ऊँचे वृक्षों की शाखाएँ हिल-हिल कर पत्तों की खड़खड़ाहट से और भी डर उत्पन्न कर रही थीं।

राजभवन के उत्तर की ओर उससे सटा हुआ वन्दी-गृह था। लोहे के सुदृढ़ सींकचों के अन्दर राजकुमारी राज्यश्री कठिन बन्दी जीवन बिता रही थी। यहाँ भी चार-चार सशस्त्र प्रहरी द्वार पर कठिन पहरा डाले घूम रहे थे। सुकोमल मखमली शैया के अतिरिक्त जिसका कमल-कोमल शरीर किसी भी कठोर वस्तु से आज तक स्पर्श नहीं कर पाया था, वह आज बन्दीघर की खुरदरी भूमि पर बिछे दुर्गन्धपूर्ण कम्बल पर पड़ी लेट रही थी। उस बेचारी को नींद कहाँ ? अन्धकारमयी कोठरी में मच्छरों एवं विषैले कीड़े-मकोड़ों ने काट-काट कर उसका शरीर छलनी बना रखा था। शरीर की खाज मिटाते-मिटाते उसके नाकों दम हो रहा था। अपनी इस परिस्थिति पर वह रो-रो उठती।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

हा ! बेचारी राज्यश्री की दुर्दशा देखकर किस कठोर हृदय का मन पसीज न उठेगा । माँ सिधार गईं । पिता स्वर्गवासी हुए । प्रथम आघात को वह अभी सहन भी न कर पाई थी कि पति के विछोह ने उसका हृदय छलनी-छलनी कर डाला । और तब राज्य भी गया, शत्रु द्वारा उसे चोर की स्त्री की तरह कटघरे में वन्द कर दिया गया । भगवान् जब किसी के बुरे दिन लाता है तो विपत्ति के पहाड़ के पहाड़ टूट कर गिरने लगते हैं ।

बेचारी राज्यश्री ने जहाँ सुन्दर-सुन्दर पक्वान्न और छप्पन भोग के अतिरिक्त और कोई वस्तु मुंह से चख कर न देखी थी, जो तरह-तरह के मधुर मिष्टान्नों के सिवाय और किसी वस्तु का स्वाद भी न जानती थी, उसे आज सूखी, कंकड़ीदार बाजरे की मोटी-मोटी अधपकी दो रोटियाँ और घास जसा उबला हुआ कोई साग खाने को दे दिया जाता । बेचारी के दाँत उस सूखी रोटी को चबाने में समर्थ न होते तो भी खाने के लिए बाध्य होना पड़ता ।, गला उसे निगलने से इन्कार करता किन्तु उसे किसी प्रकार मुंह में ठूंसना ही पड़ता । क्या करती ? विवश थी । जीवन-रक्षा के लिए तो कुछ न कुछ इस पापी उदर में डालना आवश्यक ही था ।

उस अनाथ के दिन बहुत बुरे कट रहे थे । बेचारी हर समय माथा रगड़ कर भगवान् से प्राथनाएँ करती—'हे भगवान् ! मुझे इस नरककुंड से निकाल । मैं भी अपने स्वामी के साथ युद्ध-क्षेत्र में चली जाती और उन्हीं के साथ ही मारी जाती तो वह क्या ही अच्छी मत्यु होती । एक तो रणक्षेत्र में, दूसरे पतिदेव के साथ-साथ, इस संसार का परित्याग होता ।' राज्यश्री पछता रही थी । अपने दुर्भाग्य को बार-बार कोसती और मन मसोस कर रह जाती । वश ही क्या था ?

उसी बन्दीघर में इस कोठरी से सटी हुई एक और काल-कोठरी थी । इसमें महामंत्री वन्द थे । दोनों कोठरियों के बीच एक लोहे का सींकचा था जिससे दोनों का सम्बन्ध जुड़ा हुआ था । यद्यपि महामंत्री को वन्दी जीवन के कष्टों के अतिरिक्त अलग से कठोर दण्ड और यातनाएँ भी दी जाती थीं किन्तु उन्हें अपने दु:खों की चिन्ता न थी । राज्य की स्वामिनी राजकुमारी के दु:ख देख-देख कर उनका हृदय बहुत अशान्त एवं दुखी रहता । वे बार-बार सींकचों के पास आ कर

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

राजकुमारी को सान्त्वना और धीरज-दिलासा दिलाया करते। सिवाय सान्त्वना-जनक शब्दों के उनके पास वहाँ था भी क्या, जो अपनी पुत्रीतुल्य राजकुमारी के दुःखों का अन्त करने के लिए वे दे डालते।

राजकुमारी को पुचकार कर वे कहते, 'बेटी ! धैर्य रखो। ईश्वर शीघ्र अच्छे दिन भी लायेगा। घबराओ मत, एक दिन इस बन्दीघर से हम लोगों की मुक्ति अवश्य होगी।'

'अब और क्या अच्छे दिन आवेंगे। माता-पिता रहे नहीं। मेरे स्वामी को इस निर्दय दुर्दैव ने मुझसे छीन लिया। और उतने पर भी जब उसका हृदय नहीं भरा तो इन कठोर यातनाओं के लिए बन्दीघर में सड़ने डाल दिया। अभी और भी कुछ बाकी है क्या ?' और उसके नेत्र अश्रुप्रवाह बहाने लगे।

'नहीं बेटी !' महामंत्री ने सींकचों में से हाथ बढ़ा कर उसके सिर पर फेरते हुए कहा, 'अच्छे दिन अवश्य आयेंगे। भारत की वीर नारियों पर प्राय: बड़ी-बड़ी कठिनाइयाँ पड़ती रहीं किन्तु वे कभी हिम्मत नहीं हारीं। ईश्वर की परीक्षा कठोर अवश्य होती है किन्तु फल मीठा होता है। तुम्हारे वीर भाइयों को जब तुम्हारी इस परिस्थिति का ज्ञान होगा तो वे अवश्य तत्काल इन दुष्टों को दंड देंगे और पुनः कन्नौज पर विजयपताका फहरायेंगे।'

'विजयपताका फहरा कर भी क्या होगा ? जिसका राज्य था वह तो रहे नहीं। मेरा सुहाग तो लुट ही गया। मेरे सर्वस्व, मेरे स्वामी तो मुझे छोड़ कर चले ही गये। अब राज्य लेकर क्या होगा !' राजकुमारी फूट-फूट कर रोने लगी।

'धीरज रखना पड़ता है बिटिया ! पतिव्रता स्त्रियाँ पति की मत्यु के बाद संयम, व्रत, नियम से अपना धर्म पालन करती हैं, इसीसे उन्हें परम पद प्राप्त होता है। तुम तो ज्ञानवती हो। धर्म के मर्म को जानती हो। संसार दुःखों से भरा हुआ है, उसे पार कर परम मोक्ष प्राप्त करना ही मनुष्य का लक्ष्य है। जो कठिनाइयों से घबरा गया, वह अपने लक्ष्य तक कैसे पहुँच सकता है ?'

वृद्ध महामंत्री का उपदेश मूल्यवान् और प्रभावशाली था। राजकुमारी के आवेश को रोकने की उसमें सामर्थ्य थी। राजकुमारी नें किसी प्रकार आँसू पोंछे।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

रोते-रोते राजकुमारी थक चुकी थी। उसी कम्बल पर उसको नींद लग गई। एक अनाथ स्त्री की तरह वह भूमि पर लेट रही। महामंत्री ने अब कुछ सन्तोष की साँस ली। राजकुमारी को सुला कर महामंत्री भी अपने कम्बल पर जाकर ऊँघने लगे।

दोनों तब तक सोते रहे जब तक सूर्योदय के बाद उसकी बालरश्मियाँ झरोखों से आ-आकर बन्दीगृह की कोठरियों में छा नहीं गईं। देवगुप्त की ओर से दो-एक दासियाँ राजकुमारी को प्रातः सायं शौच-स्नानादि कराने के लिए नियुक्त थीं। यह सुविधा भी उसने इसलिए देने की अपार कृपा की थी कि राज्यश्री उसकी भाँजी थी। दो दासियाँ राज्यश्री के स्नानादि का जल लेकर आईं। यद्यपि ये दासियाँ देवगुप्त की ओर से नियुक्त थीं किन्तु राजकुमारी की दयनीय दशा देख कर वे भी बहुत दुखी थीं और चाहती थीं कि वह किसी प्रकार कारागार से मुक्त हो जाये। किन्तु उनका वश ही क्या था?

उस दिन रात भर रोते-रोते राज्यश्री की आँखें फूल आई थीं। दासियों ने जब उनकी यह दशा देखी तो विनीत स्वर में कह ही बैठीं—'इस प्रकार रोते रहने से तो दुःख कम न होगा राजकुमारी जी! आपके कष्ट देखकर हमें भी बहुत दुःख होता है।' और धीरे से कहा, 'भगवान् जाने यह कैसा राजा है जो अपनी भाँजी को ही इतने कठोर दण्ड दे रहा है। अरे! राजाओं की शत्रुता राजाओं से होती है कि बेचारी स्त्रियों से।'

उनके इन सहानुभूतिजनक वचनों से राजकुमारी को बहुत सान्त्वना मिली। पास की कोठरी में महामंत्री भी ये शब्द सुन रहे थे। झट उठ कर सींकचों के पास आये और बोले, 'दासी! तुम्हें राजकुमारी से बड़ी सहानुभूति है?'

'क्यों न होगी? कोई भी स्त्री किसी स्त्री का इस प्रकार दण्डित होना सहन नहीं कर सकती।' उनमें एक कुछ आवेश में बोली। यह दूसरी से कुछ समझदार और आयु में बड़ी जान पड़ती थी।

महामंत्री को कुछ आशा हुई। वे राजकुमारी के दुःख देख-देखकर तड़प कर रह जाते थे किन्तु विवशता उनसे कुछ न करा पा रही थी। आज उन्हें अचानक सूझ हुई। सोचा, इस दासी से यदि कुछ सहायता मिले तो अच्छा हो। वे जानते

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

थे कि यदि किसी प्रकार उनके अपने बन्दीगृह निरीक्षक से भेंट हो सके तो काम बन सकता है। वास्तव में ग्रहवर्मा के जितने भी कर्मचारी थे, सब बड़े स्वामिभक्त थे किन्तु समय का फेर देख कर वे चुप कर गये और देवगुप्त की नौकरी स्वीकार कर ली। देवगुप्त बड़ा नीतिनिपुण था। उसने दो ही चार दिन में पुराने कर्मचारियों को अपने-अपने स्थानों से हटाकर दूसरे स्थानों पर नियुक्त कर दिया था।

महामंत्री बन्दीगृह-निरीक्षक से भेंट करना चाहते थे किन्तु यह कैसे सम्भव था? इसलिए उन्होंने सोचा, उसकी पत्नी को ही बुला लिया जाय तो बहुत कुछ भेद का पता लग सकता है। उन्होंने यही सोच कर उक्त दासी को पास बुला कर धीरे से कहा, 'तुम यदि वास्तव में राजकुमारी को छुड़ाने की इच्छा रखती हो तो एक काम करना पड़ेगा।'

दासी पहिले तो कुछ घबराई किन्तु दूसरे ही क्षण बोली, 'मेरे बस का होगा तो अवश्य करूँगी।'

'हम लोगों के राज्य में इस बन्दीगृह का जो निरीक्षक था, उसकी पत्नी से किसी प्रकार भेंट करा दो। नन्दिकेश्वर उसका नाम है। घर उसका लक्ष्मीजी के मण्दिर के पिछवाड़े है।'

'पत्नी से?' दासी कुछ मुस्कुराई, 'किन्तु वह आयेगी क्यों कर?'

'क्या इसका उपाय भी तुझे समझाना पड़ेगा? राजकुमारी जी को छुड़ाने के लिए वह भी सब कुछ करने को तैयार हो जायेगी।'

दासी समझ गई और 'हाँ' कह कर वहाँ से चली गई।

अपना कामकाज चटपट निपटा कर वह बाजार में सौदा लाने और लक्ष्मी जी का दर्शन करने के बहाने बन्दी-गृह निरीक्षक नन्दिकेश्वर के घर जा पहुँची। वह स्वयं घर पर था भी नहीं। पत्नी से भेंट हो गई।

दासी ने महामंत्री की सारी बातें उसे बताईं और राजकुमारी के दुःख की करुण गाथा भी! नन्दिकेश्वर की पत्नी का नाम था तारामती। वह राजकुमारी के दुःख सुनकर पिघल उठी। उसने कहा, 'उनसे पूछ लूँ।'

दासी चतुर थी, कहीं भंडा न फूट पड़े और पति भयवश स्वीकार न कर लें। सोच कर कहा, 'नहीं सखी! पूछ कर क्या करोगी? वे नाहीं तो

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

करेंगे नहीं। शीघ्रता करनी चाहिये, कहीं रोते-रोते राजकुमारी के प्राण न निकल जायँ।'

तारा तैयार हो गई। दासी ने उपाय बताया।

बोली, 'सायंकाल मेरी जगह तुम राजकुमारी जी को स्नान कराने चली जाओ। मेरे कपड़े पहिन कर चली जाना। कोई पूछे तो कह देना कि मेरी तबीयत ठीक नहीं है।'

निश्चयानुसार सायंकाल तारा बन्दीगृह पहुँची। उसके साथ एक और दासी, वही दोनों जो आती थीं उनमें से छोटी वाली भी थी। तारा ने राजकुमारी को अपना परिचय दिया तो वह बहुत प्रसन्न हुई। सोचा, अब सम्भवतः काम बन जाय! उसने महामंत्री को धीरे-से बुलाया और तारा की ओर संकेत कर दिया।

महामंत्री उसे अपने पास बुला कर धीरे-धीरे उसके कान में बातें करने लगे। उनकी बातें स्पष्ट समझ में न आ रही थीं। केवल, 'अच्छा, हाँ-हाँ, ठीक-ठीक' की ध्वनि सुन पड़ती। अन्त में 'अच्छा कल फिर आऊँगी' कह कर वह वहाँ से चली गई।

घर लौट कर तारामती ने अपने पति से सब बातें कहीं। एक बार तो वह भी घबरा उठा किन्तु फिर दूसरे क्षण उसकी स्वामिभक्ति आवेश में आई। उसने पत्नी से सारा उपाय बता दिया। पत्नी बहुत प्रसन्न हुई। आनन्द के मारे उसे रात भर नींद नहीं आई। प्रातः होते ही बन्दीघर की ओर चल पड़ी। वहाँ पहुँच कर उसने महामंत्री को वहाँ से भागने का सब उपाय बता दिया। महामंत्री तो आनन्द से उछल पड़े। उन्होंने तारा को बहुत धन्यवाद दे कर बिदा किया।

दूसरे दिन जब वही दासी अपने काम पर आई तो महामंत्री ने उससे कहा, 'अभी आधा काम हुआ है। आधा और कर दो तो तुम्हारी राजकुमारी छूट सकती है।'

'वह क्या?'

'किसी प्रकार देवगुप्त से कह-सुनकर हम दोनों को मेरी कोठरी से सटी हुई तीसरी बड़ी कोठरी में भिजवा दो। देवगुप्त से जा कर प्रार्थना करना कि वर्तमान

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

कोठरी बहुत गन्दी है। राजकुमारी के तो उसमें प्राण ही घुट जायेंगे। संभवत: अपनी भाँजी पर वह इतनी दया कर दे!'

'किन्तु मैं तो बेमौत मारी जाऊँगी।'

'तू भी राजकुमारी जी के साथ भाग जाना।'

यह बात उसकी समझ में आ गई। वह चली गई। दूसरे दिन बड़ी उछलती-नाचती वह आई और बोली, 'महाराज ने प्रार्थना स्वीकार कर ली है। मैं बन्दीगृह निरीक्षक के नाम आदेशपत्र भी लाई हूँ। किन्तु अकेली राजकुमारी के लिए। आपको उनके साथ रहने की आज्ञा नहीं मिली।'

यद्यपि इससे महामंत्री के चेहरे पर कुछ दुःख की रेखाएँ खिच गईं, किन्तु इसका उन्हें अधिक शोक न था। स्वाभाभक्त थे वह। स्वामिनी की उन्हें सर्वप्रथम चिन्ता थी। अपने लिए क्या था? वृद्धावस्था यदि कारागार जीवन में ही समाप्त हो गई तो क्या? इतना ही था कि यदि वे स्वयं राजकुमारी के साथ रहते तो बिना कष्ट राजभवन से बेदाग भगा ले जाते। किन्तु फिर भी उन्हें राजकुमारी के चातुर्य पर विश्वास था कि वह शत्रु की आँखों में धूल डाल कर भाग निकलेगी।

अब क्या था? महाराज का आज्ञा-पत्र पाकर वन्दीगृह-निरीक्षक ने राजकुमारी को उसी साफ़-सुथरे, साफ-सुथरा काहे का, अपेक्षाकृत कुछ अच्छे कमरे में भेज दिया। राजकुमारी ने उसमें प्रवेश करते ही अपने भागने के साधन को पलक मारते देख लिया।

रात्रि हुई। मध्यरात्रि! ईश्वर की कृपा से पहरेदार दूरी पर थे। जिस कोठरी में राजकुमारी पहिले रही वह बन्दीगृह की प्रथम कोठरी थी। अत: पहरेदार वहीं ताक पर पहरा देते थे। यह चौथी थी। इसलिये पहरेदार की नजरों से बचने की बहुत कुछ सुविधा थी। उस पर अँधेरी रात में कौन आँख फाड़-फाड़ कर अन्दर झाँकने आता!

राजकुमारी ने चलने की तैयारी की। महामंत्री से विदा ली। उसने सकुशल बाहर जाने का आशीर्वाद दिया और तब राजकुमारी ने प्रस्थान किया।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

कमरे के उत्तर-पश्चिम कोण मे जमीन में एक पत्थर का छोटा-सा द्वार था। आँख गड़ाने पर वह स्पष्ट दीख पड़ता था। वैसे वह जमीन से इतना मिला हुआ था कि कोई जान न पाता। शत्रु के अनजान पहरेदार इस कोठरी का रहस्य क्या जानते !

राजकुमारी ने वह पत्थर उठाया। नीचे अन्धकार था किन्तु टटोल कर देखा तो उसमें सीढ़ी मिली। राजकुमारी ने एक बार पुनः महामंत्री की ओर देखा और उसमें पैठ गई। ऊपर से पत्थर ज्यों का त्यों रख दिया गया। तहखाने में इतना अन्धकार था कि हाथ को हाथ न सूझता था, किन्तु दासी पहले ही उसे चकमक पत्थर दे गई थी। आते समय वह अपनी कोठरी का दीपक उठाती लाई थी। उसने पत्थर को रगड़ कर आग सुलगाई और दीपक जला लिया। क्षणभरमें सारे तहखाने का चिरसंचित तिमिर भाग गया। अब तो राजकुमारी झट-पट सीढ़ियों से नीचे उतर आई।

तारा ने उसे गुप्त मार्ग अच्छी प्रकार समझा दिया था। उसी बताये मार्ग से वह आगे बढ़ी। तहखाने में पूर्व की ओर एक बड़ा-सा आला था जिसकी दीवार मोटी लकड़ी की वनी थी। लगती ऐसी थी जैसे पत्थर की हो। राजकुमारी ने उसे धक्का दिया तो वह खुल गया। उसमे जाने का मार्ग था। वह उसमें प्रविष्ट हुई और पुनः उसे वैसे ही वन्द कर दिया। अब वह सुरंग में आ चुकी थी। लम्वी-सी सुरंग, सीधा मार्ग। लम्बे-लम्बे डग बढ़ा कर राजकुमारी थोड़ी देर में सुरंग के द्वार तक आ पहुँची। सुरंग का द्वार पहले ही से कुछ खुला था। उसे खोला तो देखा सामने ही दासी घोड़ा लिये तैयार खड़ी है। सुरंग का द्वार उसी ने खोला था। एक घोड़ा और था, उसके अपने लिये। राजकुमारी ने दीपक बुझा कर वहीं रख दिया और बाहर निकली।

'बेचारे महामंत्री फंस गये।' राजकुमारी बोली।

'क्या किया जाय, लाचारी है ? प्रातः होते ही उन पर तो खूब उड़ेगी।' दासी ने कहा।

'नहीं, वे कहेंगे, मैं सोता रहा। मुझे क्या मालूम !' वास्तविक अभियुक्त तू तो भाग ही आई।'

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

'किन्तु इस कोठरी में आने के लिए आप दोनों के लिए प्रार्थना की गई थी। इसलिये महामंत्री पर अवश्य संदेह होगा।'

'हाय, बड़ा बुरा हुआ।' राजकुमारी शोक मनाने लगी।

'अब शीघ्र चलिये। कहीं कोई आ धमका तो सब बना-बनाया काम बिगड़ जायगा।'

दासी ने राजकुमारी को पुरुषों का वेश धारण करा दिया और स्वयं तो पहले ही पहन कर आई थी। यह इसलिए कि मार्ग में कोई पहचाने नहीं।

राजकुमारी ने चटपट कपड़े पहिने और उछलकर दोनों घोड़े पर सवार हो गईं। एड़ लगाते ही घोड़े हवा से बातें करने लगे।

मार्ग में दो-एक स्थानों पर इनके घोड़े रोके गये जहाँ राजमुद्रा दिखाकर इन्होंने वह आपत्ति टाली। उस समय तक अभी देवगुप्त ने अपनी मुद्रा नहीं चलाई थी। दो-चार दिन में चला भी कहाँ से पाता? इसलिये पुरानी राजमुद्रा दिखाने पर ही नगर-रक्षकों ने मार्ग छोड़ दिया और राजकुमारी नगर से बाहर गहन वन में विलुप्त हो गई।

———

: १४ :

कन्नौज शत्रुओं के चंगुल से मुक्त

वैभव उनका बहुत चढ़ा-बढ़ा हुआ था। ऐश्वर्यों की उनके यहाँ बाढ़-सी आ रही थी। राज्यलक्ष्मी उन पर न्योछावर थी। विजयश्री चरण-चेरी बन उनके पैर पूजती थी। महाराज प्रभाकरवर्द्धन का राज्य इन्द्रपुरी से कम वैभव-सम्पन्न न था। यद्यपि महाराज सम्राट की पदवी धारण करने योग्य न थे किन्तु उनके राज्य की सीमा दूर-दूर तक फैली थी। प्रभाकरवर्द्धन को हूणों, गुर्जरों, गुजरात के लाट तथा सिन्धु, गान्धार एवं मालवा के राजाओं से भीषण संग्राम करने पड़े थे। ये

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

राजागण उनकी प्रभुता से काँपते एवं भय खाते थे । इसका एकमात्र कारण था कि बहुत बड़ा राज्य न होने पर भी थानेश्वर के महाराज प्रभाकर वर्द्धन को सैन्य-संग्रह का बहुत शौक था और अपने जीवन में अपनी सैन्यशक्ति बढ़ा-चढ़ाकर इतनी सुदृढ़ बना ली थी कि सम्पूर्ण उत्तरी भारत पर आधिपत्य न होते हुए भी सभी छोटे राजा-महाराजा उन्हें उत्तरी भारत के एक महान राजा के रूप में देखते थे । उनकी विशाल चतुरंगिणी सेना में दस हजार घोड़े, एक हजार हाथी, २ हजार रथ और २० हजार पैदल सैनिक थे । सैन्य-सामग्री का उनकी सेना में अचूक भंडार था । जिसके बल पर ही वे अजेय माने जाते थे ।

इसी विशाल वाहिनी के कारण ही प्रभाकरवर्द्धन की मृत्यु के बाद उनका राज्य टिका रहा । अन्यथा चारों ओर जहाँ शत्रु थानेश्वर राज्य पर आँखें गड़ाये थे, उनकी मृत्यु के बाद राज्य के उत्तराधिकारी के रूप में छोटे-छोटे बालकों को देखकर तत्क्षण आक्रमण कर देते और राज्य पर आधिपत्य जमा लेते ।

इसी सेना के बल पर कुमार राज्यवर्द्धन को अपने बहनोई गृहवर्मन की हत्या होने पर मालवा और गौड़ देश के दुष्ट एवं सबल राजाओं से भिड़ने का साहस हुआ और उन्हें पूरी तरह पराजित कर देश की ओर भाग जाने के लिये उन्होंने बाध्य कर दिया ।

राज्यवर्द्धन अपनी बहन के विधवा होने का संवाद सुनकर बहुत दुखी हुए । सुनते ही वे तो आगबबूला हो उठे । इसी दुःख एवं प्रबल क्रोध के कारण ही तो उनका वन-गमन का अटल निश्चय भी टूट गया । उनकी वैराग्य भावनाएँ क्रोधाग्नि में भस्म हो गईं । उनपर अब अपने दुष्ट मामा एवं गौड़ाधिपति शशांक को दण्ड देने का उतावलापन सवार हो गया । तत्काल उन्होंने सेनाओं को तैयार होने का आदेश दिया ।

उन्होंने प्रतिज्ञा की—'मैं दस दिन के भीतर मालवराज देवगुप्त और गौड़-नरेश शशांक की सम्पूर्ण सेना का संहार कर उन्हें अपने भगिनीपति की हत्या का अच्छी प्रकार मजा न चखाऊँ तो मैं राजपुत्र नहीं । मालव और गौड़ देशों के दुष्ट राजाओं द्वारा मौखरियों का निरादर असह्य है । उन्हें अपनी करनी का पूरा-पूरा दण्ड मिलेगा ।'

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

और राज्यवर्द्धन कवच धारण कर शीघ्र युद्ध के लिये प्रस्थान करने को तैयार हो गये। उन्होंने सेनापति को आदेश दिया कि सेनाओं का शीघ्र प्रस्थान किया जाय। राज्यवर्द्धन ने वृद्ध प्रधान सेनापति को राजधानी में हर्ष की सहायता के लिये छोड़ दिया और अपनी सेना का सेनापतित्व कुशल योद्धा, रणपटु अपने ममेरे भाई भांडी को सौंपा। बड़ा ही आश्चर्य! मालवराज देवगुप्त का पुत्र भांडी अपने स्वामी की आज्ञा पाकर अपने पिता से दो हाथ करने जा रहा था।

राज्यवर्द्धन के साथ दस हजार अश्वारोही सैनिक थे एवं पैदल सैनिकों की विशाल सेना थी। राजधानी की रक्षा के लिये हाथियों की सम्पूर्ण सेना तथा बचे हुए पैदल सैनिक उन्होंने हर्ष को सौंप दिये। युद्ध में भाई के साथ चलने के लिये हर्ष ने हठ किया और प्रार्थना भी की किन्तु राज्यवर्द्धन ने उन्हें डाँटा कि आखिर राजधानी की रक्षा कौन करेगा? पिता के देहावसान से उत्पन्न शत्रुभय की स्थिति उन्होंने हर्ष को समझाई और साथ चलने से रोका।

उन्होंने चलते समय हर्ष को राजनीति का उपदेश दिया—'छिद्र देखकर आघात करना शत्रु का कार्य है। इसलिये अपनी स्थिति को सुदृढ़ बनाये रहना राजा का प्रमुख कर्त्तव्य है। पिता की मृत्यु से हमारे पुराने-पुराने सभी शत्रु एक साथ सजग हो उठे हैं। उन सब की दृष्टि हमारे राज्य की ओर लगी है। हम लोगों की अल्प वय का वे अनुचित लाभ उठाने का प्रयास करेंगे किन्तु उनके सभी प्रयास विफल कर देना ही हमारी राजनीति की सफलता होगी। इसी में हमारा और हमारी प्रजा का हित होगा। किसी प्रकार का हठ और बालकपन घातक है। राजा का प्रथम कर्त्तव्य है कि वह सरल-हृदय होते हुए भी सहज ही किसी पर विश्वास न करे। अविश्वास की नींव पर ही विशाल राजनीतिक रंगमंच खड़ा है। विश्वास द्वारा जब हम अपनी नींव पर ही आघात करेंगे तो भवन स्वतः भग्न हो जायगा। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि हम किसी पर विश्वास ही न करें परन्तु पहिले उसे ठोक-बजा लिया जाय फिर विश्वास किया जाना चाहिये। विश्वास होने पर भी सजग और सतर्क रहना राजा का प्रथम कर्त्तव्य है।'

राजनीतिक उपदेश बहुमूल्य था। हर्ष पर आजीवन इसका प्रभाव जमा रहा। बड़े भाई के उपदेश का उन्होंने जीवन भर पालन किया और इसी उपदेश की नींव

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

पर इतना बड़ा साम्राज्य स्थापित किया, किन्तु हा दुर्दैव ! जिस राज्यवर्द्धन ने अपने छोटे भाई को इतना उच्च उपदेश दिया, युद्ध में स्वयं उसकी अवहेलना कर बैठे जिसका परिणाम उनके जीवन के लिये काल बन गया। 'विनाशकाले विपरीत-बुद्धिः' का शिकार राज्यवर्द्धन स्वयं हो गये।

राज्यवर्द्धन की विशाल सेनाएँ तीसरे दिन कन्नौज के निकट पहुँचीं। मालव-नरेश और गौड़ाधिपति को पहिले ही इसकी सूचना मिल चुकी थी। उनकी विजयिनी सेनाएँ उन्मत्त हो युद्ध के लिये उतावली हो रही थीं। तत्काल उनकी ओर भी प्रस्थान की तैयारियाँ कर ली गईं। किन्तु देवगुप्त के परामर्श से प्रथम स्वयं आक्रमण न करने का निश्चय किया गया। आक्रमण होने पर ही उसके उत्तर स्वरूप युद्ध छेड़ने की उसकी राय थी।

कन्नौज के निकट ही एक युद्धोपयुक्त विशाल मैदान राज्यवर्द्धन ने रणक्षेत्र के लिये चुना। इसी से लगभग एक मील दूर उन्होंने अपने पड़ाव डाले।

शिविरों की विधिवत् स्थापना के बाद राज्यवर्द्धन ने एक दूत कन्नौज भेजा और शत्रु को आत्मसमर्पण करने की चेतावनी दी। अपने पत्र में उन्होंने लिखा—'हमारी सैन्यशक्ति से सारा देश परिचित है। आपकी क्षुद्र सेनाएँ उसका मुकाबला करने में सर्वथा असमर्थ सिद्ध होंगी। शक्तिहीन एकाकी गृहवर्मा की हत्या कर आप अपने को बड़ा वीर समझ रहे होंगे। किन्तु वह आपकी नीचता एवं दुष्टता के अतिरिक्त कुछ नहीं। यदि शक्ति का गर्व हो तो रणक्षेत्र में आकर दो हाथ कीजिये। अन्यथा मैं अपने मामा को यही सत्परामर्श दूंगा कि वह सकुशल मालवा लौट जायँ और थानेश्वर की विशाल सेनाओं के कोपभाजन न बनें। मेरी सेनाओं का नायक आपका पुत्र भांडी है ही। युद्ध में वह आपका मानमर्दन करने के लिये पर्याप्त शक्ति रखता है।'

दूत द्वारा पत्र प्राप्त कर देवगुप्त जल भुनकर राख हो गया। उसकी अपनी तो नहीं, गौड़ाधिपति की सेना का बड़ा भरोसा था। उसी के बल पर उसने सिंह से शत्रुता मोल लेने की भूल की थी। उसने पत्र का उत्तर तो देना दूर रहा, अपने सैनिकों को दूत को बन्दी बना लेने का आदेश देकर राजनीतिक इतिहास में अपना

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

मुंह काला कर लिया। उस क्षुद्र ने यह न सोचा कि इस निहत्थे दूत का क्या दोष ? वहादुरी दिखानी थी तो रणक्षेत्र में दिखलाता। उस निःशस्त्र दूत को पकड़ कर उसने अपनी महान नीचता और कायरता का राजनीति के सरे वाजार में प्रदर्शन कर दिखलाया।

दूत को बन्दी बनाने में उसकी एक दुष्ट चाल थी। वह यह कि शत्रु की असावधान सेना पर अचानक आक्रमण कर विजय प्राप्त कर ली जाय। इसके पूर्व उसने स्वयं पहिला आक्रमण न करने का जो निश्चय किया था वह भी इसी दुरभिसंधि का एक अंग था। उसने सोचा था—अभी तो राज्यवर्द्धन की सेनाएँ सतर्क हो चली आ रही हैं। इसी समय मुकावला करने से पराजित होने का भय है, जब उन्हें यह ज्ञात हो जायगा कि मालवराज स्वतः आक्रमण करने के लिये तैयार नहीं तो प्रथम अपना शिविर बनाकर उनकी ओर से सुदृढ़ता से आक्रमण की योजनाएँ बनाई जायंगी। इसी बीच उन्हें असावधान देखकर हम आक्रमण कर देंगे। इसी चाल के अनुसार उसने दूत को पकड़वा लिया कि वह जबतक लौटकर सूचना देगा तब तक हम उन पर धावा वोल देंगे।

देवगुप्त वड़ा राजा था। उसकी प्रत्येक चाल में दुष्टता भरी रहती थी। वैसा ही उसे साथी भी मिला। शशांक! वह उसका भी वाप था। दोनों के कलुषित विचारों ने चुपचाप रात्रि में आक्रमण कर देने का निश्चय किया।

दुष्ट मनुष्य अपनी दुष्टताभरी चालें सोचकर निश्चित हो बैठता है कि अब उसके सामने किसी की एक न चलेगी और वह सब स्थानों पर सफलता ही प्राप्त करता रहेगा। किन्तु वह नहीं जानता कि दुष्टता सदैव सफल नहीं हो पाती। जिसके साथ दुष्टता की जाय, वह एक बार धोखा खाकर सावधान हो जाता है। दुवारा की गई दुष्ट चालें व्यर्थ जाती हैं। यही स्थिति देवगुप्त के साथ हुई। राज्यवर्द्धन भी कम नीतिनिपुण न थे। भांडी द्वारा वे उसके पिताकी दुष्ट प्रकृति की सभी कहानियाँ सुन चुके थे। दूत के साथ ही उन्होंने कुछ गुप्तचर कन्नौज भेज दिये थे, जिन्होंने तत्काल दूत की गिरफ्तारी का समाचार लाकर उन्हें दे दिया। सुनकर राज्यवर्द्धन की क्रोधाग्नि में और घृत की आहुति पड़ी।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

वे बोले, 'दुष्ट, नीच ! दूत को पकड़ते लाज न आई ! दूत को पकड़ कर भारतीय राजनीति का गला घोंट दिया दुष्ट ने !' और उन्होंने तत्काल सेनाओं को कन्नौज पर आक्रमण करने का आदेश दे दिया। दुष्ट देवगुप्त रात्रि को उन पर चुपचाप धावा बोलने की चाल चल रहा था किन्तु राज्यवर्द्धन ने उसी समय चुपचाप उसकी सेनाओं पर आक्रमण करने का आदेश देकर उसकी समस्त चालें ही व्यर्थ नहीं कर दीं वरन् उसकी चालों का उसी को शिकार बना डाला।

राज्यवर्द्धन की विशाल वाहिनी कन्नौज पर टूट पड़ी। शत्रु सेना बिलकुल असावधान थी, उसे यह आशा न थी कि उस पर इस प्रकार धोखे से राज्यवर्द्धन भी आक्रमण कर पायेगा। किन्तु इस असावधानता से उसे अधिक हानि न उठानी पड़ी। युद्ध की तैयारियाँ थीं ही। इधर से भी शत्रु पर भीषण जवाबी हमले किये जाने लगे। दोनों की सेनाएँ भिड़ गईं। यद्यपि कन्नौज नगर की चहारदीवारी के द्वार बन्द थे किन्तु राज्यवर्द्धन की सेनाओं ने बिना अधिक प्रयास उन पर अधिकार कर लिया और उन्हें तोड़कर अन्दर घुस पड़ीं। शत्रु की असावधानता का यही लाभ राज्यवर्द्धन ने उठाया। अन्यथा शत्रु यदि सावधान होता तो अपनी सम्पूर्ण पराजय के बाद ही उन्हें नगर के अन्दर पाँव रखने देता।

नगर के अन्दर ही दोनों सेनाओं का जम कर युद्ध हुआ। राज्यवर्द्धन की सेना के दो भाग थे। एक का नायकत्व स्वयं वे कर रहे थे, दूसरे का भांडी। भांडी की सेना शशांक की वाहिनी से और राज्यवर्द्धन की वाहिनी देवगुप्त की सेना से लड़ रही थीं। यहाँ भी राज्यवर्द्धन ने नीति से काम लिया। यद्यपि वे जानते थे कि भांडी उनका अत्यन्त विश्वासपात्र है फिर भी कहीं पिता के सामने पहुँचकर उसे मोह न हो जाय। इसलिए उसके सामने भेजना उन्होंने उचित न समझा और स्वयं देवगुप्त का सामना करने गये।

बहुत भयानक युद्ध हुआ। देखते-देखते नगर श्मशान-भूमि बन उठा। लाशों से कन्नौज के बाजार, गलियाँ और कूचे पट गये। किसी का मस्तक धड़ से अलग। किसी की टांगें कटी हुईं, किसी की बाहें, किसी के हाथ पैर! कहीं टूटी तलवारें, भाले, धनुष तथा विभिन्न शस्त्रों के ढेर के ढेर लगे थे।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

चील, बाज़, कुत्ते आदि मांसाहारी जीवों के लिए यह भीषण कांड बहुत बड़ा सुअवसर था। सब बड़े आनन्द से लाशों को नोच-नोच कर स्वादपूर्वक खा रहे थे।

राज्यवर्द्धन को अपने बहनोई और विधवा बहन का बदला लेना था। वे बड़े ही क्रोध, उत्साह एवं साहस से शत्रु सेना का संहार कर रहे थे। अपने स्वामी की इस तन्मयता एवं तत्परता के कारण सेना का एक-एक सैनिक प्राणों का मोह छोड़कर युद्ध में अपने कौशल दिखाने लगा। उधर शत्रु भी अपने सैनिकों को बार-बार प्रोत्साहन दे रहा था। वह बार-बार चिल्लाकर कहता—'डटकर लड़ो और शत्रु को पीछे खदेड़ दो। अन्यथा इतनी कठिनाई से विजय किया कन्नौज का राज्य हाथ से निकल जायगा।'

दोनों ओर के सैनिकों को अपने राजाओं का काफी प्रोत्साहन मिल रहा था। सभी एक-एक बाजार, एक-एक गली-कूचा, मकान और उसकी एक-एक ईंट के लिए प्राणों की बाजी लगा रहे थे। मध्याह्नोत्तर तक तो शत्रु सेना डटकर लड़ती रही परन्तु सायंकाल होते-होते उसका उत्साह ठंडा पड़ गया। इधर राज्यवर्द्धन की सैन्य शक्ति प्रबलतर थी। सूर्यास्त से पूर्व ही नगर पर उनका अधिकार हो गया। देवगुप्त और शशांक अपनी सेनाओं को भगा कर नगर से बाहर दूर ले गये और वहीं उन्होंने अपने पड़ाव डाले।

इस युद्ध में शत्रु की काफ़ी सैन्य सामग्री भी राज्यवर्द्धन के हाथ लगी। भागते समय अपने शिविर उखाड़ ले जाने का उसे अवसर ही नहीं मिला। शत्रु द्वारा नगर से खदेड़े जाने के बाद देवगुप्त ने सोचा था कि संभवतः नगर-विजय के आनन्द में शत्रु एकाध दिन विश्राम करेगा और तब आगे बढ़ने का प्रयत्न करेगा। किन्तु यह धारणा भ्रामक निकली। राज्यवर्द्धन के हृदय में क्रोधाग्नि भभक रही थी। उन्होंने विजय के थोड़ी देर बाद सेनाओं को पुनः आदेश दिया—'वीर सैनिको! शत्रु को पूर्णतः पराजित किये बिना विश्राम मत करो। जिस दुष्ट ने महाराज ग्रहवर्मा को निरस्त्र पाकर उनका निर्मम वध कर डाला, उस दुष्ट राजा को दण्ड दिये बिना अन्न-जल ग्रहण करना पाप है। आप ने जिस शूरता से शत्रु को खदेड़ कर नगर पर विजय पाई, वास्तव में वह अत्यन्त प्रशंसनीय है।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

एक बार अपनी तलवारों का जौहर फिर दिखाकर शत्रु को पूर्णतः नतमस्तक होने के लिए बाध्य कर डालो ।'

स्वामिभक्त सैनिक अपने महाराज द्वारा अपनी प्रशंसा के वाक्य सुनकर सारी थकावट भूल गये । उनमें नया उत्साह, नया जोश और नई उमंगें भर आईं । बड़े जोश-खरोश से उन्होंने रात्रि में पुनः शत्रु के शिविर पर आक्रमण कर दिया ।

देवगुप्त के लिए यह रात्रि का आक्रमण महान् विपत्ति का कारण बना । उसके सभी सैनिक विश्राम कर रहे थे । सेनानायकों के साथ शशांक और देवगुप्त अगले दिन के युद्ध के लिए कार्यक्रम बना रहे थे । परामर्श में तल्लीन थे । अचानक शत्रु का आक्रमण देख उनके होश उड़ गये । रात्रि के अन्धकार में बुरी तरह भगदड़ मच गई । सैनिक इधर-उधर भाग खड़े हुए । किन्तु शशांक और देवगुप्त पुराने धक्काड़ थे । बड़े-बड़े युद्धों में इस प्रकार उन्होंने धोखा दिया था और बहुत से धोखे खाये भी थे । पुराने अनुभवी होने के कारण उन्होंने शीघ्रता में अपनी अस्तव्यस्त सेना को एकत्र किया और युद्ध में कूद पड़े । अपने राजाओं को थोड़ी-सी सेना के साथ रण में कूदते देख भागते हुए सैनिक भी लौट पड़े और शस्त्रधारण कर वे भी आ डटे ।

अब फिर रणचण्डी ताण्डव कर उठी । कृष्ण पक्ष की रात्रि थी । अन्धकार के कारण किसी को अपना-पराया भी न सूझ रहा था किन्तु राज्यवर्द्धन की ओर से बड़ी-बड़ी मशालों का प्रबन्ध किया गया था जिससे युद्ध में उभयपक्ष को सुविधा हुई ।

मनुष्य जैसा करता है वैसा भरता भी है । देवगुप्त ने बड़ी-बड़ी चालें चलीं । दुष्टता पर तुल गया । सोचा, दुष्टता अपनाने से विजय मेरे हाथ लग जायगी और मैं महान् साम्राज्य का स्वामी बन जाऊँगा; किन्तु सोचा हुआ सब व्यर्थ गया । युद्ध में उसे ऐसी उल्टी खानी पड़ी कि लेने के देने पड़ गये । चौबे जी आये थे छब्बे बनने, दूबे बन के गये । देवगुप्त कन्नौज और थानेश्वर का स्वामी होने के स्वप्न देख रहा था किन्तु उसे महान् पराजय के साथ-साथ अपने प्राण भी गँवाने पड़े ।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

रात्रि युद्ध में तो उसे बुरी तरह मुंह की खानी पड़ी। थोड़ी देर के युद्ध में ही उसकी सेनाओं के पैर उखड़ गये और वे भागने लगीं। इसी बीच अपने ही पुत्र भांडी की तलवार से देवगुप्त का मस्तक धड़ से अलग हो गया और उसकी तत्काल मृत्यु हो गई। अब शशांक को चिन्ता हुई। शशांक बड़ा बुद्धिमान् और नीतिपटु था। उसने सोचा, अब राज्यवर्द्धन के सामने अकेले उसकी दाल न गलेगी, समझौता कर लेना ही श्रेयस्कर होगा। चट उसने अपने सेनापतियों को समझाया और सब के परामर्श से सफ़ेद झंडा देकर एक सेनानायक को आगे भेज दिया। यहीं राज्यवर्द्धन की राजनीतिक भूल हुई। शत्रु की चाल ने उसे फांस लिया। इस समय उन्हें चाहिये था कि शशांक को गिरफ्तार कर लेते और समझौते का प्रस्ताव ठुकरा देते। उन्होंने ऐसा नहीं किया और शरण में आये शत्रु को अभयदान करने की नीति के अनुसार समझौते का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया।

राज्यवर्द्धन की सेनाएँ लौट पड़ीं। शशांक को कहला भेजा कि प्रातः समझौते की शर्तें भेजी जायेंगी और नगर के बाहर चारों ओर सम्पूर्ण सेना का कड़ा पहरा बैठाकर उन्हें सतर्क रहने का आदेश दे राज्यवर्द्धन कन्नौज के राज-भवन में प्रविष्ट हुए।

राजभवन में पहुँचकर अपनी विधवा बहन को बन्दी-गृह-जीवन से मुक्त करने के लिए वे बन्दीगृह पहुँचे परन्तु वहाँ जाने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि शत्रुओं को चकमा देकर वह बन्दीगृह से भाग निकली। यह जानकर जहाँ उन्हें सन्तोष हुआ वहाँ बहन का कुशल संवाद जानने की चिन्ता भी प्रबल हो उठी। उन्होंने महामंत्री आदि शेष बन्दियों को मुक्त कर दिया।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

: १५ :

शत्रु शिविर में राज्यवर्द्धन की हत्या

प्रातःकाल भांडी के परामर्श से राज्यवर्द्धन ने संधिपत्र तैयार किया। संधिपत्र की मुख्य शर्तें थीं—१–गौड़पति शशांक को अपनी आधी सेना थानेश्वर राज्य को भेंट में देनी होगी। २–गौड़ राज्य थानेश्वर के अधीन समझा जायेगा और उसे अधीन राजाओं की भांति थानेश्वर को निर्धारित कर देना होगा। ३–शशांक को १५ लाख स्वर्ण मुद्राएँ थानेश्वर को युद्ध के हर्जाने के रूप में देनी पड़ेंगी। ४–हर्जाने की रकम छोड़कर शेष समस्त सैन्य-सामग्री तत्काल देनी होगी।

भांडी यह संधिपत्र लेकर शत्रुशिविर में गया। शशांक ने अधिक विचार न कर उस संधिपत्र को स्वीकार कर लिया। मरता क्या न करता कहावत के अनुसार तत्काल उसने हस्ताक्षर कर दिये। उसने भांडी द्वारा राज्यवर्द्धन की सेवा में यह सन्देश भेजा कि कल प्रातःकाल तक मैं अपने सेनापतियों के साथ उक्त सैन्य सामग्री सविधि आपके दरबार में आकर भेंट करूँगा।

इधर मालवराज देवगुप्त की मत्यु के बाद रात्रि में मालव-सेना के मुख्य सेनानायकों की बैठक हुई। उन्होंने अपने स्वामी की मृत्यु के बाद उनके उत्तराधिकारी पुत्र भांडी को अपना अधिपति बनाने का सर्वसम्मत निश्चय कर लिया और जब भांडी संधिपत्र लेकर शशांक के शिविर में आया तो मालव सेना के प्रधान सेनापति ने उससे भेंट की और अपना निश्चय प्रकट किया। भांडी बहुत प्रसन्न हुआ और बोला—'मालवसेना पर राज्यवर्द्धन की विजय हुई है। मैं भी उनके अधीन हूँ। अतः मालवा राज्य और उसकी समस्त सेना उन्हीं के अधीन मानी जायगी। आप लोग विधिवत् महाराज राज्यवर्द्धन के सम्मुख आत्मसमर्पण करें। तब जैसी उनकी इच्छा होगी, करेंगे। सेनापति ने अपने स्वामी का आदेश मानकर तत्काल उन्हीं के साथ जाकर राज्यवर्द्धन के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया। और तब भांडी के आदेश से मालव सेनापति ने अपनी सम्पूर्ण सेनाओं के शिविर उखाड़ कर नगर में राज्यवर्द्धन की सेना के पास ही लगा दिये।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

राज्यवर्द्धन वहुत न्यायप्रिय, सत्यनिष्ठ व्यक्ति थे। किसी से धूर्तता या अनुचित व्यवहार करने का कभी उनके मन में संकल्प भी न उठता। संधि-पत्र पर हस्ताक्षर होने के वाद उन्होंने शशांक के साथ सम्मानजनक वर्ताव करने का निश्चय किया और नगर में ही एक सुन्दर भवन में उसके निवास की व्यवस्था कर दी। संधिपत्र के अनुसार उन्होंने अपना व्यवहार बड़ा स्पष्ट और सम्मानजनक रखा किन्तु उस दुष्ट ने आगे चलकर इस सम्मान का राज्यवर्द्धन को क्या फल दिया, देख कर हृदय काँप उठता है।

शशांक राज्यवर्द्धन द्वारा सम्मान पाकर वहुत प्रसन्न हुआ। यद्यपि राज्यवर्द्धन ने उसकी सेना को नगर प्रवेश की आज्ञा नहीं दी तथापि सम्मान-रक्षार्थ एक सौ घुड़सवार अपने साथ लाने की अनुमति दे दी। भवन वहुत सुन्दर था। सम्पूर्ण वैभवों से सम्पन्न! कन्नौज के अद्भुत वैभव का इसी भवन की साधारण सजावट से अनुमान लगाया जा सकता था। इस महान् ऐश्वर्य की झांकी देखकर शशांक के मुंह में पानी आ गया। दुष्ट की दुष्टता फिर जाग उठी।

वह अपने महामंत्री से बोला, 'महामंत्री! कन्नौज के ऐश्वर्यों को तो देखिये। इन्द्रपुरी भी क्या इसका सामना कर सकती है?'

'अव पश्चाताप से क्या होता है? संधिपत्र पर हस्ताक्षर हो चुके। जो होना था सो तो हो चुका।'

'संधिपत्र के हस्ताक्षर कौन विधाता के अमिट लेख हैं? अभी इसी क्षण अस्वीकार हो सकता है।'

'युद्ध की शक्ति हो तव न?'

'युद्ध बिना भी कहीं-कहीं विजय पाई जा सकती है महामंत्री! आप बहुत सीधे हैं।' शशांक ने क्रूरता भरी हँसी से कहा।

'वह कैसे? उपाय वताइये। करने को मैं तैयार हूँ।' महामंत्री बोला।

'उपाय? वहुत सरल है। एक हत्या और करनी होगी।'

महामंत्री का शरीर काँप उठा, 'किसकी?' काँपती हुई वाणी से उसने पूछा।

शशांक ने पास आकर धीमे स्वर में कहा,—'राज्यवर्द्धन की। उसके सम्मान में प्रीतिभोज का आयोजन किया जाय और एकान्त में...।'

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

'तो कब ?' महामंत्री मानो तैयार हो गया।

'आज ही, रात्रि में। कल सैन्य सामग्री देने का अवसर ही न आये।' और दोनों ने गुप्त मंत्रणा की। अपने एक उच्च अधिकारी को बुलाकर एक पत्र दिया और सब बातें भलीभाँति समझा-बुझा कर राजभवन रवाना कर दिया।

यहीं राज्यवर्द्धन की राजनीतिक भूल हुई। धूर्तों की दुष्ट चाल में वे फँस गये। युद्ध के लिए प्रस्थान करते समय जो उपदेश उन्होंने कनिष्ठ भ्राता हर्षवर्द्धन को दिया, उसे स्वयं ही बिसार बैठे। राजनीति में अपनों का विश्वास भी घातक होता है, शत्रु की तो बात ही क्या ? राज्यवर्द्धन ने शत्रु का सहज ही विश्वास कर अपनी सम्पूर्ण विजयों पर पानी फेर दिया। साथ ही अपने प्राण भी खो दिये।

राज्यवर्द्धन ने स्वीकृति भेज दी। तैयारियाँ आरम्भ हो गईं। शशांक ने सम्मान का बहुत सुन्दर ढोंग रचा था। ऐसा ढोंग देखकर कोई भी उसके भुलावे में सहज ही आ सकता था। सायंकाल निर्धारित समय पर राज्यवर्द्धन और भांडी अपनी सेना के उच्चाधिकारियों तथा कन्नौज के मंत्रियों के साथ शत्रु के 'लाक्षागृह' में पहुँचे। शशांक ने बड़े ही सम्मान के साथ उनका स्वागत किया। जन्म-जन्मान्तरों का धूर्तराट् शशांक राज्यवर्द्धन से गले मिलने आया। बड़े ही स्नेह से उसने राज्यवर्द्धन को गले लगाया और बोला—'महाराज ! बीती भूल जाइये। मैं आजन्म आपकी चरणसेवा करूँगा।'

स्नेह से सने हुए वचन सुनकर राज्यवर्द्धन का हृदय पिघल उठा। उन्होंने शशांक का अपने बड़ों की तरह सम्मान किया। यदि शशांक में तनिक भी दया एवं मनुष्यता की गंध होती तो राज्यवर्द्धन द्वारा अपना यह सम्मान पाकर सभी दुष्टता भूल बैठता और बड़ों की तरह राज्यवर्द्धन को सच्चा स्नेह प्रदान करता किन्तु नहीं, वह मित्र नहीं शत्रु था। शत्रु में भी मनुष्यता होती है, नीति होती है किन्तु वह मनुष्य ही नहीं था, दानव था, नरपिशाच !

शशांक ने राज्यवर्द्धन का राजसी स्वागत किया। अपने सैनिकों द्वारा सैनिक विधि से कवायद कराकर उन्हें सैनिक सलामी दी। सैनिकों के तरह-तरह के करतब दिखाये। इसके बाद प्रतियोगिताएँ हुईं। शस्त्र-प्रतियोगिता !

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

उसके सैनिकों ने तलवारों, भालों एवं धनुष-वाण के कौशल दिखाये जिन्हें देखकर सारी दर्शक मंडली मुग्ध हो उठी। इसके उपरान्त वाद्य-प्रतियोगिता हुई। तरह-तरह के सुरीले वाद्यों का प्रदर्शन हुआ। दुन्दुभि, भेरी, आदि रणवाद्यों से लेकर वंशी, शहनाई, वीणा तक की लुभावनी, मनोहारिणी प्रतियोगिताएँ हुईं। वाद्यों का प्रदर्शन तो सर्वोत्तम रहा। राज्यवर्द्धन तो गद्गद हो उठे। आखिर बालक ही थे न! शत्रु की मृगमरीचिका में फँस गये।

जब शशांक ने देखा कि शत्रु अधिकार में आ चुका है तब उसने अपनी कूटनीति का एक और पासा फेंककर उन्हें पूरी तरह अपने पंजे में कर लेने का दाँव किया। सुन्दर नर्तकियों का नृत्य! यही तो एक ऐसी वस्तु है जो देवताओं को भी मुग्ध कर पतन के गर्त में गिरा देती है। सुन्दरियों का हाव-भाव, कटाक्ष, नाज़-नखरों से भरा नृत्य वास्तव में राज्यवर्द्धन के लिए अभिशाप था। वे अविवाहित थे। मोहक नृत्य देखकर उसमें अपने को ऐसा खो बैठे मानो सुरा पी ली हो। सुन्दरियों के कटाक्ष सुरापान के प्रभाव से कम प्रभावकर नहीं होते। राज्यवर्द्धन यह भूल गये कि वह एक दिन शत्रु था जिसके भवन में बैठकर वे सुध-बुध खो बैठे हैं। उन्हें शत्रु के इस सम्मानजनक व्यवहार पर पूरा विश्वास जम गया। इसके पश्चात् ही प्रीति-भोज हुआ। सभी ने सुन्दर-सुन्दर मिष्टान्नों का भोग लगाया। जो रही-सही कमी थी उसकी पूर्ति हो गई और सभी को शशांक की मित्रता पर कोई सन्देह न रहा।

अब शशांक की मुद्रा गम्भीर हुई। उसे अपनी दानव-लीला आरम्भ करनी थी। प्रीतिभोज समाप्त हुआ। सब लोग धीरे-धीरे जाने लगे। राज्यवर्द्धन ने भी विदा माँगी। किन्तु शशांक ने कहा—'श्रीमान् से कुछ परामर्श करना था, यदि कष्ट न हो तो थोड़ा समय और देने की कृपा करें। कल संधिपत्र के अनुसार सैन्यसामग्री अर्पित कर तत्काल स्वदेश जाने की हम लोग तैयारी कर चुके हैं। समय सम्भवतः कम मिलेगा। आगे जैसी श्रीमान् की इच्छा!'

विनीत वचन सुनकर राज्यवर्द्धन का सहज भोलापन जाग उठा। 'अभी कुछ और परामर्श शेष है?'

'हाँ महाराज!' शशांक ने हाथ जोड़कर कहा, 'देश की कुछ राजनीति पर श्रीमान् के विचार जानना चाहता था।'

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

'तो यहीं बैठा जाय ।' राज्यवर्द्धन उठ चुके थे । पुनः अपन आसन पर बैठनें क़ो हुए ।

'नहीं श्रीमान्, कुछ एकान्त वार्ता की इच्छा थी ।' भांडी की ओर देखकर उसने कहा, 'परामर्श गृह में सब तैयारी है । वहीं आपको घड़ी दो घड़ी बैठने में आराम मिलेगा ।'

राज्यवर्द्धन उसके खल वचनों का तथ्य न समझ सके । भांडी को वहीं बैठाकर वे उसके साथ हो लिये ।

भांडी कुछ चतुर था। उन दोनों के जाने के बाद चुपके से पीछे जाकर वह कमरा देख आया जिसमें घुसकर शशांक ने अन्दर से सिटकिनी लगा दी थी । सम्मान में आयोजित प्रीतिभोज में शस्त्र धारण की क्या आवश्यकता है, यह सोचकर राज्यवर्द्धन निःशस्त्र ही वहाँ गये थे । केवल कटार उनकी कमर में थी ।

कमरे में जाकर थोड़ी देर तक शशांक इधर-उधर की बातों में उन्हें उलझाये रहा किन्तु अन्त में ऊबकर राज्यवर्द्धन ने कहा, 'तथ्य पर आइये गौड़ेश ! आपको जिस विषय पर मुख्यतः मुझसे परामर्श लेना है, उसकी चर्चा कीजिये ।' राज्यवर्द्धन का हृदय न जाने क्यों धकधक करने लगा । बायाँ नेत्र फड़क कर किसी अशुभ की सूचना दे रहा था ।

और इसी समय शशांक के मुख पर दानवी नाच उठी । वह कूदकर आसन से नीचे आया और तड़ाक से तलवार निकालकर उसने राज्यवर्द्धन की छाती पर रख दी । 'असली विषय यही था नादान राजकुमार ! तुम अब मेरे पंजे से बचकर नहीं जा सकते ।'

राज्यवर्द्धन की आँखें भयभीत मृग की-सी दीन हो गईं । दुष्ट की मित्रता का परिणाम उन्हें अब ज्ञात हुआ किन्तु दूसरे ही क्षण जरा संभल कर उठ बैठे और अपनी कटार की मूठ पर हाथ रखते हुए बोले; 'ठहर दुष्ट ! मैं तुझे अभी मजा चखाता हूँ ।' किन्तु इसके पूर्व ही शशांक की तलवार ऐसी घूमी कि कटार की मूठ पर रखा राज्यवर्द्धन का हाथ कटकर वहीं अलग हो गया । राज्यवर्द्धन एक बार 'आह' करके चीख उठे ।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

'धोखा, छल, कपट ! दुष्ट, तुझे इस प्रकार मेरा वध करते लज्जा नहीं आती ।' राज्यवर्द्धन मन्त्रबद्ध सर्प की तरह फुफकार रहे थे । बोले, 'यदि तुझमें अपने वल का गर्व हो तो मेरे वांयें हाथ में तलवार देकर देख ! मैं तेरी दुर्गति करता हूँ । निर्लज्ज, नीच ! निहत्थे को मारने की नीति तूने कहाँ से सीखी है ?'

किन्तु उसमें लज्जा होती तब न ? वह निर्लज्ज और नीच तो था ही । आजन्म उसने नीचता के काम किये । उसने तलवार का एक ऐसा वार किया कि वह राज्यवर्द्धन की छाती में घुसकर पार हो गई और राज्यवर्द्धन 'हा दुर्दैव !' कहकर गिर पड़े । क्षणभर में उनके प्राण-पखेरू उड़ गये ।

जब राज्यवर्द्धन के चिल्लाने की कुछ ध्वनि हुई तो भांडी दौड़कर उस कमरे के पास गया और झरोखे से वह दृश्य देखने का प्रयत्न करने लगा किन्तु उस समय तक शशांक अपने हाथ रँग चुका था । भांडी अपने प्राण बचाकर वहाँ से भागा ।

उक्त षड्यन्त्र करने से कुछ समय पूर्व ही शशांक ने अपनी सेनाओं को सतर्क कर दिया था कि आज्ञा पाते ही नगर पर आक्रमण कर दिया जाय । इधर राज्यवर्द्धन का वध किया गया, उधर सैनिक दौड़ाकर नगर पर आक्रमण करने का आदेश भिजवाया गया । सम्मान में अपने साथ लाये घुड़सवारों में से कुछ को नगर की चहारदीवारी के द्वारों पर भेजकर उन्हें खुलवा दिया गया । द्वार-रक्षक निश्चिन्त थे । वे यही जानते थे कि दोनों राज्यों में मित्रता हो चुकी है । अतः वे सतर्क नहीं थे । थोड़े से सवार सैनिकों ने उनको मार-मूरकर द्वार खोल दिये और सेनाएँ अन्दर प्रवेश कर आईं ।

भांडी दौड़ा-दौड़ा अपने शिविर में गया । कुमार राज्यवर्द्धन के दुखद अन्त की कथा सुनकर सारे सैन्याधिकारी रो पड़े । किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गये । इधर शशांक की सेनाओं ने अचानक नगर पर धावा बोल दिया । राज्यवर्द्धन की मत्यु के कारण शोकसन्तप्त उनकी सेनाओं में इतना साहस न रहा कि शत्रु का मुकाबला करतीं । नायक बिना, कितनी भी प्रबल सेना क्यों न हो, युद्ध में सहज ही खदेड़ी जा सकती है । वही स्थिति इस पथभ्रष्ट सेना की हुई । भांडी भी घबरा उठा । सेना का संहार होने से पूर्व ही वह उसे नगर से भगा ले गया । यही उसने कौशल या बहादुरी

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

जो कुछ भी कहें, दिखलाई । शत्रु के पंजे में से अपनी सेना को सकुशल बचाकर दूर भगा ले जाने का उसने कौशल दिखाया ।

बिना प्रयास शत्रु सेना का पुनः नगर पर अधिकार हो गया । मालवा की विजित सेना और थानेश्वर की विशाल वाहिनी के मुख्य-मुख्य सेनानायकों ने अपने प्रधान सेनापति भांडी से कन्नौज रक्षा के लिये शशांक से युद्ध करने का आग्रह किया । भांडी ने गंभीर विचार किया । वह शशांक की कूटनीति जानता था । अपनी प्रबल सैन्यशक्ति का पूरा भरोसा होते हुए भी उसने सम्प्रति कुछ न करने का निश्चय किया और सेनानायकों को यही सान्त्वना दी कि कन्नौज पर विजय करते कितनी देर लगेगी ! महाराज हर्षवर्द्धन से परामर्श करने के बाद ही उनके आदेश से कोई कार्य करना उचित होगा । इन धूर्तों से भिड़ने से पूर्व एक निश्चित योजना बनाना आवश्यक है । भांडी ने अश्वारोही सेना के नायक कुंतल को समस्त दुःसंवादों के साथ थानेश्वर भेजा ।

—:०:—

: १६ :

हर्ष का राज्याभिषेक

कई दिन बीत चुके थे । हर्ष यह संवाद सुनने के लिये उतावले हो रहे थे कि उनके भाई महाराजा राज्यवर्द्धन ने दुष्ट शशांक और देवगुप्त को अपनी करनियों का दंड देकर उनकी सेनाओं को मार-मार कर बुरी तरह भगा दिया । इसकी प्रतीक्षा में वे एक-एक पल कठिनता से बिता रहे थे, कि पाँचवें दिन अश्वसेना-नायक कुंतल के दुःसंवाद ने उन पर ऐसा वज्रप्रहार किया कि वे पछाड़ खा कर गिर पड़े ।

कुंतल ने बताया—'महाराज राज्यवर्द्धन ने उसी प्रकार सुगमता से दुष्ट शत्रुओं को पराजित कर उनकी सेनाओं पर अपना अधिकार कर लिया जैसे कोई सिंह शावक किसी मृगसमूह पर । किन्तु विजय के आनन्दोत्सव पर अपने भवन

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

में बुलाकर नराधम गौड़ाधिपति शशांक ने उन्हें निशस्त्र पाकर मार डाला, उनका वध कर दिया।

मूर्च्छा भंग होने पर भी हर्ष क्रोध एवं दुःख से पागल हो रहे थे। विपत्तियों के पहाड़ टूट पड़ने से उनका धैर्य छूट रहा था। माँ चल बसीं, पिताजी का स्वर्ग-वास हुआ। थानेश्वर अनाथ हुआ। फिर स्नेहमयी प्यारी बहन का इस छोटी आयु में सुहाग छिना। बेचारी को अभी छः मास भी विवाह किये नहीं हुए थे। और तब उसके बड़े भाई वनगमन का हठ पकड़ कर बैठ गये। किसी प्रकार उनसे वह हठ छुड़वाया गया तो युद्ध सामने आ खड़ा हुआ। युद्ध पर विजय की गई, किन्तु बड़े भाई की अकाल मृत्यु ने आखिर उन्हें धर ही दबोचा। अपने जीवन की सभी गाथाएँ स्मरण कर हर्ष का धैर्य टूट रहा था। किन्तु सेनापतियों ने बहुत उपदेश दिये, समझाया-बुझाया। कहा कि राजनीति में बड़ी से बड़ी कठिनाइयाँ भोगने के लिये तैयार रहना पड़ता है। इन विपत्तियों से आपके अनुभव बढ़ेंगे। संघर्षमय जीवन ही मनुष्य को महान् बनाता है।

राज्य के वयोवृद्ध प्रधान सेनापति सिंहनाद ने भी हर्ष को बहुत उपदेश दिया। महाराज प्रभाकरवर्द्धन उन्हें सेनापति होने के साथ-साथ अपना मित्र भी मानते थे। उन्हीं सेनापति की सहायता से प्रभाकरवर्द्धन ने बड़े-बड़े युद्धों में विजय प्राप्त की थी।

उन्होंने हर्ष को कर्त्तव्यपालन का उपदेश देने के साथ-साथ युद्ध की उत्तेजना भी दी। 'कहा—विश्व में महानता का राज्यमुकुट उसी के सिर पर पहनाया जाता है जो महान से महान विपत्तियाँ आने पर भी उन्हें तृणमात्र समझकर अपने लक्ष्य की ओर निरन्तर बढ़ता रहे। शत्रु ने धूर्तता द्वारा आपके बड़े भाई महाराज राज्य-वर्द्धन का एकान्त में वध किया, उसका पूरी तरह बदला लेना आपका प्रथम कर्त्तव्य है। बहन राज्यश्री को भी इन्हीं दुष्टों ने विधवा बना छोड़ा। इस समय शोक करने का अवसर नहीं। समय शस्त्र पकड़ कर शत्रु को दंड देने का है। निरन्तर विपत्तियों की बाढ़ आने से राज्य की जनता दुखी एवं अशान्त हो उठी है। अराज-कता एवं उपद्रव भी फैल सकते हैं। शासन की बागडोर अपने हाथ में लेकर शान्ति एवं व्यवस्था स्थापित करना राजपुत्र का प्रथम कर्त्तव्य है।'

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

जो राजपुत्र अपने भ्रातृहन्ता एवं बहन के सुहाग पर आक्रमण करनेवाले दुष्ट को चुपचाप बैठे देखता रहता है, संसार में उस जैसा नराधम और कोई नहीं। अब न केवल शशांक को दंड देने की आवश्यकता है वरन् पृथ्वी के संपूर्ण थानेश्वर-विरोधी राजाओं को अपने बाहुबल से पराजित करने का समय आ चुका है। आपकी उत्पत्ति के समय ज्योतिषियों ने भविष्यवाणी की थी कि आप उत्तरी भारत के सम्राट् होंगे। आप चक्रवर्ती लक्षणों से युक्त हैं। अब वह समय सामने है जब आपके हाथों एक महान साम्राज्य की स्थापना होगी। आप उठें और दिग्विजय कर शत्रु को पराजित करें।

सेनापति का उपदेश और उत्तेजना ने हर्ष की क्रोधाग्नि में घृत का काम किया। उन्होंने दरबार में खड़े होकर प्रतिज्ञा की—'मैं अपने राज्यपिता की चरण-रज की सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि यदि कुछ इने-गिने दिनों के भीतर पृथ्वी को गौड़ों से रहित न कर दूंगा और समस्त उद्धत राजाओं के चरणों में बेड़ियाँ डालकर उन्हें नतमस्तक होने के लिये बाध्य न कर दूंगा तो पतंगे की तरह अपना जीवन धधकती हुई आग में स्वाहा कर दूंगा।'

उस भीषण प्रतिज्ञा के अनुसार उन्होंने अपनी एक घोषणा प्रसारित की—'हिमाचल से कन्याकुमारी तक, पूर्वी समुद्र से पश्चिमी समुद्र तक सभी राजाओं को थानेश्वर राज्य को कर देने अथवा शस्त्र धारण करने के लिये तैयार हो जाना चाहिये।'

इधर ज्योंही महाराज राज्यवर्द्धन की मत्यु का समाचार सुना गया, सर्वत्र हाहाकार एवं त्राहि-त्राहि मच गई। जनता अनाथ हो विलाप-प्रलाप करने लगी। सभी अपने दुर्भाग्य को कोस-कोसकर माथा पीट रहे थे। देवगुप्त और शशांक को यत्र-तत्र गालियाँ दी जा रही थीं—'इन दुष्टों ने थानेश्वर और कन्नौज को बरबाद कर दिया। जिन माताओं ने इन दुष्टों को जन्म दिया होगा, वे न जाने कितनी कुपुत्रिणी होंगी। शक्ति थी तो युद्ध में दो हाथ करते। अकेले में निरस्त्र पाकर किसी की हत्या कर देना कौन-सी बहादुरी है? पापी, नराधम, नीच!'

रोती-पीटती जनता राज्यभवन की ओर दौड़ पड़ी। अब राजकुमार हर्ष के अतिरिक्त उनका पालन करने वाला और था भी कौन? असंख्य जनसमूह

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

ने तुमुल निनाद किया—'महाराज हर्ष की जय ! महाराज सिंहासन संभालें ! थानेश्वर अनाथ हो चुका है । यदि महाराज हर्षवर्द्धन हमपर अनुग्रह न करेंगे तो हम लोग अनाथोंकी-सी ठोकरें खाते फिरेंगे ।'

प्रजा की पुकार सुनकर मंत्रियों सहित हर्षवर्द्धन राजभवन के छज्जे पर आये । सारी जनता पुनः उनकी जय-जयकार कर उठी । हर्ष ने उन्हें प्रणाम किया और पूछा—'आप लोग क्या चाहते हैं ?'

'महाराज का शासन ! आपके बिना राज्याधिकार संभालने वाला कोई भी नहीं रहा । आप अपने बल, पौरुष, शौर्य सबमें सर्वथा योग्य हैं । प्रजा के संरक्षण का भार वहन कर इस अनाथ हो रही जनता को सनाथ कीजिये प्रभु !' जनसमूह में से आगे बढ़कर कुछ मुखियों ने हाथ जोड़कर प्रार्थना की ।

'यह सारे जनसमूह की माँग है या केवल आप लोगों की ?' हर्ष ने पूछा ।

'नहीं महाराज ! यह सारा जनसमूह ही नहीं, समस्त प्रजा आपको सिंहासनारूढ़ देखना चाहती है ।'

मुखिया का इतना कहना था कि सारी जनता एक स्वर से चिल्ला पड़ी—'हाँ महाराज ! हम सभी आपका शासन चाहते हैं ।' महाराज हर्षवर्द्धन की जय के नारों से उन्होंने आकाश गुंजा दिया ।

हर्ष ने उन्हें आश्वासन दिया—'जनता की आज्ञा का मैं पालन करूँगा । आप लोग शान्त होकर अपने-अपने घर लौटें । मैं आश्वासन देता हूँ कि देश में सर्वत्र शान्ति, सुव्यवस्था एवं सुशासन स्थापित करने के लिये पूरा प्रयत्न करूँगा ।'

जनता का अपार समूह आश्वासन पाकर जय-जयकार करता प्रसन्नतापूर्वक वहाँ से चला गया । मंत्रियों ने हर्ष को परामर्श दिया कि शीघ्र राज्याभिषेक होना आवश्यक है । हर्ष इसके विरोधी थे । वे चाहते थे कि प्रथम भ्रातृहन्ता शशांक का विनाश कर तभी गद्दी ग्रहण करें, किन्तु सभी मंत्रियों एवं वृद्ध सेनापति सिंहनाद ने भी विनयपूर्वक समझाया कि 'महाराज ! सिंहासन का अधिक दिन खाली रहना उचित नहीं होता । महाराज प्रभाकरवर्द्धन के देहान्त को बहुत दिन व्यतीत हो चुके हैं । तब से सिंहासन सूना पड़ा है । सिंहासन रिक्त रहने से जनता ही नहीं, राज्यकर्मचारियों तक में संकल्प-विकल्प एवं अशान्ति उत्पन्न होने का भय

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

बना रहता है। शीघ्रता का मुहूर्त्त निकाल कर राज्याभिषेक हो जाना चाहिये। इससे श्रीमान को देश में शान्ति स्थापित करने में सहायता मिलेगी। सिंहासनारूढ़ होने के बाद महाराज एक साथ दिग्विजय के लिये प्रस्थान करें और उसीमें शशांक को भी आड़े हाथों लें।'

वृद्ध सेनापति का परामर्श कुमार हर्ष के लिये आज्ञा के समान हुआ करता। समस्त मंत्रियों की भी यही इच्छा जानकर कुमार ने स्वीकृति दे दी। बस, तब क्या था! तत्काल ज्योतिषियों को बुलाया गया। उन्होंने निकट भविष्य का ही एक सर्वोत्तम मुहूर्त्त निकाल दिया।

मुहूर्त्त का निकलना था कि तैयारियाँ जोरों से आरम्भ हो गईं। राज्याभिषेक का संवाद विद्युद्वेग से सारे नगर में व्याप्त हो गया। जनता आनन्द से उछल पड़ी। महाराज प्रभाकरवर्द्धन की मत्यु और राज्यश्री के पति ग्रहवर्मन एवं ज्येष्ठ भ्राता राज्यवर्द्धन के वध का अनन्त दुःख भी इस अपार आनन्द में विलीन हो गया। सभी इस नये आनन्द में उन्मत्त हो नाच उठे। गली-गली, बाजार-बांजार, प्रत्येक मकान, तथा भवन की सजावट आरम्भ हो गई। घर-घर चौक पूरे जानेलगे। घर-बाहर सफाइयाँ होने लगीं। प्रभाकरवर्द्धन आदि के शोक में बहुत दिनों से किसी ने घर में झाड़ू-बुहारू तक न की थी। अब सभी ने अपने-अपने मकान झाड़-बुहार कर एवं चूना छुआ कर साफ सुथरे कर लिये। दीपावली के पावन पर्व की तरह प्रत्येक परिवार अपने-अपने घरोंकी सजावट में लग गया। सारा नगर नये उत्साह और नई उमंगों में दिखलाई पड़ रहा था।

राज्य प्रबन्धकों की ओर से भी नगर की सजावट की गई। प्रत्येक राजकीय अट्टालिका को सुन्दर ढंग से सजाने का काम सैकड़ों कारीगरों को सौंपा गया। नगर में यत्र-तत्र सुन्दर द्वार महाराज की शोभायात्रा के स्वागत के लिये बनाये जाने का आदेश जारी हुआ। सारे नगर में चहल-पहल का प्रबल दौर-दौरा आरम्भ हो गया। सजावट के सामानों, फूल-पत्तियों, झंडी, रंग, चूना, वस्त्र, तरह-तरह की वस्तुओं को खरीदने के लिये जनसमूह बाजारों में उमड़ पड़ा था। सबसे अधिक बिक्री मालियों की फूल-पत्तियों की हुई। पुष्पों का अभाव-सा हो गया। पुष्पों से हीन सभी बाग-बगीचे ऐसे रुंडमुंड लग

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

रहे थे मानो राज्यवर्द्धन की मत्यु के वाद उनके सिरों का मुंडन कर दिया गया हो।

राजभवन की अट्टालिकाएँ सजाने में तो कारीगरों ने कमाल ही कर दिया था। उस सजावट को देख-देखकर स्वयं कारीगर ही अपनी कारीगरी पर मुग्ध होते जा रहे थे। जीवन भर में उन्होंने अपने 'उस्तादों' से जो कुछ सीखा था, वह सब आज अट्टालिकाओं की सजावट में लगा दिया। अपनी कारीगरी की सम्पूर्ण शक्ति राजभवनों की सजावट में उन्होंने उंडेल दी थी। तव भी भला उनकी जोड़ में कोई मस्तक ऊँचा करने आ पाता ? इसीलिये तो वे अपनी सौन्दर्य, शोभा और छटा में अद्वितीय एवं अजेय थीं।

ये दिन यों ही चुटकी वजाते बीत गये। इस अल्प समय में भी मंत्रियों ने राज्याभिषेक की जो शानदार तैयारी कर डाली, वह सम्भवतः महीनों तक निरन्तर परिश्रम करने पर भी न पूरी हो पाती। किन्तु यह राज्यकर्मचारियों एवं जनता की लगन का सुफल था। राज्यवर्द्धन की मत्यु के वाद भी इस प्रकार का प्रवल समारोह इसलिये किया गया कि जनता के हृदय की अशान्ति एवं शोक-दुःख का लेश मात्र न रहे। प्रंजा में अशान्ति रहते व्यवस्था एवं सुशासन स्थापित करने में सुविधा नहीं हो सकती। यद्यपि भ्रातृप्रेम के कारण हर्षवर्द्धन की इच्छा नहीं थी कि राज्याभिषेक का अपूर्व समारोह किया जाय, किन्तु मंत्रिगण जानते थे कि सिंहासनारूढ़ होने के वाद ही हर्ष को दिग्विजय की यात्रा करनी पड़ेगी और इससे राजधानी में वर्षों तक उनकी अनुपस्थिति रह सकती है। अतः जनता के हृदय में तनिक भी अशान्ति रख छोड़ना उन्हें अभीष्ट न था। इसलिये समारोह में शक्तिभर माधुर्य-सौन्दर्य लाने की उन्होंने पूरी चेष्टाएँ कीं।

मुहुर्त्तानुसार निश्चित दिन राज्याभिषेकोत्सव का कार्यक्रम आरम्भ हुआ। राजभवन के एक विशाल प्रांगण में वड़े-वड़े पण्डाल लगाये गये थे। पंडालों में स्त्रियों, पुरुषों, नगर के प्रतिष्ठित जनों, छोटे-वड़े राजकर्मचारियों के वैठने का सुन्दर प्रवन्ध किया गया था। इस प्रवन्ध में हर्ष के मामा कुमारगुप्त और माधवगुप्त ने विशेष सहयोग दिया। ये दोनों आयु में हर्ष से कुछ ही वड़े थे। वास्तव में अभिषेकोत्सव के सुप्रवन्ध का सम्पूर्ण श्रेय इन्हीं दोनों को था। ये दोनों कला एवं

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

कारीगरी के विशेषज्ञ थे। इनके प्रयास से नगर एवं राजभवनों की ऐसी सुन्दर सजावट की गई मानो स्वयं विश्वकर्मा ने रात्रि में चुपके से आ-आकर सजावट का काम कर दिया हो। सभी लोग इस कुमार-द्वय की कारीगरी पर चकित थे। एक-एक पंडाल, एक-एक सभास्थल अलग-अलग विचित्र नमूनों में सजा हुआ था। जनता देख-देखकर मुग्ध थी। हर्ष की ओर कौन देखता? सभी सजावट देखने में ही निहाल हुए जा रहे थे।

यथा समय अभिषेक-कार्य आरम्भ हुआ। वैदिक मंत्रों एवं मंगलाचार से पंडाल गूँज उठा। अभिषेक कार्य के लिये काशी से निमंत्रित विद्वान ब्राह्मणों के अतिरिक्त एक सहस्र थानेश्वर के ब्राह्मण नियुक्त थे। बड़े ही शान्तिमय ढंग से अभिषेक होने लगा। सभी शास्त्रीय कृत्य लगभग दो घंटे में सम्पन्न हुआ। अब पुरोहित ने महाराज हर्षवर्द्धन को सिंहासन पर बैठाया। मणि-माणक्य एवं रत्नों से जटित सुवर्ण सिंहासन पर विराजमान महाराज हर्षवर्द्धन इन्द्र की तरह शोभायमान हो रहे थे। सभी प्रजा महाराज की जय-जयकार से आकाश गुँजाने लगी। सिंहासन पर बैठने के बाद राजतिलक हुआ। तदुपरान्त पुरोहित ने महाराज के दाहिने हाथ में राजदंड दिया और कहा—'इसी राजदंड द्वारा आप प्रजा का संरक्षण करने में समर्थ होंगे।'

राजा ने विद्वान ब्राह्मणों को सहस्र-सहस्र मुद्राएँ एवं बहुमूल्य वस्त्र दक्षिणा में दिये। ब्राह्मणों को पूर्ण सन्तुष्ट देख कर महाराज बहुत प्रसन्न हुए और उनका चरण स्पर्श कर अखंड साम्राज्य स्थापना का आशीर्वाद ग्रहण किया।

अभिषेक की सविधि समाप्ति के बाद महाराज हर्ष ने खड़े होकर जनता को सन्देश दिया—'आप लोगों की प्रबल इच्छा के कारण मैंने राज्यभार वहन करने का कठिन दायित्व अपने ऊपर लिया है। अब इसे निभाने का भार आप सब पर है। कोई भी राज्य जनता के पूर्ण सहयोग द्वारा ही समृद्धि एवं समुन्नति करने में समर्थ हो सकता है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि जिस जनता ने आग्रहपूर्वक मुझे सिंहासनारूढ़ देखने की इच्छा प्रकट की है, वह मेरे प्रत्येक कार्य में पूर्ण सहयोग भी देगी। जहाँ जनता का पुत्रवत् पालन करना और उसकी सुखशान्ति के लिये अहर्निश प्रयत्न करते रहना राजा का परम कर्त्तव्य है, वहीं प्रजा का भी धर्म है कि वह राजा के साथ पूर्ण

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

सहयोग एवं आवश्यकता पड़ने पर उसे सब प्रकार की सहायता देने के लिये कृतसंकल्प रहे। तभी देश में सुख-शान्ति एवं सुव्यवस्था स्थापित हो सकती है। जनता एवं राजा के विचार-सामंजस्य का ही सुफल सुखशान्ति की स्थापना है। मुझे आप लोग आशीर्वाद दें कि मैंने जो कठिन दायित्व वहन किया है, उसे निभा पाने में पूर्ण समर्थ होऊँ।'

राजा का विद्वत्तापूर्ण संभाषण सुनकर प्रजा गद्‌गद हो उठी। इसके सेनापति सिंहनाद, महामंत्री शत्रुमर्दन, सेनापति स्कन्दगुप्त आदि राज्याधिकारियों तथा कुछ प्रतिष्ठित जन-प्रतिनिधि नागरिकों ने अपने संक्षिप्त भाषण देकर महाराज को पूर्ण सहयोग देने का आश्वासन एवं विश्वास दिलाया और तब बड़े समारोह के साथ अभिषेकोत्सव की समाप्ति घोषित की गई।

——:०:——

: १७ :

दिग्विजय के लिये प्रस्थान

षोडश-वर्षीय नवयुवक राजकुमार हर्षवर्द्धन अब महाराज हर्षवर्द्धन के रूप में प्रकट हुए। इस छोटी-सी आयु ही में उन पर इतने बड़े साम्राज्य का महान दायित्व आ पड़ा। थानेश्वर के अतिरिक्त पूर्व में मगध तक फैले हुए मौखरि राज्य के शासन-संचालन का भार भी उन्हीं पर आ चुका था। हर्ष के सिंहासनारोहण के समय देश की स्थिति बहुत अशान्त थी। पूर्व में गौड़नरेश शशांक जैसे दुष्ट तथा कूटनीति-विशारद राजा एवं दक्षिण में पुलकेशी महान, पश्चिम में हूणों की शक्ति, इन सबकी दृष्टि उत्तर भारत पर लगी हुई थी। देवगुप्त की मृत्यु से मालवा का सिंहासन भी रिक्त पड़ा था। उसकी व्यवस्था भी हर्ष को करनी थी। ऐसी संकटापन्न परि-स्थितियों में महान धैर्य, अद्भुत साहस और तीक्ष्ण बुद्धि द्वारा अल्पकाल में ही शान्ति-व्यवस्था स्थापित कर दिखलाना असाधारण कार्य था, जिसे हर्ष जैसे नवयुवक ने सम्पन्न कर दिखलाया। हर्ष की महान शक्ति का परिचय यहीं मिल जाता है।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

उत्तरी भारत के खंडों में विभक्त तथा अव्यवस्थित व्यक्तियों को एक सूत्र में बाँध कर एक महान साम्राज्य का शासन सूत्र संभालना और उसे योग्यतापूर्वक संचालित करना हर्ष जैसे महापुरुष से ही सम्भव था।

राज्याभिषेक के तत्काल बाद ही अपनी इच्छानुसार उन्हें दिग्विजय की धुन सवार हो गई और उन्होंने अपने सेनापतियों को तत्काल प्रस्थान की तैयारियाँ करने के आदेश दिये। सेनापति तो इस आदेश की बाट ही देख रहे थे। तत्क्षण सैन्य-शिविरों में हलचल मच गई। अश्वों की एक बहुत बड़ी सेना राज्यवर्द्धन कन्नौज की ओर ले गये थे जो उनकी मृत्यु के बाद भांडी के नेतृत्व में वहीं पड़ाव डाले पड़ी थी। शेष बची पैदल सेना और गजवाहिनी। उन्हें तैयार किया गया। नगर रक्षा का भार महामंत्री की सहायता से कुमार एवं माधवगुप्त को सौंपा गया। ये दोनों हर्ष के अत्यन्त स्नेही और विश्वासपात्र थे। सेनापति सिंहनाद का साथ रहना इसलिये आवश्यक था कि युद्ध की कूटनीति से हर्ष अभी अनभिज्ञ थे। बड़े-बड़े युद्धों के विजेता वृद्ध सेनापति सिंहनाद की रग-रग में राजनीतिक चालें भरी पड़ी थीं। उसके बिना तो दिग्विजय में हर्ष को महान कठिनाइयों का सामना करना पड़ता।

प्रस्थान की घोषणा हो जाने पर एक दिन दरबार में गजसेना के वयोवृद्ध सेनापति स्कन्दगुप्त ने महाराज हर्ष को एक बहुमूल्य राजनीतिक शिक्षा दी। उन्होंने कहा—'प्राचीन इतिहास के बड़े-बड़े राजाओं को रणक्षेत्र में इसलिये पराजय का मुंह देखना पड़ा कि वे अत्यन्त सरल हृदय एवं भावुक थे। राजा की भावुकता एवं सरलता की एक सीमा होनी चाहिये। जिनका प्रयोग वह युद्ध क्षेत्र के अतिरिक्त ही करे। युद्ध में बड़ी-बड़ी कूटनीतिक चालों से प्रतिक्षण खेलना पड़ता है। कूटनीति और सरलता में परस्पर उसी प्रकार वैरभाव है जैसे सर्प और मेंढक में, सिंह तथा मृग में एवं बिलाव और मूषक में। युद्ध में पराजय का एकमात्र कारण है हृदय में सरलता और किसी पर सहज ही विश्वास कर बैठना।

'आप दिग्विजय के लिये प्रस्थान कर रहे हैं। आप को विभिन्न देशों का भ्रमण करना पड़ेगा। किन्तु इतना स्मरण रहे कि गाँव-गाँव, नगर-नगर, प्रान्त-प्रान्त तथा देश-देश के आचार, स्वभाव, प्रकृतियाँ भिन्न-भिन्न होती हैं। सभी से एक-सा

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

बर्ताव करना दिग्विजयी राजा के लिये घातक सिद्ध होता है। उसे बड़ी ही संतुलित बुद्धि से उनके मनोभाव पहचान कर तदनुकूल व्यवहार करना चाहिये। तभी वे वश में आ सकते हैं। केवल सैन्यबल से किसी राज्यपर आधिपत्य कर लेने से ही विजय-कार्य सम्पूर्ण नहीं हो जाता। वहाँ की प्रजा, जन-जन के हृदय साम्राज्य पर विजय करने से वह राज्य स्थिर होता है। हमारे थानेश्वर के लोग बहुत सरल हैं। सत्यप्रिय, धर्मनिष्ठ हैं। इसलिये सहज ही किसी पर विश्वास कर बैठते हैं। आपको इसके विपरीत आचरण करना होगा। सब पर संदिग्ध दृष्टि रखनी होगी। युद्ध विजय का सबसे महान साधन यही है।'

वृद्ध सेनापति का उपदेश बहुमूल्य था। हर्ष ने उसे गाँठ बांध लिया। ज्योतिषियों की गणना के अनुसार मुहूर्त्त निकल चुका था। प्रस्थान के लिये सरस्वती नदी के तट पर स्थित विशाल मैदान में एक सुन्दर पर्णशाला बनाई गई थी। यहीं से प्रस्थान आरम्भ करना था। प्रस्थान समारोह बड़ी ही धूमधाम से मनाया गया। सारी जनता समारोह देखने नदी तट पर उमड़ पड़ी, मानो कोई स्नान-पर्व हो।

पर्णकुटी के पास एक ऊँचा भव्य मंच बनाया गया था। इसी पर हर्ष बैठे थे। सर्वप्रथम वैदिक ब्राह्मणों ने मंगलाचरण किया। शंखध्वनि से आकाश गूंज उठा। सैनिकों के हृदय में उत्साह और जोश उमड़ पड़ा। बड़े ही सम्मान के साथ थानेश्वर के राजध्वज का आरोहण किया गया। पीतध्वज आकाश में लहरा-लहरा कर सैनिकों के हृदयों में उल्लास उत्पन्न कर रहा था। ध्वजारोहण के बाद विभिन्न सैनिक-दलों ने कवायद आरम्भ की। वाद्यध्वनि के साथ-साथ सैनिकों की कवायद जनता को अत्यधिक पसन्द आई। कवायद द्वारा ही सैनिकों ने ध्वज को सैनिक-विधि से अभिवादन किया और तब यह कार्यक्रम सम्पन्न हुआ।

तत्पश्चात् सेनापति का तिलक हुआ। वृद्ध सेनापति सिंहनाद के शुभ्र केशों पर लौह निर्मित सुन्दर मुकुट ऐसा सज रहा था कि रत्नजटित सुवर्णमुकुट भी उसके सामने मात हो जाता। सेनापति के माथे पर ब्राह्मणों ने तिलक लगाया और सबके बाद गगनव्यापी शंख घोषों के बीच ब्राह्मणों ने महाराज हर्षवर्द्धन को दिग्विजय के शस्त्र पहनाये। सूर्योदय का समय था। उस समय महाराज उसी प्रकार

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

शोभायमान हो रहे थे मानो बालरवि संसार में अपने प्रचंड तेज एवं प्रबल प्रताप से दिग्विजय करने जा रहा हो। महान कोलाहल और जय-जयकार की तुमुल ध्वनियों के बीच शुभ घड़ी में महाराज हर्षवर्द्धन के महावत ने हाथी को अंकुश मार कर प्रस्थान का मुहूर्त्त किया। हाथियों की विशाल वाहिनी और सैनिकों के असंख्य समूह उमड़ते-गरजते वर्षाकालिक काले-काले भयानक मेघों की तरह बढ़े चले जा रहे थे।

महाराज हर्षवर्द्धन की विशाल वाहिनी न केवल युद्ध की सम्पूर्ण सामग्रियों से परिपूर्ण थी वरन् मनुष्योपयोगी समस्त वस्तुओं से सुसज्जित थी। ऐसा लगता मानो बाजार-हाटों से सज्जित कोई विशाल नगर ही यात्रा करने चल पड़ा हो। सेना में भोजन की व्यवस्था के लिये बड़े-बड़े भंडार साथ में चल रहे थे। जिनमें यथायोग्य सामन्तों, राज्याधिकारियों के लिये उत्तमोत्तम भोजन की व्यवस्था होती रही। यत्रतत्र तीर्थस्थानों में दानादि के लिये तथा विजित प्रदेशों में जनता को प्रसन्न करने के लिये राज्य के कोष का एक बहुत बड़ा भाग भी सुसज्जित और सुरक्षित ढंग से ले जाया जा रहा था, जिसे राजा के निजी सैनिक दल घेर कर रक्षा करते ले जा रहे थे। राज्याधिकारियों, सामन्तों, मंत्रियों आदि के कुल कुटुम्ब-परिवार भी साथ में थे। वर्षों की यात्रा थी, कुल-कुटुम्ब का साथ रहना आवश्यक था। इसके अतिरिक्त सेना में सुख-वैभव एवं विलास-भोग की सामग्रियों का भी बाहुल्य था।

महाराज की सेना का यह विशाल नगर एक दिन में आठ कोस आगे सरकता था। उस दिन प्रथम दिन की यात्रा समाप्त हुई। प्रस्थान के कुछ दिन पूर्व दिग्विजय के सम्बन्ध में प्रसारित की गई घोषणा सारे भारत में फैल चुकी थी। सभी राजा-महाराजा महाराज प्रभाकरवर्द्धन की सैन्य-शक्ति से परिचित थे। अब कन्नौज की शक्ति भी थानेश्वर से जा मिली थी। इसलिये राजाओं के लिये हर्ष की घोषणा और भी भय का कारण बनी। बहुत से राजाओं ने घोषणा के अनुसार हर्ष की अधीनता स्वीकार करने का निश्चय कर लिया। सर्वप्रथम दूरदेश आसाम के राजा भास्करवर्मा ने इस घोषणा का स्वागत किया और बहुत से उपहारों के साथ अपना दूत हर्षवर्द्धन की सेवा में भेज दिया।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

उसी दिन भास्करवर्मा का हंसवेग नामक वह दूत वहाँ पहुँचा। शिविर-रक्षक सेवक ने महाराज हर्षवर्द्धन को इसकी सूचना दी। उन्होंने उसे अन्दर ले आने की अनुमति दे दी।

दूत ने अन्दर आकर महाराज को अत्यन्त नम्रता पूर्वक झुककर प्रणाम किया। उसने अपने स्वामी का सन्देश पढ़ा—"उत्तरी भारत के महामान्य सम्राट् स्वनाम-धन्य महाराजाधिराज हर्षवर्द्धन की चरणसेवा में रहकर ही मैं इस छोटे से राज्य की प्रजा का पालन करने योग्य हूँ। भला मुझमें कहाँ शक्ति है जो श्रीमान् के विरुद्ध शस्त्र ग्रहण करने की धृष्टता करूँ। श्रीमान् की घोषणा के अनुसार मैं सदैव निर्धारित कर देते रहकर महाराज की अधीनता में शासनकार्य करूँगा। महाराज सेवा में भेजी गई यह तुच्छ उपहार-सामग्री स्वीकार करने की अनन्त कृपा करेंगे।

विनीत—

भास्करवर्मा।"

भास्करवर्मा के विनीत वचनों से हर्षवर्द्धन बहुत प्रसन्न हुए और उपहार-भेंट स्वीकार कर ली। संकेत पाकर सेवकों ने उसे कोषागार में भिजवा दिया। हर्ष-वर्द्धन की अधीनता स्वीकार करने वाला यह प्रथम नरेश था। इससे मैत्री सम्बन्ध स्थापितकर हर्ष को बहुत बड़ा लाभ हुआ। आसाम और मगध के बीच ही गौड़देश (बंगाल) पड़ता था। मगध हर्ष के अधीन था ही। आसाम की मित्रता से गौड़ा-धिपति शशांक को पराजित करने के लिये बहुत सुविधा हो गई।

प्रातःकाल पुनः सैन्यनगर ने प्रस्थान किया। इसी प्रकार प्रति आठ कोस पर रुकते और फिर आगे बढ़ते सेना को कई दिन बीत गये। एक दिन अचानक सामने से आती एक विशाल वाहिनी द्वारा उठती आकाश में फैली धूल दिखाई दी। सेनापति सशंक हो गये। सभी सैनिकों ने कमर कस ली। प्रथम बार शत्रु से दो-दो हाथ करने का शुभ अवसर था। सभी कोलाहल करने लगे। किन्तु हर्षवर्द्धन को विश्वास न था कि वह शत्रु सेना है। वह जानते थे कि बहुत दिन तक प्रतीक्षा करने के बाद भांडी सम्पूर्ण सेना के साथ वापस लौट रहा है। फिर भी उन्होंने

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

गुप्तचरों को तीव्रगामी घोड़ों पर पता लगाने के लिये दौड़ाया। गुप्तचर दौड़े गये तो देखकर बहुत हँसे। वह तो उनकी अपनी सेना थी। हर्ष का अनुमान सत्य निकला। बड़े सम्मान के साथ भांडी को हर्ष के पास लाया गया। दोनों भाई गले मिलकर गद्‌गद हो गये। किन्तु दूसरे ही क्षण उस समय वातावरण करुणाजनक हो गया जब भांडी ने उनके बड़े भाई राज्यवर्द्धन की निर्मम हत्या और मालवसेना के अधिकारियों द्वारा ग्रहवर्मा के वध का आँखों देखा वर्णन करना आरम्भ किया।

जब उसने बताया कि किस प्रकार शशांक धोखा देकर मीठी-मीठी विश्वास-भरी बातों में फुसलाकर महाराज राज्यवर्द्धन को एकान्त भवन में ले गया, किस प्रकार झूठे सम्मान का प्रलोभन देकर उन्हें अपने लाक्षागृह में फँसाने का उसने जाल रचा और किस प्रकार उस नराधम, नीच ने उनका निर्मम वध कर डाला, तो उपस्थित मंत्रिगण और राज्यकर्मचारी तथा सेवक मंडली की आँखों में आँसू भर आये। इस दुःखमयी गाथा को सुनकर महाराज हर्षवर्द्धन की तो सिसकियाँ छूट पड़ीं। अपने भ्राता की इस दर्दनाक मृत्यु से उनके हृदय पर गहरी चोट लगी थी। अब उसका विस्तृत विवरण सुनकर उनके हृदय के घाव नये हो गये।

भांडी के मुख से यह सुनकर कि कमरे में बन्द किए जाकर शशांक द्वारा निर्दयतापूर्ण शस्त्र प्रहार होते समय राज्यवर्द्धन मन्त्रवद्ध सर्पकी तरह दीन एवं क्रोध भरे शब्दोंमें चिल्ला रहे थे और मुख से 'नीच, नराधम, पापी, धोखा देकर निःशस्त्र शत्रु का वध करना कहाँ से सीखा है', आदि वचन जोर-जोर से बोल रहे थे—हर्षवर्द्धन क्रोधोद्वेग से इस प्रकार भर गये कि उनके माथे पर बाल पड़ गये। भौहें तन गईं। आँखें लाल हो उठीं। हृदय क्रोध से भर उठा।

वे बोले,'नीच ने तनिक यह भी न सोचा कि एक निहत्थे व्यक्ति को इस प्रकार मारकर वह संसार में किसी को मुंह दिखाने योग्य न रहेगा। उसके नाम पर कलंक की अमिट कालिमा लग जायगी। दुष्ट ने यह न जाना कि महाराज राज्यवर्द्धन का वध कर वह अपने सर्वनाश की स्वयं तैयारी कर रहा है। मैं उसको इस पाप का वह मजा चखाऊँगा कि सात जन्म तक भूल न पायेगा। सम्पूर्ण कुल सहित उसका विनाश न कर दूँ तो मैं अपने पिता की सन्तान न कहलाऊँ। जो भी अधम से अधम पाप हो, उसका मैं भागी बनूँ।'

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

बड़ी देर बाद उनका क्रोध कुछ शान्त हुआ। तब उन्होंने ग्रहवर्मा के वध के सम्बन्ध में प्रश्न किये। यह भी बड़ा करुण प्रसंग था। किन्तु हत्यारे देवगुप्त की बड़े भाई राज्यवर्द्धन द्वारा युद्ध में मृत्यु हो जाने का संवाद सुनकर उन्हें कुछ सन्तोष हुआ।

एक मालव सेनाधिपति ने उन्हें बताया कि शशांक की आज्ञा से केशों से घसीट कर वे किस प्रकार कारागार में ले जाये गये और उन्हें क्या-क्या दारुण यातनाएँ दीं गईं। यह सुनकर तो उनका क्रोध और उबल पड़ा। वे बोले, 'मैं अवश्य उस नीच शशांक का विनाश करूँगा।'

उन्होंने पूछा—'क्या अब भी राजकुमारी उसी कठोर कारागार में बन्द है?'

भांडी ने बताया 'गुप्त मार्ग से निकल कर राजकुमारी भाग गईं। पता लगाने पर ज्ञात हुआ कि वह विन्ध्याचल की ओर गईं हैं। वहीं सम्भवतः भिक्षुणी होकर निवास करेंगी।'

यह सुनकर हर्ष को अपनी बहन के विषय में चिन्ता हो गई। उन्होंने उसे विन्ध्याचल में जाकर खोजने का निश्चय किया। उन्होंने भांडी को सम्पूर्ण सेना के साथ शशांक से युद्ध करने के लिये कन्नौज की ओर बढ़ने का आदेश दिया और स्वयं विन्ध्यवन जाने को उद्यत हुए।

इसी समय भांडी ने उन्हें मालव की समस्या समझाई। उसने कहा—'सर्व-प्रथम मालवा के रिक्त सिंहासन की व्यवस्था कीजिये। अन्यथा यह विस्तृत राज्य हम लोग अपने हाथ से खो बैठेंगे। मालवा की सम्पूर्ण विजित सेना मैं अपने साथ लाया हूँ। इस सम्बन्ध में उचित आज्ञा देकर ही आप कहीं जायँ तो उचित होगा।

हर्षवर्द्धन ने मालवा की सेना का निरीक्षण किया। मालवसेना की विजय से उन्हें अत्यधिक सैन्यसामग्री और धन हाथ लगा था। उसे देखकर वे बहुत प्रसन्न हुए। इस सेना को अपनी विशाल वाहिनी में ही मिला देने का आदेश दिया। दिग्विजय के लिये जितनी सैन्यशक्ति हो, उतना ही अच्छा। यह सोचकर उन्होंने मालवसेना पर अपना अधिकार कर लिया।

मालव राज्यके संरक्षणके लिये यद्यपि देवगुप्त के पुत्र के नाते भांडी ही एकमात्र उत्तराधिकारी था किन्तु देवगुप्त के पिता महासेनगुप्त का वास्तविक उत्तराधिकारी

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

उनका ज्येष्ठ पुत्र माधवगुप्त ही था। देवगुप्त तो उनकी किसी दूसरी दासी पत्नी से उत्पन्न माधवगुप्त का सौतेला बड़ा भाई था किन्तु छली, कपटी, और दुष्ट प्रकृति का होने के कारण पिता की मृत्यु के बाद बालक माधवगुप्त से उसने बलात् सिंहासन छीन लिया और स्वयं शासक बन बैठा। इसीलिये तो अपना राज्य निष्कण्टक बनाने के निमित्त उसने अपने दोनों सौतेले भाइयों, माधवगुप्त और कुमारगुप्त को महराज प्रभाकरवर्द्धन के पास राज्यवर्द्धन और हर्ष की सेवा के लिये भेज दिया था और तब निर्भय होकर मालवराज बन गया था।

गद्दी का वास्तविक अधिकारी माधवगुप्त था। अतः उसे ही मालवा का शासन सौंपने का हर्ष ने निश्चय किया। और फिर भांडी जैसे स्नेही और हितचिंतक सहायक को वे अपने से अलग भी नहीं करना चाहते थे। वे जानते थे कि प्रधान-मंत्री शत्रुमर्दन अब पर्याप्त वृद्ध हो चुके हैं। जीवन का क्या ठिकाना? किस दिन चलाचली की तैयारी कर बैठें। अतः भविष्य में अपने राज्य का प्रधानमंत्री वे भांडी को ही बनाना चाहते थे। भांडी भी उनका भक्त था। उसे मालवा के छोटे से राज्य का लोभ न था। वह जानता था कि महाराज हर्षवर्द्धन की सेवा से ही पर्याप्त उन्नति हो सकती है। इसी स्वामिभक्ति से प्रसन्न होकर तो हर्ष ने भी उसे प्रधानमंत्री बनाने का निश्चय किया था।

अस्तु! उन्होंने भांडी के समक्ष अपना विचार स्पष्ट कर दिया। भांडी ने भी सहर्ष उसे स्वीकार कर लिया और तभी एक पत्र लिखकर हर्ष ने राजधानी की ओर दूत रवाना किया जिसमें माधवगुप्त को अपने छोटे भाई कुमारगुप्त को थानेश्वर राजधानी का भार सौंपकर मालवा चले जाने का आदेश दिया गया था। दूत द्वारा पत्र पाकर माधवगुप्त तत्काल मालवा रवाना हो गया और थानेश्वर की व्यवस्था महामंत्री की सहायता से कुमारगुप्त देखने लगा।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

: १८ :

बहन की खोज में

अन्धकारमयी काली रात ! निर्जन वन का सुनसान मार्ग ! सर्वत्र नीरवता ही नीरवता ! पक्षियों तक के बोल बन्द हैं। हाँ, पवन के मन्द-मन्द झोंकों से वृक्षों की पत्तियाँ हिल उठती हैं और उन्हीं से खड़खड़ की कुछ ध्वनि हो उठती है। सर्वत्र शान्ति का साम्राज्य है। वन्य पशु भी कन्दराओं के भीतर अखंड निद्रा में लीन हैं। भला अशान्ति हो तो कैसे !

अचानक शान्त वातावरण क्षुब्ध हो उठा। वन में तीव्रगामी घोड़ों की टापों की भयंकर ध्वनि गूँज उठी। मशालों के प्रकाश से वन सहसा जगमगा उठा। वन्य पशुओं की निद्रा भंग हुई और वे चीत्कार करने लगे। पक्षियों की चें-चें आरम्भ हो गई।

अश्वरोही एक क्षण भी रुके नहीं, अबाध गति से आगे बढ़ते गये। वे ज्यों-ज्यों बढ़ते जाते, पीछे पुनः सुनसान नीरवता छाती जाती और आगे का वातावरण क्षुब्ध होता जाता।

'अभी कितना मार्ग तय करना है, सैनिक ?' एक अश्वारोही ने दूसरे से पूछा। यह अश्वारोही कुछ विशिष्ट जान पड़ता था। इसकी वेशभूषा, आभूषण, मुकुट आदि इसके कोई विशिष्ट राजपुरुष होने का स्पष्ट संकेत दे रहे थे।

सैनिक ने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया—'लगभग १० कोस और है, श्रीमान् ! सूर्योदय पूर्व ही हमलोग विन्ध्य पहुँच जायेंगे।'

और अश्वारोही पूर्ववत् आगे बढ़ते रहे है। घंटों इसी गति से बढ़ते रहने के बाद प्राची में कुछ लालिमा दिखाई दी। अश्वारोहियों के मुख पर प्रसन्नता की रेखाएँ दौड़ गईं। धीरे-धीरे पूर्वीय गगन में अरुणिमा व्याप्त हो गयी और उसी समय उसकी गोद में बालरवि का प्राकट्य हुआ। चारों दिशाएँ आलोकित हो उठीं। सारा संसार जाग उठा। जग की सम्पूर्ण प्रगतियाँ

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

गतिशील हो गईं। रवि के उदय के साथ अश्वारोहियों के हृदय में आशा का उदय हुआ। पूरे दिन और पूरी रात की थकान के बाद सफलता के चिह्न उन्हें दिखाई देने लगे। सामने ही कुछ दूरी पर पेड़ों के आंचल में छिपी एक ग्राम्य बस्ती उन्हें दिखाई पड़ने लगी। उन्हें आशा हुई कि बस्ती में पहुँचकर उनका लक्ष्य कुछ सिद्ध होगा।

बस्ती क्या थी, वैभवों के शृंगार से लदी इन्द्रपुरी ही थी। बस्ती के चारों ओर बहने वाले सुन्दर-सुन्दर झरने बड़े-बड़े असंख्य गगनचुम्बी वृक्षों की घनी छाया और भव्य वाटिकाओं से घिरी बस्ती इतनी सुरम्य लगती थी कि कोई पथिक या दर्शक सहज ही मुग्ध हो जाता। बस्ती में बनी ग्रामीणों की पर्णकुटियाँ और कच्चे-पक्के, साफ़-सुथरे सुन्दर मकान किसी राजनगर की बड़ी-बड़ी अट्टालिकाओं से कम शोभायमान न थे। बस्ती के कोनों पर बने कूपों पर जल भरती ग्रामीण बालाओं की अद्भुत झांकी से पथिकों की सम्पूर्ण थकान क्षण भर में न जाने कहाँ विलुप्त हो जाती। पनघट की बालाओं के तरह-तरह के कल्लोल देखकर पथिकों का जी भर आता।

एक कलश सिरपर और एक बगल में दबाये मधुर गीत गाते-सुनाते पनघट पर ग्रामबालाओं के झुंड के झुंड आते और चले जाते। किसी की बगल में छाती से चिपटा हुआ नन्हा शिशु ही होता और वह एक ही कलश सिर पर रखे दूसरे हाथ से शिशु को संभाले चली जाती। पथिकों के लिए वह पनघट तो मानो सौंदर्य-सरोवर ही था जिसमें खिले तरह-तरह के मनोहर सुन्दर कमल यात्रियों का मन मुग्ध कर लेते।

सहसा अश्वारोही दल बस्ती के पास आया घोड़ों की टाप सुनकर युवतियाँ सहम गईं। अश्वारोहियों की दृष्टि उस सौन्दर्य-सरोवर की ओर गई या नहीं, कहना कठिन है, किन्तु उन सुन्दरी बालाओं की निर्निमेष दृष्टि अश्वारोहियों के अगुवा, कामदेव के समान अति सुन्दर युवक पर जा पड़ी। उनकी गति में बेड़ियाँ पड़ गईं। जाने वाली मुड़ कर खड़ी हो गईं; जल भरने वालियों के हाथ रुक गये, सुन्दरियाँ आपस में फुस-फुसाने लगीं।

'जान पड़ता है, कोई राजकुमार है।' एक ने कहा।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

'और क्या कोई गँवार देहाती है ? यह भी कहने की बात है। राजकुमार नहीं तो कोई राजपुरुष अवश्य होगा।' दूसरी बोली।

'कहाँ का राजकुमार है, यह तो पता ही नहीं चला। राजा लोग तो पूर्व सूचना देकर ही आते हैं।' तीसरी बोल उठी।

'कहीं का तो होगा ही। परन्तु तुम लोग उसे आँखें फाड़-फाड़ कर क्या देख रही हो ?' चौथी ने व्यंग कसा।

'अपने पति की सुन्दरता से मिलान कर रही है।' पाँचवीं ने उत्तर दिया और मुस्कुरा पड़ी।

'और यदि मिलान करने में इनके पति की सुन्दरता उससे हार बैठी तो ?' छठी ने अपनी चातुरी दिखाई।

'तो ये राजकुमार पर अपना दिल हार बैठेंगी।' सातवीं ने सटीक उत्तर दिया।

'हट निगोड़ी !' लज्जा से वह तीनों मुंह फेर कर जाने को हुईं। उनके ओठों पर भी एक विचित्र मुस्कान नाच उठी।

अश्वारोही आगे बढ़ चुके थे। एक अश्वारोही सैनिक नम्रतापूर्वक बोला, 'उचित हो तो इस बस्ती में उतरकर दो घड़ी विश्राम कर लिया जाय महाराज ! यहाँ जल आदि की सुविधा से नित्यकर्म होने में सुभीता रहेगा।'

'लक्ष्य तक बिना पहुँचे न विश्राम होगा न जलग्रहण ! विन्ध्य वन तो समीप ही है।'

'हाँ महाराज !' सैनिक ने आज्ञा शिरोधार्य करते हुए उत्तर दिया।

निरन्तर परिश्रम करने से अश्वारोहियों के मुखपर थकान के स्पष्ट चिह्न दिखाई पड़ने लगे थे। स्वामिभक्त घोड़े भी पचासों कोस की दौड़ लगाने के बाद थकावट का अनुभव करने लगे थे। उनकी गति में पहिले सी तीव्रता और फुर्तीलापन न रह गया था। अश्व और अश्वारोही अब कहीं रुकने के लिए आतुर हो रहे थे और तभी विन्ध्यवन की सीमा भी आ पहुँची।

हिंसक पशुओं से भरपूर, भयानकता के साक्षात् प्रतीक उस बीहड़ वन में दिन में भी रात्रिकी-सी नीरवता छाई थी। हाँ, पक्षी चिहुँक रहे

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

थे। हिंसक पशुओं की गर्जनाओं से वन गूंज रहा था। जंगली हाथियों की चीत्कार से वन का वातावरण और भयावह हो उठता था। मनुष्य जाति से सर्वथा हीन ! चारों ओर दूर-दूर तक किसी बस्ती के चिह्नों का पता न था। जाते-जाते घनी झाड़ियों में से बह रहे एक सुन्दर विशाल झरने को देखकर अश्वारोही दल का नायक रुका।

'यहीं थोड़ा विश्राम कर लेना उचित होगा। इसी वन के आसपास राजकुमारी के अन्वेषण की आवश्यकता है।'

और सभी लोगों की गति रुक गई। सब लोग घोड़ों से उतर पड़े। विन्ध्य-वन में पहुँच कर, उन लोगों के चेहरों पर सन्तोष की छाया दीख पड़ रही थी। एक सैनिक ने महाराज का घोड़ा संभाला और दूसरा उन्हें मार्ग दिखलाने लगा। पेड़ों में घोड़े बाँधकर एक विशाल वृक्ष की छाया में महाराज के विश्राम की व्यवस्था की गई। ये और कोई महाराज या राजकुमार नहीं थे, स्वयं महाराज हर्षवर्द्धन थे। बहन राज्यश्री को खोजते-खोजते विन्ध्य वन तक रातों-रात आ पहुँचना उन्हीं जैसे साहसी का कार्य था। क्यों न हो ? राज्यश्री उनकी बहन थी। स्नेहमयी बहन ! उसे खोज निकालने के लिए महाराज हर्ष सब कुछ करने को तैयार थे। रात भर का परिश्रम उनके लिए क्या था !

सैनिकों के पूर्ण विश्राम कर लेने के बाद महाराज हर्ष ने अपने अंगरक्षकों को छोड़ कर शेष सबको विभिन्न दिशाओं में जाकर राज्यश्री की खोज करने और सायंकाल पुनः उसी स्थान पर एकत्र होने का आदेश दिया। सैनिकों को भेजकर महाराज स्वयं भी एक दिशा की ओर अन्वेषण में निकल पड़े।

इस अन्वेषण-यात्रा में उन्हें बड़े-बड़े मोहक दृश्य देखने को मिले। सुन्दर-सुन्दर, टेढ़ी-मेढ़ी भयानक कन्दराएँ, ऊँचे-ऊँचे पर्वत शिखर, जहाँ से नीचे झाँकने पर ही भय लगने लगे। कहीं लम्बे-लम्बे ताड़ के वृक्षों की पंक्तियाँ अपनी अद्‌भुत छवि दिखला रही थी तो कहीं विशाल झरनों का प्रपात अपनी कर्णमधुर ध्वनि से हृदय मोह लेता। गिरते हुए प्रपात को नीचे से देखने पर ऐसा भान होता है कि यदि स्वयं काल भी इस प्रपात की लहरों में कदाचित् फँस जाय तो उसका बचना भी असम्भव हो उठे। सुकोमल लताओं से सारा वन व्याप्त था।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

इधर-उधर फैली लताओं से कहीं वितान-सा छा रहा था। कहीं स्वभावतः नीचे-ऊपर फैल कर लताओं ने सुन्दर अच्छी-सी कुटी का रूप धारण कर लिया था। उस कुटी की शोभा देखकर नयन प्रफुल्लित हो उठते। उस गहन वन में बड़ी-बड़ी स्वच्छ चिकनी शिलाओं पर बैठकर सांसारिक मनुष्य की चंचल चित्त-वृत्तियाँ इस प्रकार शान्त हो जातीं कि उसे स्वतः वैराग्य उत्पन्न होने लगता। इतने विशाल साम्राज्य के स्वामी और दिग्विजय के यात्री युवक महाराज हर्ष के हृदय में भी कुछ क्षण के लिये वैराग्य की भावना सुस्थिर रूप से आ जमती, जिसे सांसारिक कर्त्तव्यों की ओर ध्यान देकर बलपूर्वक निकालना पड़ता। उस निर्जन वन का शान्त वातावरण देखकर हर्ष सोचते—वास्तव में इसीलिए तपस्वी योगियों एवं ऋषि मुनियों का चित्त संसार के मिथ्या मोह-माया के प्रपंच से विरक्त हो ईश्वर-साधना में लग पाता है। शान्ति के इस लौह-दुर्ग में अशान्त जगत् के प्रपंच प्रवेश कर भी पायें तो कैसे ?

हर्ष आये थे बहन राज्यश्री को खोजने किन्तु वनशोभा के दर्शन में ही उनकी आँखें ऐसी अटक गईं मानो उनके पैरों में बेड़ियाँ पड़ी हों। किन्तु वहाँ उन्हें राज्यश्री मिल पाती भी तो कैसे ? कहीं आसपास न तो कोई ग्राम, न बस्ती, राज्यश्री जैसी अकेली नवयुवती इन बीहड़ जंगलों में भटकने क्यों कर आती ? वे सायंकाल लौट पड़े। वहाँ उन्हें लौटे हुए सैनिक मिले। सबके झुके हुए मस्तक और मुरझाये मुख अपनी असफलता प्रकाशित कर रहे थे। उन्होंने बताया कि उन्हें उस बीहड़ में किसी तपस्वी का आश्रम तक नहीं मिला। ग्राम-बस्ती की तो बात ही क्या !

हर्ष बहुत दुखी हुए। वे शीघ्रातिशीघ्र अपनी बहन को खोज निकालना चाहते थे। वे जानते थे कि अधिक दिन भटकते रहने से दुखी होकर कहीं वह आत्महत्या कर अपनी जान न गँवा बैठे। वह रात किसी प्रकार बीती। दूसरे दिन भी वही क्रम आरम्भ हुआ किन्तु सायंकाल तक जंगलों की धूल छानने के अतिरिक्त राज्यश्री का कहीं पता न चला। इसी प्रकार दो-तीन दिन और बीत गये। दूर-दूर तक सैनिकों ने पता लगाया, किन्तु जंगल छान मारने पर भी राजकुमारी न मिली ?

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

हर्षवर्द्धन की निराशा बढ़ चली। सैनिकों का धैर्य भी टूट चला। इसी समय एक-दो पर्वतीय शिकारियों को अचानक उधर आते देखकर हर्षवर्द्धन को कुछ त्राण मिला। सैनिकों द्वारा उन्होंने तत्काल उन्हें पास बुलाया।

वे पर्वतीय बड़े निर्भीक, साहसी और स्वाभिमानी थे। समीप आने पर उन्होंने राजा को विधिवत् प्रणाम भी नहीं किया। परिचय पूछने पर उन्होंने बताया कि दोनों भील शिकारी हैं। उनमें छोटा भील सरदार शरभकेतु का पुत्र व्याघ्रकेतु था और दूसरे का नाम था निधति। वह सरकार का सेवक था।

हर्ष ने बड़े प्रेम से उन दोनों को अपने पास बैठाया। उन्हें खाने को सुन्दर-सुन्दर मिष्टान्न दिये। जीवनभर जिन्होंने ऐसे मधुर पदार्थों का दर्शन तक न किया था। वन्य कन्द-मूल और पशुओं का मांस ही जिनका आहार था। उन्हें उन मधुर मिष्टान्नों का स्वाद चखकर कितनी अधिक प्रसन्नता एवं आनन्द हुआ होगा! मुंह मीठा करने के बाद राजा ने उन्हें दो-एक हीरों की मालाएँ उनकी स्त्रियों के लिए भेंट में दीं और तब बड़े सम्मानपूर्वक नम्रता से बोले—

'तो मित्र व्याघ्रकेतु, तुम हमारा एक कार्य-साधन कर सकते हो? मैं समझता हूँ, वह कार्य तुम्हारे अतिरिक्त और कोई करने में समर्थ न होगा। वन के राजा के समक्ष हम नगरवासियों की क्या हैसियत? तुम लोगों की शक्ति हम लोगों से बहुत बढ़-चढ़कर है। यह कार्य सिद्ध कर देने पर हम आपके अत्यधिक उपकृत होंगे।'

आवश्यकता से अधिक अपनी प्रशंसा सुनकर भील सरदार फूलकर कुप्पा हो गया। बोला, 'आपकी प्रत्येक इच्छा की हम पूर्ति करेंगे। आप हमारे अतिथि हैं। बताइये कौन-सा कार्य है?'

हर्ष ने इच्छा प्रकट कर दी और बताया कि उनकी बहन इस प्रकार विन्ध्यवन की ओर भाग आई है। उसे खोज निकालना ही उनकी शक्ति का महान् परिचय होगा।

आवश्यकता पड़ने पर गधे को भी बाप कहना पड़ता है। हर्ष इस आधुनिक उक्ति के तथ्य से पूर्ण परिचित थे। इस समय राज्यश्री को शीघ्रातिशीघ्र खोज निकालना उनके लिए अनिवार्य था और वे जानते थे कि उनके सैनिक इस प्रकार महीनों इस बीहड़ वनों में टक्करें मारते रहने पर भी सफलता नहीं पा सकेंगे।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

इसीलिए वे उन नीच पापमूर्ति भीलों की इतनी प्रशंसा एवं उनका समादर कर रहे थे। अन्यथा आजतक उन्होंने कभी अपने महामंत्री के प्रति भी ऐसे सम्मानजनक वचन नहीं कहे थे।

भीलों ने महाराज का आग्रह स्वीकार कर लिया। निधति ने बताया कि कुछ दिन पूर्व दो-तीन अश्वारोही उस मार्ग से बड़ी तीव्रगति से भागे जा रहे थे। उनकी वेशभूषा पुरुषों की थी किन्तु उनके अलंकार, चालढाल आदि दूर से देखने पर भी पुरुषों से कुछ भिन्न मालूम होती थी। सम्भवतः उनमें राजकुमारी जी भी हों। निधति की बात सुनकर हर्ष का गात प्रफुल्लित हो उठा। उनमें आशा का संचार हो गया।

पूछा, 'वे अश्वारोही किस ओर गये ?'

पूर्व-दक्षिण कोण की ओर संकेत कर उसने कहा, 'सामने लगभग दो कोस पर बौद्ध मुनि दिवाकरमित्र का आश्रम है। उसी ओर वे अश्वारोही गये। दिवाकर मुनि से उन अश्वारोहियों का सम्भवतः पता लग सगता है।'

'तो इसके लिए तुम्हें ही कष्ट देना होगा मित्र ! तुम हमारे साथ चलकर दिवाकर मुनि का आश्रम दिखा दो तो तुम्हारी बड़ी कृपा हो।'

सरदार ने निधति को राजा के साथ जाने की अनुमति दे दी और स्वयं अपने घर की ओर जाने लगा।

'तुम लोग इस बीहड़ वन में रहते कहां हो भील सरदार !' राजा ने उत्सुकता से पूछा।

'पर्वतों पर जहाँ कुछ समतल मिलता है वहीं झोपड़े बसा लेते हैं। जंगल ही तो हमलोगों का पैतृक घर है।' और वह हँसता चला गया।

राजा भी अपने सैनिकों के साथ एक घोड़े पर निधति को बैठाकर दिवाकर मुनि की ओर चले।

दिवाकर मुनि के आश्रम पहुँचने से पूर्व कई मीलों में फैला हुआ विस्तृत बीहड़ वन था। इस वन की भयानकता पिछले वन से भी अधिक थी। सारा वन हिंसक पशुओं के भीषण गर्जन-तर्जन से गूंज रहा था। उसमें सिंह, व्याघ्र इस प्रकार निःशंक घूम रहे थे जैसे किसी बाजार में सौदागरों की भीड़। स्थान-स्थान

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

पर उनके आक्रमण से बचने के लिये निधति और हर्षवर्द्धन को अपने सैनिकों सहित धनुष-बाण एवं अन्य शस्त्रों की सहायता लेनी पड़ी। हर्षवर्द्धन को आश्चर्य हो रहा था कि उनकी बहन उस बीहड़ वन से होकर किस प्रकार निरापद दिवाकर मुनि के आश्रम की ओर गई होगी, और साथ ही यह विचार कर उनका हृदय काँप उठता कि कहीं इसी वन में उनकी बहन पशुओं का आहार न बन गई हो, किन्तु यहीं उन्हें कुछ शुभ शकुन दिखाई देने लगे। उनके सामने दाईं ओर से उछल कर मृग निकल गया। उधर से क्यूं-क्यूं करता नीलकंठ ऊपर से उड़ गया। शकुन तो अच्छे थे। हर्षवर्द्धन के मन का भय कुछ हलका हुआ। उन्हें कुछ विश्वास-सा हुआ कि सम्भवतः दिवाकर मुनि के आश्रम पर पहुँचते ही राज्यश्री मिल जाय। हृदय के अनेक उथल-पुथल के बीच वे वन-सीमा पर आ गये और तभी निधति ने कहा—'वह देखिये सामने, वृक्षों के झुरमुटों में से दिवाकर मुनि का आश्रम दीखता है। अब हम लोग आश्रम में पहुँच ही चुके हैं।'

हर्ष ने सन्तोष की साँस ली। पलक मारते वह शेष मार्ग भी तय हो गया और सभी पथिक आश्रम की सीमा तक पहुँच गये।

आश्रम का वातावरण बहुत ही पवित्र था। यत्र-तत्र विभिन्न गुरुओं द्वारा विद्यार्थियों को शास्त्रों की शिक्षा दी जा रही थी। बौद्ध मुनि के आश्रम में वैदिक धर्म की भी शिक्षा की व्यवस्था थी। उस बीहड़ वन के पास इस प्रकार का जनसमूह युक्त आश्रम देखकर हर्ष को आश्चर्य हुआ किन्तु निधति ने यह बतला कर महाराज का भ्रम निवारण किया कि बीहड़ वन के उस पार समीप ही बहुत-सी घनी बस्तियाँ हैं। कुछ छोटे-छोटे नगर भी हैं।

होम यज्ञादि कृत्यों से उठ रहे धुएँ से आश्रम का वायुमंडल सुगन्धित एवं पवित्र हो रहा था। वेदों की शिक्षा पाने वाले छात्रों के सामूहिक मन्त्रोच्चार से आकाश गूँज रहा था। एक ओर बौद्ध मुनि भिक्षु बालकों को बौद्ध धर्म की अहिंसा वृत्ति का महत्व बता रहे थे, दूसरी ओर ब्राह्मण-गुरु आर्य छात्रों को पुराण-धर्मशास्त्रादि के उपाख्यानों का पाठ पढ़ा रहे थे।

दिवाकर मुनि का वह आश्रम सैकड़ों विद्यार्थियों के अध्ययन के लिये एक प्रकार का गुरुकुल था। विभिन्न सम्प्रदायों के बालक उसमें शिक्षा पाते थे। वहाँ

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

पहुँचकर वहाँ के पवित्र वातावरण से हर्ष बहुत प्रभावित हुए। उनके हृदय को अत्यधिक शान्ति मिली।

आश्रम तक पहुँचाकर भील सरदार का सेवक निधति लौट गया। राजा ने उसे और भी पुरस्कार देकर विदा किया और स्वयं दिवाकर मुनि के पास आये। उन्होंने अपने अंगरक्षक को आश्रम के बाहर ही अन्य सैनिकों के पास छोड़ दिया और अन्दर अकेले, आश्रम की मर्यादा के अनुकूल सिर पैर से नंगे होकर आये।

दिवाकर मुनि उस समय भिक्षुओं को पढ़ा रहे थे। राजा ने उन्हें दण्डवत् किया और विनयपूर्वक हाथ जोड़कर अपना परिचय दिया। मुनि ने राजा का उचित सम्मान किया और उन्हें बैठने के लिये उच्चासन दिया। आतिथ्य-सत्कार के नियमोंके अनुकूल अर्घ्यादि प्रदान करनेके बाद मुनिने जब उनके आगमन का कारण पूछा तो उन्होंने पूरा विवरण कह सुनाया और बताया कि किस प्रकार उनकी बहन राज्यश्री विन्ध्यवन भाग आई है। उसे ही खोजने के लिये यहाँ तक आना पड़ा।

मुनि को इस सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञात न था, यद्यपि परिचय के आदान-प्रदान के समय इस बात का रहस्योद्घाटन हुआ कि स्वयं दिवाकर मुनि राज्यश्री के मृत पति ग्रहवर्मा के बाल्यकाल के सखा थे। वे आयु में हर्ष से कुछ ही बड़े थे। बाल्यकाल में ही हृदय पर ठेस लगने से उन्हें वैराग्य उत्पन्न हुआ और उन्होंने बौद्ध भिक्षु से दीक्षा ले ली। तब से इस आश्रम में आकर रहने लगे। युवा मुनि के वैराग्य, शान्त विनम्र स्वभाव, आध्यात्मिक विद्वत्ता, तेजस्वी स्वरूप एवं उग्र तपश्चरण का हर्ष पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा। वास्तव में बौद्ध धर्म का बीज हर्ष के हृदय में दिवाकर मुनि के आश्रम में पहुँचने से ही अंकुरित हुआ।

मुनि ने राजासे खेदपूर्वक कहा,'मुझे यह जानकर अत्यन्त दुख है कि मेरे बाल्य सखा ग्रहवर्माका निधन हो गया और इस बातका और भी अधिक खेद है कि इतनी दूर आने के बाद भी आपको मैं बहन राज्यश्री के विषय में कुछ भी न बता सका।'

मुनि ने अपने विद्यार्थियों से पूछा, 'क्यों, तुम लोगों में से कोई इस सम्बन्ध में कुछ जानता है? कोई अश्वारोही तो इधर नहीं आये थे?'

विद्यार्थियों ने अस्वीकृतिसूचक सिर हिला दिये। राजा बहुत दुखी हुए। वे निराशा में डूब गये।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

ठीक इसी समय एक भिक्षु ने आकर दिवाकर मुनि को प्रणाम किया। उसकी मुख-मुद्रा से ज्ञात होता था कि वह कुछ कहना चाहता है।

'कहाँ से आ रहे हो वत्स ?' मुनि ने उससे पूछा।

'आचार्य ! मैं इसी वन में भ्रमण कर रहा था। वहाँ एक करुण दृश्य देखकर उसकी सूचना आश्रम में देने के लिये दौड़ा आया।' भिक्षु ने नम्रतापूर्वक कहा।

'कहो ! कौन-सा दृश्य है ? हम सुनने के लिये उत्सुक हैं।'

'यहीं से कुछ दूर गहन वन में कछ युवतियाँ रोती, विलाप करती वन की सूखी लकड़ियाँ एकत्र कर रही हैं।'

हर्ष और दिवाकर मुनि उत्सुकता से एक दूसरे का मुंह देखने लगे।

'तब ?' मुनि ने पूछा।

'तब, जब मैंने उनसे प्रश्न किया तो बड़े ही दीन वचनों में उन्होंने बताया कि पतिवियोग के कारण वे अग्नि में जल कर प्राण देने की तैयारी कर रही हैं। मैं उनके इस प्रयास को रोकने में असमर्थ रहा। अतः मुनि को सूचित करने चला कि सम्भवतः आप उन्हें रोक सकें।'

उसकी बात अभी पूरी भी न हुई थी कि महाराज हर्ष हर्ष से उछल पड़े—'अवश्य वह बहन राज्यश्री है। चलिये गुरुदेव, शीघ्र चलिये। कहीं वह चिता में अपने को भस्मसात् न कर दे !'

मुनि तत्क्षण उठ बैठे। उस भिक्षु को आगे कर हर्ष के साथ तीव्रता से दिवाकर मुनि उस स्थान पर पहुँचे। तीनों ने देखा, तीन स्त्रियाँ चिता में अग्नि लगाकर उसमें प्रवेश करना ही चाहती हैं। हर्ष तो दौड़ पड़े। उन्हें अपनी बहन को पहचानते विलम्ब न लगा।

'यह क्या कर रही हो राजू ? ठहरो !' हर्ष ने दौड़कर राज्यश्री का हाथ पकड़ लिया।

'छोड़ दो भैया मुझे ! मैं अब इस संसार में एक क्षण भी नहीं रहना चाहती। जहाँ दुःख, कष्ट और विपत्तियों के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं। मुझे इन सम्पूर्ण कष्टों से मुक्ति पाने दो भैया !'

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

'मेरी प्रार्थना, अपने बड़े भाई की प्रार्थना तो सुन लो, फिर जो मन में आये करना। तुम्हें खोजते हुए मैंने वन-वन, ग्राम-ग्राम, बस्ती-बस्ती की धूलें छानी हैं। मुझसे दो बातें तो कर लो बहन !'

हर्ष राज्यश्री का हाथ पकड़ कर उसे एक वृक्ष की छाया में ले आये। अन्य दो स्त्रियाँ भी हर्ष के समझाने पर रुक गईं। ये दो स्त्रियाँ भी कन्नौज के राज-परिवार की थीं। राज्यश्री के बाद भाग कर उसे मार्ग में आ मिली थीं। इन दोनों के पति भी युद्ध में मारे गये थे। जो दासी राज्यश्री को कारागार से भगा लाई थी, वह नगर से बाहर बहुत दूर निरापद स्थान में राजकुमारी को छोड़ कर थानेश्वर की ओर चली गई।

हर्षवर्द्धन ने कहा—'तुमने सुना, तुम्हारे बड़े भाई महाराज राज्यवर्द्धन की भी उन दुष्टों ने हत्या कर दी। मुझे संसार में कौन-सा सुख मिला है? इस अल्प आयु में माता-पिता का देहावसान तो हुआ ही, राज्यके उत्तराधिकारी बड़े भैया भी चल बसे। चारों ओर विपत्ति के पहाड़ टूट रहे हैं। राज्य में अशान्ति और अराजकता के लक्षण प्रकट हो रहे हैं। उधर कन्नौज का राजसिंहासन खाली पड़ा है। उसकी रक्षा करनी है। ऐसी विकट परिस्थिति में मुझ पर एक और विपत्ति न लाओ राजू ! तुम चली गईं तो मुझसे यह राजपाट न होगा। मैं भी या तो तुम्हारी तरह चिता में भस्म हो जाऊँगा या राजपाट छोड़कर संन्यासी हो जाऊँगा। बताओ ! जिस राज्य की स्थापना पिता जी ने बड़े-बड़े युद्धों एवं महान कष्टों के बाद की, क्या उसे यों ही अनाथ छोड़कर चल देना ही हम लोगों का कर्त्तव्य है? पिताजी की आत्मा इससे कितनी दुखी होगी। मेरे जीवन का इस समय तुम्हीं सहारा हो। दुलार करने वाले माँ-बाप रहे नहीं। प्यार से बातें करने वाला बड़ा भाई भी चला गया। अब मैं अपनी स्नेहमयी बहन को भी गवाँ बैठूं, मुझसे कैसे सह्य होगा? बोलो राजू, बोलो !'

राज्यश्री का हृदय इतना शोकसंतप्त था कि वह कोई उत्तर न दे सकी। उसकी आँखें तो आँसू बरसाने में ही संलग्न थीं। वह आँचल में मुंह छिपाकर सिसकियाँ भर रही थी। उसे देखकर हर्ष भी रो पड़े।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

रोते हुए बोले, 'तो तुम क्या चाहती हो, मैं भी तुम्हारे साथ चिता में भस्म हो जाऊँ ? यदि यही बात है तो ठीक है। एक चिता और बनाओ। हम दोनों इस दुखमय संसार का परित्याग कर उस आनन्दपुरी स्वर्ग में पहुँच जायँ। क्यों है स्वीकार ?....बोलो !'

राजकुमारी रोती ही रही।—'यह भी स्वीकार नहीं। बोलो तो कैसे काम चलेगा ? मैं तुम्हें अकेली नहीं छोड़ सकता। स्वर्ग चलेंगे तो दोनों साथ-साथ। अन्यथा तुम्हें इस संसार में मेरे साथ रहना होगा और राज्यपालन में पूरा सहयोग देना होगा।'

कहते-कहते हर्ष का भी गला भर आया। कुछ देर तक वे चुपचाप बैठे रूमाल से अपने आँसू पोंछते रहे, फिर बोले, 'जरा सोचना चाहिये। हम लोग राजा की संतान हैं। प्रजापालन हमारा प्रमुख कर्त्तव्य है। अपने कष्टों और विपत्तियों की चिन्ता करते हुए हम सभी प्रजा को दुखी बना कर, उसे विपत्तियों के गर्त में गिराकर चल दें। क्या यही हम लोगों का धर्म है ? ईश्वर ने विपत्ति दी है, प्रसन्नता से झेलने को। अपने पूर्वजन्मों के कर्मों का ही फल आज हम भोग रहे हैं। उसमें ईश्वर का क्या दोष ? पति के स्वर्गवासी होने पर स्त्री का एक मात्र यही कर्त्तव्य नहीं कि वह सती हो जाय। संसार में रहकर जप, तप, अनुष्ठान, भजन, पूजन में मन लगाने से भी तो विधवा नारी परम पद को प्राप्त कर सकती है। अपने लिए नहीं तो मेरे लिए तुम्हें जीवित रहना होगा राजू !'

अब राज्यश्री की जिह्वा हिली, किन्तु उसने दूसरा हठ ठान लिया।

'तो मैं भिक्षुणी होकर जीवित रहूँगी। इन मुनि महाराज से मैं बौद्ध धर्म की दीक्षा लूंगी और अपना तपस्वी जीवन व्यतीत करूँगी।'

हर्ष बड़े असमंजस में पड़े। वे दीन आँखों से दिवाकर मुनि की ओर देखने लगे कि किसी प्रकार वे दीक्षा देना अस्वीकार कर दें ताकि उनकी बहन का स्नेह उन्हें प्राप्त होता रहे।

दिवाकर विद्वान्, बुद्धिमान और तपस्वी थे। वे भला क्षणिक वैराग्य से प्रभावित एक नवयुवती को दीक्षा देना कैसे स्वीकार करते ? उन्होंने स्पष्ट कहा—'देवि ! तुम्हारे संरक्षक इस समय महाराज ही हैं। पति के शरीरावसान के

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

बाद पिता, पुत्र या भाई ही स्त्री का संरक्षक होता है। अतः इन्हीं की आज्ञा का तुम्हें पालन करना चाहिये। क्षणिक आवेश में आकर वैरागिन बनने का विचार छोड़ो और अपने भाई के साथ घर लौट जाओ। यही तुम्हारा कर्त्तव्य है।'

राजकुमारी बहुत दुखी हुई। दिवाकर मुनि ने भी स्पष्ट अस्वीकृति दे दी। सती होने से भाई के प्राण साथ जायेंगे। वह किसी प्रकार घर चलने को तैयार हुई, किन्तु शर्त यह कि दिवाकर मुनि भी साथ चलकर वहीं बौद्ध धर्म की शिक्षा दें। बौद्ध मुनि ने प्रथम तो कुछ सोच-विचार किया किन्तु बाद में अपने मित्र की पत्नी होने के नाते उसका निमंत्रण स्वीकार कर लिया।

बहन राजी हो गई। अन्य दोनों स्त्रियों को भी समझा-बुझाकर शान्त किया गया। उस रात्रि महाराज हर्षवर्द्धन दिवाकर मुनि के ही अतिथि हुए और दूसरे दिन उन्होंने अपने शिविर को लौटने की तैयारी की। दिवाकर मुनि वाहन पर चढ़ना नहीं चाहते थे अतः उन्होंने वचन दिया कि वे पैदल भ्रमण करते कुछ दिनों में वहाँ पहुँच जायँगे।

आश्वासन पाकर अपनी बहन और उन दोनों स्त्रियों को साथ ले हर्षवर्द्धन अश्वारूढ़ हो लौट पड़े। लौटते समय बहुत प्रसन्न थे कि उन्हें अपनी बहन मिल गई, अन्यथा वे तो अब निराश हो चुके थे।

: १९ :

कन्नौज से शत्रु का पलायन

सेनाओं ने कूच कर दिया और वे तीव्रगति से कन्नौज की ओर चल दीं। मालव सेना से हर्ष की वाहिनी का बल दूना हो गया था। बड़े-से-बड़े साम्राज्य को क्षण में विध्वंस करने की शक्ति उसको प्राप्त हो गई। शशांक-सा क्षुद्र राजा उसके सामने कहाँ तक ठहरता? जब उसे संवाद मिला कि हर्ष की विशाल सेना

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

सागर की तरह उमड़ ही चली श्रा रही है तो उसका हृदय काँप उठा। उसने अपने मंत्रियों एवं सेनापतियों से परामर्श लिया। वे सब इस विध्वंस के पक्षपाती नहीं थे। उन्होंने स्पष्ट सलाह दी कि कन्नौज से पलायन करना ही श्रेयस्कर है और इसी में सबका हित है। शशांक स्वयं भी भयभीत था। उसने कन्नौज के लोभ का त्याग करना ही अन्तिम निर्णय किया। रातों-रात उसने सेनाएँ एकत्र की। उसने राजमहल के कोष से जो कुछ लूटते बना लूटकर और अन्य उपयोगी वस्तुएँ एकत्र कर अपने सैन्य शिविर में भिजवा दीं। हर्ष की सेना अत्यन्त निकट पहुँच चुकी थी, अतः जो कुछ हाथ लगा, शीघ्रता से बाँध-बूंधकर शशांक ने सेना सहित कन्नौज से रात में ही प्रस्थान कर दिया।

प्रातःकाल सूर्योदय होते ही थानेश्वर की विशाल वाहिनी नगर में प्रविष्ट हुई। देखा तो शशांक की सेना का वहाँ कोई चिह्न तक न था। सभी समझ गये कि गौड़ नरेश भयभीत हो पलायन कर गया। सेनाओं ने आनन्द मनाया, चलो अच्छा हुआ। सैन्य-संहार हुए बिना ही शत्रु भाग गया। बिना प्रयास कन्नौज पर विजय प्राप्त हो गई। किन्तु हर्ष को अपने भ्रातृहन्ता से वदला लेने का अवसर न मिलने का खेद था। उन्होंने हृदय में यह निश्चय कर लिया कि कभी अवसर पड़ने पर वे शशांक का मान-मर्दन करेंगे।

कन्नौज पर अधिकार हो गया। प्रजा अपनी खोई हुई राजमहिषी राज्यश्री को पुनः पाकर बहुत प्रसन्न हुई। बहुत दिनों से जो नगर विभिन्न प्रतिद्वन्द्वी राजाओं के सैनिकों का गढ़ बना हुआ था, अब उसका वातावरण कुछ शान्त हुआ। हर्ष की आज्ञा से विशाल वाहिनी के शिविर नगर से बाहर लगाये गये जिससे नगर-वासियों को किसी प्रकार का कष्ट न हो।

कन्नौज की प्रजा अपने राजा ग्रहवर्मा की मृत्यु और निरन्तर बहुत दिनों से विभिन्न राजाओं की सेनाओं की परस्पर मार-काट एवं लूट-पाट से बहुत घबराई हुई और अशान्त थी। उसकी दशा चक्की के दो पुरों के बीच पिस रहे अन्न की तरह हो रही थी। उसे धैर्य दिलाना एवं शान्त करना हर्ष का प्रथम कर्त्तव्य था। युद्ध के अवसर पर अवसरवादी बहुत से उपद्रवियों ने नगर में काफी लूट-पाट मचा रखी थी। जनता का जीवन संकटापन्न था। वह त्राण पाना चाहती थी।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

हर्ष को इसी का प्रबन्ध करना था। किन्तु समस्या यह थी कि कन्नौज के सिंहासन का उत्तराधिकारी कौन हो? कोई दूसरा विजित प्रदेश होता तो हर्ष द्वारा उस पर अपना अधिकार कर लेना स्वाभाविक था। किन्तु बहनोई की मृत्यु के बाद अपनी बहन के राज्यसिंहासन पर बैठने के लिए वे तैयार न थे। या तो स्वयं राजकुमारी शासन-भार संभालतीं अथवा कोई दूसरा व्यक्ति। किन्तु हर्ष के लिए यह सम्भव न था कि वे बहन के राज्य पर अपना अधिकार जमावें। वे बहुत चिन्तित थे। इसके लिए उन्होंने दरबार बुलाया। ज़िसमें कन्नौज के मंत्रीगण, सामन्त, एवं राज्याधिकारियों के अतिरिक्त वहाँ की प्रजा के मुख्य प्रतिनिधि और प्रतिष्ठित नागरिकों को भी आमंत्रित किया। स्वयं राजकुमारी राज्यश्री भी दरबार में उपस्थित हुईं।

हर्ष खड़े हुए। उन्होंने नम्र वचनों से कहा—'प्रजाजन! मेरे बहनोई महाराज ग्रहवर्मा के दुःखद अवसान के बाद राज्य पर अनेक विपत्तियाँ आईं। राज्य के उद्धार के लिए मेरे ज्येष्ठ भ्राता तथा थानेश्वर के महाराज राज्यवर्द्धन की बलि भी चढ़ गई। फिर भी शत्रु कुछ दिनों तक यहाँ अधिकार जमाये बैठा रहा। प्रसन्नता है कि अब वह यहाँ का थोड़ा बहुत धन-माल लूटकर अपने देश को पलायन कर गया। समय आने पर उस दुष्ट के दुराचारों का मैं बदला अवश्य लूँगा किन्तु इस समय आवश्यक यह है कि कन्नौज की शासन-व्यवस्था सुदृढ़ की जाय, जिससे यहाँ की दुखी एवं अशान्त प्रजा सुख से अपना जीवन व्यतीत कर सके। भाई होने के नाते जो मेरा कर्त्तव्य था, किया। आपके राज्य की स्वामिनी को विन्ध्यवन से खोजकर आपके सामने प्रस्तुत कर दिया। अब इसकी भावी शासन-व्यवस्था के विषय में आप और आपकी स्वामिनी जैसा चाहें पूर्ण प्रबन्ध करें। जब तक कोई व्यवस्था नहीं होगी, मेरी सेनाएँ राज्य की रक्षा का प्रबन्ध करती रहेंगी और प्रबन्ध होते ही राज्य की सीमा से बाहर हो जायेंगी।

हर्ष के नम्र और निःस्वार्थ वचन सुनकर दरबार में उपस्थित सभी वर्ग बहुत प्रसन्न एवं गद्‌गद् हो उठे। सभी हर्ष के त्याग और निःस्वार्थ भाव की जी खोलकर प्रशंसा करने लगे। शशांक के पलायन के बाद हर्ष की सेनाओं द्वारा कन्नौज पर अधिकार किए जाने पर सभी प्रजा निश्चय कर चुकी थी कि हर्ष कन्नौज को अपने

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

शासन क्षेत्र में मिला लेंगे। किन्तु इस समय उनके निःस्वार्थ वचनों से सभी की धारणा भ्रान्त सिद्ध हुई। हर्ष के भगिनीप्रेम से सभी प्रभावित हुए

इसी समय भांडी बोलने के लिए खड़ा हुआ। उसने कहा—'यह सर्वविदित है कि महाराज हर्षवर्द्धन कभी भी स्च्वेछया अपनी बहन के राज्य का शासन भार अपने ऊपर लेने के लिए तैयार न होंगे। शास्त्रीय नियमों का भी यही आदेश है। किन्तु इस समय प्रजा को एक प्रभावशाली शक्तिशाली एवं राजनीति पटु शासक की आवश्यकता है। राजकुमारी राज्यश्री सांसारिक कार्यों से विरक्त हो रही हैं। उन्हें महाराज हर्षवर्द्धन किस प्रकार सती होने के निश्चय से हटा सके, आप लोग सुन चुके हैं। वे भजन, पूजन, सत्संग आदि में अपना समय व्यतीत करती हैं। इनके संतान या निकटवर्ती कोई सम्बन्धी भी नहीं है। ऐसी स्थिति में महाराज हर्षवर्द्धन के सिवाय कन्नौज की शासन-व्यवस्था संभालने के लिए कोई हमारे सामने प्रस्तुत नहीं है। मैं तो महाराज से ही आग्रह करूँगा कि इस विपत्ति के समय कन्नौज की डूबती नैया के वे ही उद्धारक बने। यही सर्वोचित है।'

भांडी के भाषण से सभी प्रजा प्रभावित हुई और कन्नौजाधिपति महाराज हर्षवर्द्धन की जय से एक बारगी सारा दरबार गूंज उठा। इतने में ही स्वयं राज्यश्री खड़ी हुई:—

बोली, 'मैं इतना जानती हूँ कि मेरे सती होने के संकल्प से मेरे भाई ने ही मुझे विरत किया। इन्होंने मुझे उपदेश दिया था कि राजा की संतान का कर्त्तव्य है कि वह अपने दुःखों एवं विपत्तियों की चिन्ता न कर प्रजा के कष्टों की ओर अधिक ध्यान दे। आज कन्नौज की प्रजा अनाथ है। मैं सती नहीं हुई यही बड़ी बात है। इन्होंने मुझे वचन दिया था कि मेरे भजन-पूजन में किसी प्रकार का व्यवधान न पड़ेगा। अब निश्चिन्त रूप से मुझे अपना शेष जीवन सत्संग में बिताने दीजिये। इसलिए राज्य के शासक के रूप में अब एकमात्र मेरे भाई ही हैं। यह निर्विवाद है। प्रजा के कष्टों की चिन्ता कर उन्हें यहाँ का शासन भार संभालना चाहिए। मैं अपनी ओर से उन्हें यह अधिकार देती हूँ। जनता को भी मुझमें और मेरे भाई में कोई अन्तर न समझना चाहिये। मैं समझती हूँ कि इस विषय में किसी का मतभेद भी न होगा।'

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

सभी चिल्ला पड़े—'हमें राजकुमारी जी का प्रस्ताव स्वीकार है । महाराज हर्षवर्द्धन हमारे प्रजा पालक बनें।'

इसके बाद दो एक और मंत्रियों एवं नगर-प्रतिनिधियों ने समर्थन में अपने मत व्यक्त किये और सभा में शान्ति छा गयी।

हर्ष बड़े संकोच में पड़े। क्या करें? उनकी बुद्धि में किसी प्रकार भी यह बात प्रवेश न कर पाती कि बहन के राज्य का उपभोग वे कैसे करें। बहन के घर का तो जल पीना भी शास्त्रों में निषिद्ध है। राज्य स्वीकार करना तो दूर की बात है। उन्होंने अन्त में यही निवेदन किया कि इस विषय पर विचार करने की उन्हें कुछ अवधि दी जाय। सभी ने उनकी यह इच्छा स्वीकार कर ली और तब दरबार विसर्जित कर दिया गया।

: २० :

हर्ष सम्राट् बने

रात्रिभर हर्ष विचार-निमग्न रहे। उनका हृदय किसी प्रकार भी बहन के राज्य पर अपना अधिकार कर लेने की सम्मति मान लेने को तैयार न हो रहा था। भांडी, बहन राज्यश्री एवं प्रजावर्ग द्वारा दिये गये तर्कों पर पर्याप्त विचार करने के बाद भी उनका चित्त इस ओर प्रवृत्त न हुआ।

दूसरे दिन उन्होंने इस सम्बन्ध में बौद्धधर्म के महागुरु अवलोकितेश्वर बोधिसत्त्व की सम्मति तथा सत्परामर्श लेने का विचार किया। कन्नौज के समीप ही एक तपोवन में अवलोकितेश्वर का आश्रम था। राजा सदलबल वहाँ जा पहुँचे। राजा के नम्रतापूर्वक प्रणाम कर ने के बाद बोधिसत्त्व ने उनका कुशल-क्षेम पूछा।

हर्ष ने हाथ जोड़कर कहा 'आचार्य की कृपा से कुशल है। इस समय मेरे राज्य में बहुत से झंझावात आ रहे हैं। धर्मगुरु से छिपा नहीं। कन्नौज राज्य मेरे बहनोई ग्रहवर्मा के अधिकार में था। किन्तु वे दुर्दैव से काल-कवलित हो गये।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

अब यह राज्यसिंहासन मेरी बहन का है। उनके कोई सन्तान भी नहीं है। वह स्वयं इसे ग्रहण करना नहीं चाहतीं। मैं किंकर्त्तव्यविमूढ़ हूँ। मुझे इस सम्बन्ध में उचित मार्ग दिखाने की कृपा करें। यही सविनय निवेदन है।'

अविलोकितेश्वर अत्यन्त गम्भीर स्वर एवं नम्र वचनों में बोले, 'प्रजापालन ही राजा का कर्त्तव्य है। यदि किसी अन्य राज्य का शासक अत्याचारी अथवा प्रजापीड़क हो तो उसके पड़ोसी कर्त्तव्यपालक राजा का धर्म है कि उससे बलपूर्वक राज्य अपहरण कर वहाँ शान्ति स्थापित करे। इसीलिये तो राजधर्म बतलाता है कि राजा को सदैव अपना राज्यविस्तार करने में प्रयत्नशील रहना चाहिये। जितने बड़े भूभाग का शासन एक ही शासक के हाथ में रहेगा, उतनी साम्राज्य में शान्ति बनी रहती है। छोटे-छोटे भूभागों पर अलग-अलग राजाओं का शासन होना जनहित के लिये घातक है। इसलिये राजा को निरन्तर राज्यविस्तार करते रहने की आज्ञा दी गई है। तुम्हारे बहनोई का राज्य इस समय अनाथ दशा में पड़ा हुआ है। तुम्हारा इस राज्य से कोई सम्बन्ध न भी हो तो भी कर्त्तव्यवश उसकी अनाथ दशा के कारण उसका शासन प्रबन्ध अपने हाथों में लेने का तुम्हें अधिकार था। अब तो, तुम ग्रहवर्मा के अत्यन्त निकट सम्बन्धी हो। राज्यभार तुम्हें ही लेना चाहिये। तुम राज्यकुल में उत्पन्न हुए हो। यह पूर्वजन्मों के सुकर्मों का ही फल है। देश में एक विशाल साम्राज्य की स्थापना करो। इसीमें तुम्हारा और प्रजा का कल्याण है।'

बोधिसत्त्व का बहुमूल्य उपदेश सुनकर उपस्थित राज्याधिकारी बहुत प्रसन्न हुए। बोधिसत्व ने उनके मनोनुकूल सम्मति दी थी। किन्तु हर्षवर्द्धन का हृदय चिन्तित हो उठा।

बोले, 'महागुरु का उपदेश शिरोधार्य है किन्तु यह राज्य मेरी बहन की सम्पत्ति है। शास्त्रों में बहन का जलग्रहण भी निषिद्ध है। इस प्रकार मुझे पाप का भागी तो न होना पड़ेगा।'

'तुम्हारा प्रश्न उचित है, राजन्! किन्तु यह आवश्यक नहीं कि कन्नौज के सिंहासन पर बैठकर ही तुम शासन करो। कन्नौज को बहन की धरोहर समझ कर उसका पालन करने में कोई आपत्ति नहीं।'

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

बोधिसत्त्व के इस उपदेश से हर्ष के चित्त को शान्ति मिली। उन्होंने धर्मगुरु की आज्ञा स्वीकार कर ली और दण्डवत् कर लौट आये। उन्होंने अपना परिवर्तित निश्चय लोगों को बतलाया। इससे समस्त राज्याधिकारी एवं प्रजा अत्यन्त सन्तुष्ट हुई। बहन की सम्पत्ति ग्रहण न करने के उनके निश्चय को अटल देखकर प्रजा धन्य-धन्य कर उठी।

शासन-सत्ता हर्ष ने संभाल ली और राज्य में फैली सारी अव्यवस्थाओं को दूर करना आरम्भ किया। अब उनके सम्मुख एक नई समस्या थी। कन्नौज राज्य बहुत विस्तृत था। उसकी पूर्वी सीमा मगध के आगे तक थी। इतने बड़े भूभाग का शासन थानेश्वर में बैठकर संचालित करना कठिन था। राजधानी का राज्य के मध्य में होना अनिवार्य होता है। तभी सम्पूर्ण राज्य की रक्षा और सुव्यवस्था सम्भव होती है। यही विचार उनके हृदय में उथल-पुथल मचाने लगे।

कन्नौज की स्थिति राजनीतिक दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण थी। ग्रहवर्मा के पूर्वज एक बहुत बड़े साम्राज्य का शासन करते थे, इसलिये राजधानी का महत्वपूर्ण होना स्वाभाविक था। सुरक्षा, सौन्दर्य, व्यापार प्रत्येक दृष्टि से कन्नौज थानेश्वर से बढ़ा-चढ़ा था और उसकी शक्ति थानेश्वर की अपेक्षा अधिक केन्द्रित थी।

हर्ष ने मंत्रियों से परामर्श किया। उन्होंने भी कन्नौज को राजधानी बनाये जाने के उनके विचार का हार्दिक समर्थन किया। बहन राज्यश्री से भी हर्ष ने इस सम्बन्ध में परामर्श लिया। वह नहीं क्योंकर करती? हर्ष ने तो बलात् उसे कन्नौज की स्वामिनी बना रखा था। वह तो अपने को भिक्षुणी से अधिक कुछ न समझती थी।

सब प्रकार से पूर्वादिक पक्षों पर विचार करने के बाद हर्ष ने राजधानी कन्नौज ले जाने का अन्तिम निश्चय कर लिया। हर्ष ने अपने लिये एक अलग विशाल भव्य राजभवन निर्मित करने का आदेश दिया। वे बहन के राजभवन का उपभोग नहीं करना चाहते थे। कन्नौज राज्य की सत्ता के लिये उन्होंने बहन का राज्य छोड़ दिया और सम्पूर्ण साम्राज्य के शासन संचालन के लिये अपना राजभवन अलग निर्मित कराना आरम्भ किया।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

आदेश मिलते ही सहस्रों कारीगर एक विस्तृत भूमि पर राजभवन के निर्माण में जुट गये। इस कार्य के निरीक्षण के लिये कुमारगुप्त को थानेश्वर से बुलाया गया। निर्माण-कार्य में तो कुमारगुप्त विश्वकर्मा ही थे। उसकी देख-रेख में राजभवन का निर्माण द्रुतगति से होने लगा। लगभग एक मास में भवन का एक भाग बन कर तैयार हुआ जिसमें राजा के निवास योग्य व्यवस्था हो गई। सम्पूर्ण बनने में तो उसे कई मास लगते। इसलिये अपने निवास की व्यवस्था के बाद राजा ने अन्य राज्याधिकारियों को अस्थायी काल के लिये, जब तक राजभवन और उससे सम्बन्धित अन्य राजकीय भवन बनकर तैयार न हो जायँ, नगर के अन्य भवनों में ठहराने का प्रबन्ध पूर्ण किया। राजा ने थानेश्वर से शासन सम्बन्धी समस्त विभाग कन्नौज मंगा लिये। महामंत्री शत्रुमर्दन की देख-रेख में थानेश्वर से राजधानी का सम्पूर्ण राजकीय सामान सैकड़ों वाहनों द्वारा कन्नौज लाया गया। हर्ष ने थानेश्वर की महत्ता भी घटने नहीं दी वरन् उसे एक प्रादेशिक राजधानी का रूप देकर पंजाब का शासन उसके अधीन कर दिया। केन्द्रीय राजधानी कन्नौज बन गई।

निर्माण-कार्य सम्पूर्ण होने पर सुन्दर भव्य विशाल राजदरबार में थानेश्वर का राजसिंहासन स्थापित किया गया। अब यह थानेश्वर का ही नहीं, सम्पूर्ण उत्तरी भारत का राजसिंहासन था। एक विशाल साम्राज्य उसकी सत्ता के अधीन था।

हर्षवर्द्धन ने यहीं सम्राट् की पदवी धारण की। एक दिन बड़े समारोह के साथ राजदरबार का विशाल आयोजन हुआ। थानेश्वर में राज्याभिषेक के बाद हर्ष का यह प्रथम दरबार था। इस दरबार में अब तक के विजित राजाओं, कन्नौज राज्य के अन्तर्गत मगध तक के सम्पूर्ण शासकों तथा थानेश्वर के अधीनस्थ राजा-महाराजाओं के अतिरिक्त हर्ष की प्रभुता मानने वाले राजाओं को भी निमंत्रित किया गया।

दरबार आरम्भ हुआ। दरबार के बीचोंबीच रत्न-सुवर्ण-जटित चमचमाते-जगमगाते भव्य राजसिंहासन पर महाराज हर्षवर्द्धन उसी प्रकार शोभायमान थे, जैसे इन्द्र-सभा में स्वर्गाधिपति देवराज इन्द्र। हर्ष के दोनों बगल महामात्य, सेनापति, विभिन्न मंत्रिगण, सामन्त एवं उच्च राज्याधिकारी यथायोग्य सुन्दर आसन

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

पर बैठे थे। सामने ही दोनों ओर दो कतारों में विभिन्न देशों के छोटे-बड़े राजा और सामन्तों के आसन थे। वे लोग नतमस्तक हो सम्राट् के प्रति बड़ा ही सम्मान अभिव्यक्त कर रहे थे। राजकुमारी राज्यश्री को इसमें विशेष रूप से आमंत्रित किया गया था। वे दरबार के ऊपर बने स्त्रियों के कक्ष में एक सुन्दर किन्तु सादे आसन पर बैठी थीं। इस दरबार में दिवाकर मुनि एवं अवलोकितेश्वर बोधि-सत्त्व को भी विशेष रूप से बुलाया गया था। उनके लिए राजा के दायीं ओर दो उच्चासन बने थे जिन पर दोनों महात्मा इन्द्रसभा के देवगुरु वृहस्पति और वशिष्ठ की तरह शोभायमान थे।

दरबार पूर्ण साजबाज से सुसज्जित था। दरबार के बाहर विशाल आंगन में पदाति एवं अश्वरोही सैनिकों के अनेक सशस्त्र दल सम्राट् के सम्मान में पंक्ति-बद्ध खड़े थे। इसी समय पुरोहित द्वारा शंखध्वनि के साथ कार्यक्रम आरम्भ हुआ। मन्त्रोच्चार से वैदिकों ने मंगलाचरण किया। इसके बाद पुरोहित ने महाराज हर्ष को नवीन सुन्दर वस्त्र धारण करने को दिये। सम्राट् के लिए राज्य के अनेक कुशल दर्जियों, जौहरियों और कशीदा काढ़ने वालों ने महीनों रातदिन जागकर उक्त वेशभूषा तैयार की थी। उसे पहिन कर महाराज की शोभा रात्रिमें जग-मगाने वाले असंख्य तारागणों से प्रकाशमान पूर्णचन्द्र की तरह हो गई। वस्त्र-धारण के बाद पुरोहित ने महाराज के मस्तक पर तिलक लगाया और तब नव-निर्मित रत्न-मणि-खचित राजमुकुट उन्हें पहनाया। तदुपरान्त पुरोहित ने ही उन्हें 'भारत-सम्राट्' पदवी से विभूषित किया। सारा दरबार 'हर्षवर्द्धन की जय !' पुकार उठा। दर्शकों के लिए उस समय बड़ी भव्य झाँकी थी।

हर्ष के सम्राट-पदवी ग्रहण करने के बाद विभिन्न राज्यों के राजा-महाराजाओं ने अपने-अपने राज्य की ओर से सम्राट को बहुमूल्य उपहार दिये। उपहारों में बहुमूल्य रत्न, मणि, जवाहर, हीरे, मोती के अतिरिक्त विभिन्न देशों की कारीगरी के सुन्दर-सुन्दर सामान भी थे जिन्हें देखकर सम्राट बहुत प्रसन्न हुए। राजा लोग क्रमशः सम्राट के सामने पहुँचते और झुककर अभिवादन करने के बाद अपने देश का उपहार भेंट करतें। सम्राट द्वारा उन उपहारों को स्पर्श कर जब लेते तो सेवक उन्हें एक ओर सजाकर रख देते।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

इन्हीं उपहारों में दो महाराजाओं ने विचित्र एवं अनोखे उपहार दिये। इन दोनों ने उपहार भेंट करते समय निवेदन किया—'हमारे देश का असली उपहार तो दूसरा है, यह तो उसका श्रृंगार मात्र है। हम सम्राट की सेवा में एक बहुमूल्य एवं उपयुक्त उपहार समर्पित करना चाहते हैं।'

सम्राट ने मुस्कुराकर आश्चर्य से पूछा—'किन्तु वह है कौन-सी वस्तु ? उसे भी सामने लाओ।'

'वह डोली में बन्द है श्रीमान् ! वह आपके अन्तःपुर की शोभा बढ़ायेगी। आज्ञा हो तो उसे वहीं भेज दिया जाय।'

सम्राट समझ गये। कुछ झिझके। फिर वृद्ध सेनापति सिंहनाद एवं अन्य मंत्रियों की ओर देखा। उन्होंने कहा—'सम्राट के लिए सम्मान एवं शोभा की वस्तु ही होगी श्रीमान् ! अच्छा है कि सम्राट पद ग्रहण करते ही आपको साम्राज्ञी की भी उपलब्धि हो गई।

हर्ष ने ऊपर बहन राज्यश्री की ओर देखा। उसने भी प्रसन्नतापूर्वक स्वीकृति-सूचक सिर हिलाया। सम्राट ने संकोचपूर्वक धीमे स्वर में कहा—'हमें स्वीकार है।' और मंत्री की ओर संकेत किया। मंत्री ने उठकर दोनों डोलियों को अन्तःपुर भेजने की व्यवस्था कर दी, जिनका उसी रात्रि में समारोहपूर्वक शास्त्रीय विधि-विधान के अनुसार सम्राट ने पाणिग्रहण कर लिया। सम्राट पदवी ग्रहणोत्सव के साथ-साथ विवाहोत्सव का कार्य भी उसी दिन बड़ी धूमधाम से सम्पन्न हुआ जिसमें देश-प्रदेश से आगत समस्त राजाओं ने भी भाग लिया। सम्राट अभी तक अविवाहित थे। इसलिए एक बहुत बड़ी कमी की इस समारोह में पूर्ति हो गई।

अस्तु उपहार समर्पण विधि के बाद हर्ष के विधिवत् भारत-सम्राट होने की घोषणा की गई और उसी के बाद उनकी पूर्व घोषित दिग्विजय की सूचना भी दोहराई गई, जिसमें समस्त राजाओं को कर देने अथवा शस्त्रधारण करने के लिए तैयार हो जाने की चेतावनी दी गई और तब दरबार विसर्जित किया गया।

समारोह के आनन्दोपलक्ष्य में ब्राह्मणों, गरीबों एवं भिक्षुओं को राज्य के कोषागार से मुक्तहस्त दान दिया गया। निर्धन को पर्याप्त धन, वस्त्रहीन को स्वेच्छित

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

वस्त्र, सुवर्ण चाहने वाले को सोना और भिक्षुओं को पेट भर-भर कर स्वादिष्ट भोजन ! हर्ष का यह प्रथम दानोत्सव था।

सम्राट होने के साथ ही हर्ष ने अपना एक मंत्रिमंडल निर्माण किया। उन्होंने अपने ममेरे भाई भांडी को प्रधान सचिव नियुक्त किया। प्रधान मंत्री शत्रुमर्दन अधिक वृद्ध थे और बहुत दिनों से अवकाश के इच्छुक थे। अतः यह पद हर्ष ने भांडी को दे दिया। प्रधान सचिव के अधीन अन्य मुख्य मंत्रियों का दल था। संधि-विग्रहिक (परराष्ट्र मंत्री) के पद पर अवंति नामक राजपरिवार का एक विश्वस्त पुरातन व्यक्ति नियुक्त हुआ। इसी के द्वारा सम्राट ने दिग्विजय की घोषणा प्रसारित कराई थी। प्रधान सेनापति पद पर सिंहनाद को पुनर्नियुक्त किया गया। सम्राट उसकी युद्धनीति से बहुत प्रभावित थे अतः उसे उक्त पद से हटाना नहीं चाहते थे। गज सेना के सेनापति स्कन्दगुप्त थे ही, उन्हें वही पद दिया गया। अश्वारोही सेना-नायक पद पर कुन्तल को नियुक्त किया गया। इसी प्रकार विभिन्न पदों पर सुयोग्य व्यक्तियों को नियुक्त कर हर्ष ने शासन की बागडोर सुदृढ़ता से संभाली।

——:०:——

: २१ :

हर्ष की न्यायप्रियता

रात आधी बीत चुकी थी। चारों ओर चाँदनी की चादर बिछी थी। तारे टिमटिमा रहे थे। राजभवन के मुख्य द्वार से दो व्यक्ति बाहर निकले। दोनों में एक युवा, तेजस्वी रूप, साफ-सुथरे किन्तु सादे वस्त्र पहिने। दूसरा कुछ अधेड़, मुंह पर नम्रता एवं दासता के भाव, लम्बा जामा एवं चूड़ीदार पाजामा पहिने। द्वार पर नियुक्त प्रहरी ने युवक को झुककर प्रणाम किया और मार्ग छोड़कर आगे से हट गया। दोनों बाहर निकल गये। प्रहरी ने पुनः द्वार बन्द कर लिया।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

थोड़ी दूर चलने के बाद दोनों राजमार्ग से हटकर एक सकरी गली में घुस गये। सामने ही तीन-चार व्यक्ति बातें करते आगे-आगे जाते हुए मिले। ये दोनों उनकी बातें सुनने लगे।

एक कह रहा था—'उसने मुझसे कहा, या तो दो दिनों में एक सहस्र मुद्राएँ ला दो नहीं तो......' वह कहते-कहते रुक गया।

'तो क्या? बताओ, हम भी सुनें।' दूसरा बोला। उनमें से यह कुछ वृद्ध था।

'तो क्या दादा! वह इतना नीच है कि उसको इस बुढ़ौती में भी लाज-हया नहीं। कहता है, अपनी कन्या का ब्याह मुझसे कर दो। बताइये, एक सहस्र के बदले अपनी कन्या बेच दूँ। मैंने पहिले तो उससे विनय की कि कुछ दिन और ठहरें, मैं उक्त ऋण की कौड़ी-कौड़ी चुका दूंगा। किन्तु जब उसने यह प्रस्ताव किया तो मैं क्रोध से उबल पड़ा और दो-चार जली-कटी सुनाकर वहाँ से लौट आया। मेरी बातों से अपना अपमान समझ कर वह मुझे अब हथकड़ियाँ पहिनाये बिना न छोड़ेगा।'

'हाँ, है तो महानीच! उसने अपने जीवन में कौन-सा पाप न किया होगा। ईश्वर भी तो ऐसे पापियों के लिये ऐश्वर्य का द्वार खोल देता है। अटूट धन है उसके पास। फिर भी एक सहस्र के लिये मरा जा रहा है।' तीसरे ने हाँ में हाँ मिलाई।

'सुना है, वह राजा के यहाँ मुझ पर मुकदमा चलायेगा और मुझे कड़ा दंड दिलायेगा। राजा भी बहुत कड़ा है। कहीं राजा ने भी उसका पक्ष लेकर मुझ गरीब को कारागार में बन्द कर दिया तो मैं तो बेमौत मारा जाऊँगा। मेरे छोटे-छोटे बच्चे भूखे मर जायँगे। तुम कोई उपाय बताओ दादा!' दीन स्वर में वह बोला।

'लेकिन यह राजा सुना है बड़ा न्यायवादी है। बिना समझे-सोंचे किसी मुकदमे का फैसला नहीं करता। पहिले पूरी जाँच-पड़ताल करवाता है।' दादा ने आश्वासन देते हुए उत्तर दिया।

'सुना तो है किन्तु यह धनिक झूठे गवाह बनाकर जो राजा के सामने ला खड़ा करेगा। बड़ों-बड़ों तक उसकी पहुँच है। प्रमादक नगर का सबसे बड़ा रईस है। वह चाहे तो बड़ों-बड़ों को सीधा कर दे। राजा तक उसकी पहुँच अवश्य होगी।'

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

'कुछ भी हो, यह राजा अन्याय नहीं करेगा, ऐसा मुझे विश्वास है। पहुँच होने से क्या होता है। आगे ईश्वर का भरोसा रखो। वह सच्चों की सहायता करता है।' दादा का घर आ चुका था। वह रुक कर बोला।

'तो फिर कल मैं आपके पास आऊँ। आप कल मेरे साथ राजभवन चलने का कष्ट करिये। एक वार मैं महासामन्त के कानों में अपनी करुण गाथा डाल देना चाहता हूँ।'

'ठीक है।' और वह घर की सीढ़ियाँ चढ़ने लगा।

शेष तीनों एक दूसरी गली की ओर मुड़ गये।

'यह प्रमादक कौन है प्रचक्षण?' युवक ने साथी से पूछा।

'नगर का सर्वमान्य धनिक यही है महाराज! इसने सोने-चाँदी के टुकड़ों के वल पर आधा नगर खरीद रखा है।'

'हूँ! तो इन लोगों के कथनानुसार यह नगर का प्रसिद्ध अत्याचारी और अधम मनुष्य है?'

'हाँ महाराज! इसके अत्याचारों से नगर का वच्चा-वच्चा परिचित है। धन दिखा कर किसी की कन्या खरीद लेना तो उसका साधारण काम है।' प्रचक्षण वोला।

'ठीक है, तो कल ही उसके अत्याचारों का भंडा फूट भी जायगा।' उसने कहा और चुप हो गया।

कहने की आवश्यकता नहीं कि उक्त युवक के रूप में महाराज हर्ष के अतिरिक्त और कोई नहीं था। रात्रि में प्रजा के सुख-दुःख की परिस्थिति का ज्ञान करने नगर-भ्रमण के निमित्त वे निकले थे। इसीलिये तो प्राचीन भारत के राजाओं का प्रजाप्रेम अलौकिक माना जाता है।

अनेक बाजारों-गलियों में रुकते, लोगों की वातें सुनते घूमते-घामते महाराज नगर की सीमा पर आ पहुँचे। यहाँ कुछ एकान्त था। कहीं-कहीं छिटपुट दूर-दूर थोड़े से मकान थे। शेष सब मैदान ही मैदान। यहीं दक्षिण-पश्चिम में कुछ दूर महादेवी का एक छोटा-सा मन्दिर था किन्तु था वड़ा प्रसिद्ध। महाराज मन्दिर का दर्शन करने वहाँ जा पहुँचे। मन्दिर के पास ही एक पर्णकुटी थी। एक वाल-

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

ब्रह्मचारी वैरागिन की थी वह कुटिया। गर्मी के दिन थे। वैरागिन अपनी कुटिया के बाहर ध्यानमग्न थी।

दूर से ही इन दोनों को आते देख बोली, 'आओ राजन्! तुम इस समय कहाँ ?'

हर्ष अचम्भे में पड़ गये कि इसे उनका परिचय कैसे मालूम ? गुप्त वेश में में भी उसने इन्हें कैसे पहचाना ? राजा के लिये पहेली बन गई।

प्रणाम कर समीप जा पहुँचे। बोले, 'माँ, राजा का कर्त्तव्य पूरा कर रहा हूँ। मुझे कुछ आज्ञा दीजिये।'

'राजा का कर्त्तव्य बड़ा कठिन है हर्ष! उसके लिये कुछ और कठोर बनना होगा। भावुकता का त्याग किये बिना शासक बनना कठिन होता है, समझे!'

'हाँ माँ!' हर्ष के मुख से इतना ही निकला।

'देखते नहीं, तुम्हारे राज्य में चारों ओर अत्याचार, अनाचार फैल रहे हैं। बलवान् निर्बल को सताते हैं। उनका रक्त चूसते हैं। डाकू, बदमाश, लुटेरे अपना साम्राज्य बना रहे हैं। उनका अंत किये बिना तुम्हारा कर्त्तव्य पूरा कहाँ से और कैसे हो सकता है ?'

'नगर में लुटेरे, और डाकू अपना साम्राज्य बना रहे हैं ? मैंने अभी तक नहीं सुना, आश्चर्य है !'

'लोगों में इतना आतंक है कि वे अपनी शिकायत राजा तक पहुँचाने में भय खाते हैं। कई शत्रुओं के चंगुल में फँसते रहने के कारण प्रजा शंकित हो गई है कि कहीं तुम उनके साथ अन्याय न करो। उनका तुम्हारे न्याय, सत्य, एवं कर्त्तव्य-पालन पर विश्वास नहीं जम पाया। तुम्हें ऐसे कार्य करने होंगे जिससे वह तुम पर विश्वास करें।'

'माँ, तो इस कार्य में मुझे आप शक्ति दें, मार्ग दिखलायें और बतायें, मैं क्या करूँ ?'

'तुमने प्रमादक के अत्याचारों का अन्त करने का जो निश्चय किया है, वह ठीक है। इससे जनता को बहुत कुछ विश्वास होगा। इसी प्रकार अन्य अत्याचारियों का भी निष्पक्षता एवं निर्भीकता पूर्वक विनाश करो। तुम्हारे राज्य में

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

चोरी-डकैती का लेश न रहे । प्रजा निर्भीक हो अपने कर्त्तव्य पालन में लगे, ऐसा प्रयत्न करो ।'

राजा तो उसके चरणों पर गिर पड़े । प्रमादक की बात उन्होंने अपने मन में ही सोची थी। अंगरक्षक प्रचक्षण के अतिरिक्त उस रहस्य को कोई जानता तक न था और तपस्विनी ने स्वत: सब बातें जान लीं । वे समझ गये कि तपस्विनी पूर्ण सिद्ध है ।

तपस्विनी ने कहा, 'उठो, इस समय दूसरा कर्त्तव्य है । प्रमादक के घर पर ही आज रात को इसी समय सशस्त्र डाकुओं का दल डाका डालने गया है । प्रमादक की रक्षा करो ।'

'उसी अत्याचारी के यहाँ ?' राजा ने सावधान होते हुए पूछा ।

'हाँ, अत्याचारी को उसका दण्ड बाद में देना । इस समय प्रजा पालन की दृष्टि से डाकुओं से उसकी और उसके धन की रक्षा आवश्यक है । कर्त्तव्यों की भिन्नता के रहस्य को समझना ही बुद्धिमत्ता है। जाओ, डाकुओं को रँगे हाथ पकड़ो ।'

'जो आज्ञा ।' राजा दण्डवत् कर जाने लगा ।

तपस्विनी ने पुनः कहा, 'वहाँ तक पहुँचने में एवं राजभवन से सैनिकों को लाने के लिए पैदल जाने में इतना समय लग जायगा कि तबतक डाकू अपना काम कर चल देंगे। यह सामने पेड़ में एक घोड़ा बँधा है । मन्दिर में एक यात्री मेरा अतिथि होकर ठहरा है, उसी का है । तुम ले जाओ । प्रातः पहुँचवा देना ।' और वह पुनः ध्यानस्थ हो गई ।

राजा ने अंगरक्षक को संकेत किया । वह घोड़ा खोल लाया । दोनों उस पर बैठ गये और वायुवेग से समीप की एक सैनिक चौकी पर पहुँचे । सैनिक राजा को न पहचान सके । अंगरक्षक ने तत्काल घोड़े से उतर कर चौकी के नायक को सब बातें बताईं । अब तो सैनिक हड़बड़ा कर उठ बैठे । नायक ने बाहर आकर सम्राट को झुककर प्रणाम किया ।

'तुरंत तैयार हो जाओ ! प्रमादक का भवन घेर लो । चलो ।' सम्राट ने तीव्र स्वर में आदेश दिया । उनका घोड़ा दौड़ने के लिए उछल रहा था ।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

'जो आज्ञा।' नायक अन्दर गया और देखते-देखते लगभग बीस घुड़सवार सैनिक बाहर आ गये। दूसरे ही क्षण अश्वारोहियों का विशाल दल सड़क पर दौड़ता नज़र आने लगा।

प्रमादक का भवन घेर लिया गया। डाकू अबतक भवन में घुस चुके थे। सम्राट की आज्ञा से कुछ सैनिकों को छोड़कर शेष उनके साथ भवन में प्रविष्ट हुए। भवन के प्रहरी ने रोकना किन्तु चाहा जब उसे मालूम हुआ कि उसके घर डकैती हो रही है और स्वयं सम्राट भवन की रक्षा करने को पधारे हैं, तो वह सुनकर घबरा गया। उसने झुककर प्रणाम किया और दौड़कर अपने स्वामी को जगाने चला। परन्तु सैनिकों ने रोक दिया। कहा, 'शोर होने से डाकू भाग जायेंगे।'

प्रहरी आज्ञा पाकर चुपचाप वहीं खड़ा हो गया। सम्राट आगे बढ़े। सामने सीढ़ियाँ थीं। एक सैनिक को उन्होंने वहीं नियुक्त किया और ऊपर चढ़ने लगे। सभी लोग बहुत धीरे-धीरे बढ़ने लगे ताकि डाकुओं की टोह लग सके।

डाकुओं ने सब जगह के दीपक बुझा दिये थे। चन्द्र अस्त हो चुका था। चारों ओर गहरा अन्धकार था। चलते-चलते सैनिक उन दीपकों को पुनः जलाते जा रहे थे जिससे सर्वथा प्रकाश होता जा रहा था।

सीढ़ियाँ पार कर उन्होंने भवन के कई भागों का चक्कर लगाया किन्तु जब डाकू कहीं नजर न आये तब घूमकर प्रमादक के शयनकक्ष की ओर बढ़े। शयनकक्ष के बगल वाले कमरे में ही सम्भवतः तिजोरी थी। शयनकक्ष की ओर वे दो पग बढ़े ही थे कि उनकी दृष्टि अन्धकार में कुछ हिलती हुई छाया पर पड़ी। हर्ष ने एक सैनिक को हाथ से संकेत किया कि तुम दीपक जलाओ और हम लोग छिपकर उन्हें देखते हैं।

सम्राट सहित सभी सैनिक एक दीवार के पीछे हो गये। सैनिक ने भी उस दीवार के पीछे दीपक जलाया और धीरे से उसे दीवार से हटाकर आगे रख दिया ताकि सामने प्रकाश हो जाय।

अचानक दीपक जला कि सामने का दृश्य स्पष्ट दीखने लगा। दीपक से डाकू सतर्क हो चुके थे। वे भी दूसरी दीवार के पीछे छिप गये। सम्राट ने चाल चली। उस सैनिक के कान में समझाया कि तुम अकेले दीपक लेकर उस

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

और बढ़ो और हम लोग दूसरी ओर से अंधकार में छिपे-छिपे वहाँ पहुँचते हैं, जहाँ वे छिपे हैं।

ऐसा ही हुआ। ज्यों-ज्यों प्रकाश समीप हो रहा था, डाकू दीवार के पीछे हटने का प्रयत्न करने लगे किन्तु जब उन्होंने देखा कि दीपक लिये अकेला मनुष्य आ रहा है तो उस पर झपट पड़ने का निश्चय किया। इधर सम्राट दूसरी ओर से पहुँच कर डाकुओं के बहुत निकट आ गये। संकेत पाकर अचानक उनके पीछे के सैनिक ने भी दीपक जलाया। सारा स्थान जगमगा उठा। डाकू पाँच थे। प्रकाश देखकर भागने का प्रयत्न करने लगे।

'सावधान!' सम्राट ने कहा, 'भागने का प्रयत्न मत करो।'

'भागने का प्रयत्न व्यर्थ है।' एक डाकू की पीठ में भाले की नोक चुभा कर नायक बोला। 'स्वयं सम्राट तुम लोगोंको गिरफ्तार करने आये हैं। भागने से दण्ड में वृद्धि ही होगी।'

डाकू सहम गये। उनके मुख मलीन एवं भयभीत हो गये। अवसर पाकर सैनिकों ने उन्हें घेर लिया। डाकुओं ने भयवश शस्त्र रख दिये और बिना मुकाबला किये आत्मसमर्पण कर दिया। सैनिकों ने डाकुओंके हाथों में हथकड़ियाँ पहिना दीं।

डाकुओं को गिरफ्तार कर सम्राट नीचे आये। भवन का वातावरण अभी तक शान्त था। बिना किसी शोर और बिना शस्त्र प्रयोग किये ही केवल प्रभाव एवं बुद्धिबल से जनता के लिये महासंकट स्वरूप वे भयानक डाकू पकड़े गये।

सम्राट बहुत प्रसन्न हुए। उनका हृदय उस तपस्विनी को अत्यन्त धन्यवाद दे रहा था और अपने को उसका बड़ा ही कृतज्ञ मान रहा था।

नीचे आकर सम्राट ने भवन के प्रहरी को आदेश दिया 'प्रातः अपने स्वामी को राजभवन भेज देना किन्तु स्मरण रहे——उन्हें इस घटना का बिलकुल ज्ञान न हो।'

प्रहरी ने मस्तक झुकाकर आज्ञा शिरोधार्य की। और सम्राट डाकुओं को सैनिकों के हवाले कर स्वयं अंगरक्षक के साथ राजभवन की ओर चले गये।

राजभवन में आकर सम्राट ज्योंही अपने शयनकक्ष की ओर बढ़े कि सामने ही एक दासी टकरा गई। यह दासी राजा की अन्य दासियों से अधिक मुंहलगी थी। राजा भी उसे मानते थे। नाम था उर्वशी।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

झुककर बोली, महाराज 'इस समय कहाँ ?'

'और तू इस समय क्या कर रही है ?'

'अचानक नींद खुली। रात कितनी बाकी है, देखने बाहर निकली और महाराज का शयनकक्ष झांका। वहाँ श्रीमन्त को न देखकर इधर-उधर खोजने लगी।'

'गये थे नगर भ्रमण में। अब रात कितनी घड़ी शेष है ?'

'चार घड़ी श्रीमन्त ! किन्तु और कभी तो रात में नगर-भ्रमण के लिये महाराज नहीं गये !'

'किसी के बंधे हुए हैं क्या ? जा बहस मत कर। चुपचाप सो जा !' राजा शयनकक्ष में घुसे।

'अब सोऊँगी थोड़े ही। प्रातःकाल होने में अब देर ही क्या है ?' और इठलाती हुई वहाँ से चली गई।

प्रातःकाल नित्यकर्म से निवृत्त होकर सम्राट ने प्रधान सचिव भांडी को बुलाया। उसे रात की घटनाएँ सुनाईं। सुनकर वह अचम्भे में रह गया।

'अब राज्य-संचालन बहुत सतर्क होकर करना होगा भांडी, तभी जनता में हमारा विश्वास जम पायेगा। अभी तक प्रजा में काफी असन्तोष है।'

'मेरे विचार से वह कोई वनदेवी होंगी।'

'कुछ भी हो, उन्होंने मेरी आँखें खोल दीं। मैं बहुत ठोकरें खाने के बाद सचेत होता जब कि उस तपस्विनी ने अभी सतर्क कर हमारा बहुत बड़ा लाभ किया। उस वनदेवी के लिये एक सुन्दर आश्रम बनवाने का तत्काल आदेश दो। मन्दिर का भी का भी जीर्णोद्धार होना चाहिये।

भांडी आज्ञा पाकर जाने लगा। सम्राट ने कहा, 'देखो, प्रमादक आया हो तो दरबार में भेज दो। हम दरबार में जा रहे हैं।' और भांडी को भेजकर सम्राट दरबार की ओर चल पड़े।

दरबार प्रजा की भीड़ से खचा-खच भरा था। लोग इसलिये भी अधिक संख्या में आये थे कि मुकदमे की कार्यवाही से उन्हें दिलचस्पी होती। कारण, नये सम्राट

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

की न्यायप्रियता जानने की जनता को बहुत उत्सुकता थी। सम्राट की ओर से भी मुकदमों के समय साधारण जनता को दरबार में आने की छूट दी गई थी।

सम्राट के आते ही दरबार का सारा कोलाहल बन्द हो गया। उपस्थित सभी लोगों ने झुककर सम्राट का अभिवादन किया। सम्राट सिंहासन पर जा बैठे।

उन्होंने सचिव से पूछा, 'प्रमादक उपस्थित है?'

'हाँ श्रीमन्त!' भांडी ने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया।

'सामने उपस्थित किया जाय।' राजा ने आज्ञा दी।

भांडी के संकेत से एक सेवक गया और प्रमादक को उसने सम्राट के सामने उपस्थित होने को कहा। प्रमादक पहिले ही बहुत घबराया हुआ था। न जाने क्यों सम्राट ने स्मरण किया? उस काल में किसी को सम्राट या राजा बुला भेजे तो मानो उसके सिर पर काल ही नाचने लगता था। वास्तव में उस बेचारे को अपनी असम्भावित भावी दशा का कुछ भी ज्ञान न था और न सम्भावना या आशा ही। बड़ी नम्रता से सामने आया। झुककर हाथ बाँधकर सामने खड़ा हो गया।

भांडी ने कहा, 'श्रीमन्त! प्रमादक उपस्थित है।'

हर्ष ने उसकी ओर देखा। वास्तव में उसके मुख पर नीचता और पैशाचिकता नाच रही थी। उन्होंने पूछा, 'तुम्हारा ही नाम प्रमादक है?'

'जी हाँ श्रीमन्त! इस सेवक को ही प्रमादक कहते हैं।'

'नगर में तुम्हारा क्या व्यापार होता है?' राजा ने प्रश्न किया।

'देश-प्रदेश से माल मंगाना और भेजना, यही मुख्य व्यापार है श्रीमन्त! वैसे मैं वस्त्र का व्यापारी हूँ।'

'अबतक कितना धन कमाया है?'

'अपने जीवन में १५–२० लाख, वैसे पुरखों की कमाई तो काफी है श्रीमन्त!'

'कुल कितनी हैसियत है?'

प्रमादक स्पष्ट बताने में कुछ झिझका। किन्तु भयवश सत्य-सत्य बताना पड़ा। बोला, 'दो करोड़ श्रीमन्त! मेरा खर्च भी बहुत अधिक है श्रीमन्त!'

'यह तो हमने प्रश्न नहीं किया, हमें तुम्हारी हैसियत जाननी थी, बस!'

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

और फिर कुछ रुककर बोले, 'तुम्हें मालूम है कि कल रात तुम्हारे यहाँ डाकुओं का हमला हुआ था ?'

'डाकुओं का हमला ?' वह घबरा कर आश्चर्य से बोला, 'नहीं श्रीमन्त ! मुझे कुछ भी ज्ञान नहीं ।' वह थर-थर काँपने लगा ।

'हाँ तुम्हें इसका ज्ञान नहीं होगा । तुम्हारे यहाँ कल रात पाँच सशस्त्र डाकू घुसे जिन्हें ठीक अवसर पर हमने स्वयं गिरफ्तार किया ।'

वह भौचक्का-सा चुपचाप सम्राट की ओर ताकता रहा ।

'और तुम्हारे धनमाल की रक्षा की अन्यथा कल तुम्हारा सर्वस्व लुट गया होता । तुम्हारी जीवन भर की पाप की कमाई, अत्याचार, अनाचार की कमाई, सब विनष्ट हो जाती ।'

वह तो और भी कांपने लगा ।

'डाकुओं को क्या दण्ड दिया जाय ? तुम बताओ ।' राजा ने ताने से पूछा ।

'मैं साधारण व्यक्ति होकर न्यायशास्त्र के गूढ़ रहस्य को क्या जानूं ? किन्तु श्रीमन्त ! यहाँ के प्राचीन शासक डाकुओं को प्राणदण्ड देते थे ।'

'ठीक है । डाकुओं के लिये दूसरे का धन अपहरण करने के लिये प्राणदंड है, किन्तु डाकू भी दो तरह के होते हैं । एक वे जो स्पष्ट डाका डालते हैं । दूसरे वे होते हैं, जो अत्याचार, अनाचार द्वारा गरीब जनता का धन लूटते हैं । वे भी डाकू ही हैं । तुम्हारे लिये क्या दण्ड होना चाहिये ?'

'नहीं श्रीमन्त ! नहीं, मैंने कोई अपराध नहीं किया । मैं श्रीमान् की बातों का अर्थ नहीं समझ पाया ।'

'अभी समझ में आ जायगा ।' और राजा ने सचिव की ओर देखा, 'बुलाओ उन चारों को ।'

सम्राट की आज्ञा से उन लोगों को भी सैनिक उनके घर जाकर बुला लाया था । भांडी को भी सैनिक उनके घर जाकर बुला लाया था । भांडी ने उन्हें बुलाया । ये चारों वही थे, मार्गभ्रमण में सम्राट ने जिनकी बातें सुनी थीं । वे लोग सामने आकर झुककर हाथ बाँधे खड़े हो गये ।

'इन्हें पहचानते हो ?'

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

'जी हाँ श्रीमन्त ! किन्तु एक को !' उनमें से युवक की ओर संकेत कर उसने कहा ।

'इसपर तुम्हारा कुछ ऋण है ?'

'नहीं श्रीमन्त ! नहीं, हाँ श्रीमन्त ! हाँ श्रीमन्त हाँ ! एक सहस्र मुद्राएँ इसने मुझसे ली थीं । अब देता नहीं ।' उसकी वाणी कांपने लगी ।

'यदि तुम्हारा धन लौटाने में यह असमर्थ हो तो तुम उसके वदले में इससे क्या चाहोगे ?'

वह मौन रहा । उसकी आँखें कातर हो गईं ।

'तुम बताओ ।' युवक की ओर देखकर सम्राट ने कहा ।

'श्रीमन्त ! इसने कहा था, अपनी कन्या मुझे दे दो तो तुम्हारा ऋण छोड़ दूंगा ।'

'क्या यह सत्य है ?' राजा ने प्रमादक से डपटकर पूछा ।

'बिल्कुल असत्य श्रीमन्त ! मैंने ऐसा कभी नहीं कहा । यह बिल्कुल झूठ बोलता है ।

'तुम्हारा मलिन चेहरा कहता है कि तुमने ऐसा कहा । तुमने आज तक कई कन्याओं का जीवन बिगाड़ा है । नीच ! इस बुढ़ौती में भी कामवासना नहीं गई । हमारे पास प्रमाण है । स्वयं स्वीकार कर लो अन्यथा बड़े कठोर दंड के भागी होगे ।'

वह बहुत भयभीत हुआ किन्तु पुनः बोला, 'क्षमा हो श्रीमन्त ! किन्तु मैंने यह अपराध नहीं किया ।'

'सारी जनता प्रमाण है । तुम्हारे अत्याचारों से सभी प्रजा त्रस्त है ।' राजा ने लोगों की ओर देखा, 'क्यों, तुम लोगों को भी इसने सताया है ?'

'हाँ महाराज ! हाँ श्रीमन्त !-! जी हाँ श्रीमान् ! ! !' चारों ओर से लोग बोल पड़े । इसे दण्ड मिलना चाहिये ।'

'सुना तुमने ?' राजा बोले, 'जनता तुम्हें फूटी आँखों नहीं देखना चाहती । प्रमादक, सुनो ! तुमने जो-जो अत्याचार किये हैं उसका लेखा-जोखा तैयार हो

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

रहा है। तुम्हें इसका बहुत कड़ा दण्ड मिलेगा। फैसला होने तक तुम्हें कारागार में रखा जायगा।'

सम्राट ने संकेत किया। सैनिकों ने आकर प्रमादक को पकड़ लिया और घेरकर कारागार में ले चले। प्रमादक की शक्ल रुआँसी हो रही थी। उसे कभी स्वप्न में भी आशा न थी कि उसके साथ कभी भी ऐसा व्यवहार हो सकता है।

उसके बाद सम्राट ने डाकुओं का मुकदमा आरम्भ किया। डाकू कारागार से दरबार में लाये गये। उनके हाथों-पैरों में हथकड़ियाँ-बेड़ियाँ थीं।

'तुम लोगों ने कल रात प्रमादक के यहाँ डाका डालने का प्रयत्न किया?' सम्राट ने पूछा।

डाकुओं ने स्वीकृतिसूचक सिर हिला दिया।

'जानते हो, इस अपराध का दण्ड क्या है?'

'प्राणदंड श्रीमन्त!' एक ने भयपूर्वक कहा।

'तो इसके लिए तुम लोग तैयार हो?'

डाकू थर-थर काँप उठे। उत्तर ही क्या देते? किन्तु एक ने जरा हिम्मत कर आगे बढ़कर कहा, 'क्षमा हो देव! इस बार अपराध क्षमा हो।'

'डाकू के लिए कोई क्षमा नहीं! तुमने डाका क्यों डाला?'

'हम गरीब हैं श्रीमन्त! उसके पास अटूट खजाना है फिर भी किसी को एक कौड़ी देने मे उसके प्राण निकलने लगते हैं।'

'गरीब थे तो हमसे धन माँगते। अत्याचारी के अत्याचार के प्रति राजा के यहाँ शिकायत की होती। तुम्हे किसी का धन छीनने का कोई अधिकार नहीं। प्रमादक को उसके अत्याचारों का पूरा दण्ड मिलेगा किन्तु तुम लोग भी दण्ड से बच नहीं सकते।'

डाकुओं ने मस्तक नीचा कर लिया।

'इन सभी को प्राण दण्ड दिया जाय। आधा जमीन में गाड़कर कुत्तों से नुचवा दो। तब कभी कोई ऐसा अपराध करने का दुःसाहस न करेगा।'

इतना भयानक दंड सुनकर उपस्थित जनता तक के कलेजे काँप गये।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

डाकू तो मानो वहीं मृतप्राय हो गये। और सम्राट सिंहासन से उठे, 'इन्हें इसी समय बाजार के मध्य में दंड दिया जाय।'

'जो आज्ञा!' भांडी ने कहा। सम्राट राजभवन में चले गये।

डाकुओं का प्राणदंड देखने के लिये लोग बाजार की ओर दौड़ पड़े। जिसने जहाँ सुना, बाजार की ओर भागा। सम्राट हर्ष का यह प्रथम महत्वपूर्ण निर्णय था। उनकी इस न्यायप्रियता से भले लोग बहुत प्रसन्न हुए और दुराचारियों को तो तीव्र ज्वर हो उठा। उनके लिये यह प्राणदंड का उदाहरण एक महान् चेतावनी थी। सभी के हृदय काँप उठे।

मध्य बाजार में चांडालों ने पाँच गहरे गड्ढे खोदे। लोगों की प्रबल भीड़ के नियन्त्रण के लिये सैनिकों का उस स्थान पर पहरा पड़ गया। दूर से लोगों को देखने की आज्ञा थी। उन गड्ढों में पाँचों डाकुओं को उतारा गया। सभी फूट-फूट कर रो रहे थे। उनके चेहरे दीनता और भय से दूसरों के लिये भी भयावने हो रहे थे।

इधर लोगों की विचित्र-विचित्र वाणियाँ उन्हें अलग कोस रही थीं। कोई कहता, 'अब रोते काहे को हैं, पाप कर्म करते समय नहीं सोचा! अभी यहाँ कुत्ते नोच खायेंगे और परलोक में कुम्भीपाक के कीड़े।'

'राजा है बड़ा न्यायवादी!' दूसरे ने कहा।

'कमाल कर दिया ऐसा न्याय कर।' तीसरे ने कहा।

'अभी तो प्रमादक की बारी शेष है। देखते हैं उसे क्या दंड मिलता है!' दूसरा प्रसन्न होकर बोला।

'उसे नगर के मध्य में सूली दी जायगी।' पहला उछल कर बोला।

'तुम्हें कैसे मालूम?' दूसरे ने पूछा।

'अरे देख लेना! कल ही वह बेटा सूली पर झूलता नजर न आयें तो बात रही! आयु के सभी अत्याचारों का मजा एक दिन में मिल जायगा।'

'हाँ मित्र! रहा बड़ा पापी!'

'अच्छा, अब पहिले इन पापियों को तो देखो।' तीसरे ने कहा।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

डाकू गड्ढे में गाड़ दिये गये। छाती तक उन्हें गाड़ा गया। गाड़ने के बाद सबके शरीर पर गुड़ की पतली चाशनी का लेप लगा दिया गया और तब चांडालों ने भयानक शिकारी कुत्तों को खोल दिया। खुलते ही कुत्ते उन पर यो झपटे मानों पिंजड़े से भूखे सिंह छोड़े गये हों। कुत्ते बड़े स्वाद से पहिले तो उनका शरीर चाटने लगे। फिर जब गुड़ का लेप समाप्त हो गया तो उन्होंने डाकुओं की बोटी-बोटी नोचना आरम्भ कर दिया। डाकुओं की चीत्कार से तो वहाँ का वातावरण बड़ा ही भयावना एवं करुण बन गया। किसी का मुख भय से उदास हो गया। जिससे नहीं देखा गया, उसने अपनी आँखों पर हाथ रख लिये। दर्शकों में बहुत-सी स्त्रियाँ भी थीं। वे तो चीख उठीं। बच्चे भय के मारे अपनी माताओं की गोद में जा चिंपटे। किसी से यह दृश्य देखा न जा रहा था। किन्तु इतना अवश्य था कि किसी के हृदय में उन डाकुओं के प्रति दया का भाव नहीं था। सभी इस प्रकार के दंड से प्रसन्न एवं संतुष्ट थे।

सभी यही कहते—'अब डकैती चोरी तो नाम को नहीं रहेगी। भगवान् ऐसे राजा को युग-युग राज कराये।'

कुत्तों ने जीवित ही उन सबों की खाल उधेड़ ली। छाती तक खा चुकने के बाद कुत्तों ने स्वाद के मारे जमीन तक खोद डाली और उनके सम्पूर्ण मांस को खा गये।

दुष्टों के लिये यह दंड काफी था। दूसरे दिन प्रमादक की बारी आई। प्रमादक का फैसला सुनने के लिये सारा नगर ही दरबार में उलट पड़ा था। बड़ी हर्ष-ध्वनि के बीच सम्राट ने फैसला दिया—'इस मनुष्य की सम्पूर्ण सम्पत्ति छीनकर गरीबों को बाँट दी जाय। इसका भवन राज्य अपने अधिकार में ले लेगा। इसे प्राणदंड नहीं दिया जायगा। सम्पत्ति हरण ही इसके लिये प्राणदंड से बढ़कर है। इसे अपने पापों का फल भोगने के लिये जीवित रखना आवश्यक है। इसकी जीविका के लिये दो बीघा भूमि इसे दी जायगी जिसे स्वयं जोतकर यह अपने परिवार का भरण-पोषण करेगा। जीवन भर अब इसे हल जोतना होगा। यही इसका दंड है।'

सम्राट का विचित्र न्याय सुनकर जनता आश्चर्यचकित रह गई। सभी के मुंह से धन्य-धन्य की ध्वनियाँ निकल रही थीं। सभी राजा की मुक्तकण्ठ प्रशंसा कर रहे थे।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

: २२ :

पश्चिम यात्रा

हर्ष की पूर्व-दिग्विजय-यात्रा भंग हो चुकी थी। थानेश्वर से चलने के वाद वहन राज्यश्री को खोजने का पहला विघ्न पड़ा। फिर कन्नौज के उत्तराधिकारीका प्रश्न और राजधानी की समस्या, इन सव के बाद भारत-सम्राट-पदवी-ग्रहणोत्सव। एक के वाद अनेक व्यस्त कार्यक्रम हर्ष के सामने आते गये और दिग्विजय यात्रा स्थगित हो गई।

शशांक अपने देश की ओर पलायन कर चुका था। कन्नौज का शासन हस्तगत करने से मगध तक का विशाल प्रदेश हर्ष के अधीन हो चुका था। आसाम (कामरूप) का शासक भास्करवर्मा पहले ही मैत्री सम्वन्ध स्थापित कर चुका था। अतः पूर्व की ओर सम्प्रति आक्रमण करने की उनकी इच्छा जाती रही। उन्होंने प्रथम पश्चिम को निपटा लेने का ही निश्चय किया। पश्चिम के बहुत से प्रवल शासक सिर ऊँचा किये हुए थे। उनको बलपूर्वक कन्नौज के सामने मस्तक झुकाने के लिये वाध्य करना आवश्यक था। सम्राट ने मंत्रियों से परामर्श किया। सभी ने सहमति प्रकट की। वस फिर क्या था, सम्राट ने सेनाएँ तयार करने का आदेश दे दिया।

शुभ मुहूर्त्त में सम्राट ने प्रस्थान किया। कन्नौज का शासनभार संधि-विग्रहिक (परराष्ट्र मंत्री) अवन्ति और न्यायाधिपति कुमारगुप्त पर छोड़ दिया गया। प्रधान सचिव भांडी, प्रधान सेनापति सिंहनाद, गजसेनापति स्कन्दगुप्त आदि मुख्य सहायक सम्राट के साथ रहे।

इस वार सम्राट की शक्ति इतनी प्रबल थी कि उसका सामना करना किसी भी छोटे-मोटे राजा के लिये कदापि सम्भव न था। ५० हजार अश्वारोही, २५ हजार गजारोही और ६० हजार पदाति सैनिक साथ चल रहे थे। इसके लिये नगर रक्षा एवं पूर्वीय सीमा रक्षा के लिये हजारों अश्वारोहियों, गजारोहियों की सेना अलग नियुक्त थी। भला इतने प्रबल शक्तिशाली सम्राट का मुकाबला कौन

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

करता ? पश्चिम विजय में सम्राट को अधिक सैन्य संहार करने की आवश्यकता नहीं थी। साधारण दो-दो हाथ करने में शत्रु या तो चारों खाने चित्त हो जाता अथवा भयभीत होकर आत्मसमर्पण कर देता।

थानेश्वर तक तो किसी से मुठभेड़ करने की आवश्यकता ही नहीं थी। वहाँ तक का प्रदेश हर्ष के साम्राज्यान्तर्गत ही था। थानेश्वर पहुँचकर सम्राट हर्ष ने सेना का पड़ाव डाला। बहुत दिनों बाद जन्मभूमि का दर्शन कर सम्राट का हृदय प्रफुल्लित हो उठा। वे अपने मंत्रियों सहित प्राचीन राजभवन में ही ठहरे। राज-भवन अपने स्वामी बिना बिल्कुल सूना-सूना हो रहा था। अपने स्वामी को पाकर वह एक बार पुनः सनाथ हो गया। उसका लुप्त प्रकाश पुनः जगमग-जगमग हो उठा।

यहाँ बहुत से नगर प्रतिनिधि, सेठ-साहूकार एवं रईस लोग आकर सम्राट से मिले। सम्राट ने उनसे कुशल समाचार पूछे। सभी अपने सम्राट का दर्शन पाकर बहुत ही प्रसन्न थे। उन्होंने सम्राट से प्रार्थना की कि कुछ दिन वे वहीं निवास कर अपनी प्रजा को सनाथ करें। प्रजा का प्रबल आग्रह सम्राट को स्वीकार करना पड़ा।

सम्राट ने अपनी सेना के तीन भाग किये। एक को भांडी के नेतृत्व में पारियात्र देश पर आक्रमण के लिये भेज दिया। दूसरे को प्रधान सेनापति सिंहनाद के साथ शुतुद्रु तथा जालन्धर राज्यों को अधीन करने के लिये रवाना किया और तीसरे को अपने साथ थानेश्वर में ही रख लिया। आज्ञा पाकर भांडी और सिंहनाद अपनी-अपनी दिशाओं को चल पड़े। सम्राट वहीं रहकर थानेश्वर की प्रजा को सनाथ करने लगे।

दूसरे दिन सम्राट ने नगर प्रतिनिधियों के साथ थानेश्वर नगर का निरीक्षण करने का विचार किया। एक सजे सजाये मदमत्त हाथी पर सम्राट आरूढ़ हुए। अगल-बगल अश्वों पर और हाथियों पर भी नगर प्रतिनिधि और आगे-पीछे रक्षा के लिये घोड़ों पर अंगरक्षक लोगों को हटाते-बढ़ाते चले। अपने सम्राट का दर्शन पाने के लिये जनता सड़कों पर उमड़ पड़ी थी। सड़कों की पटरियों पर मकानों की छतों पर, पटरियों, दीवारों, पेड़ों आदि पर भी लोग जमे हुए थे। सम्राट जिधर से गुजरते उधर पुष्पवर्षा के साथ जय-जयकार से आकाश गूंज उठता।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

एक सड़क पर जाते-जाते दुर्गन्धपूर्ण वायु का एक प्रबल झोंका आया। सम्राट और साथ में चलनेवाले अन्य सभी लोगों को नाकपर रूमाल रखना पड़ा। सम्राट ने एक नगर प्रतिनिधि से पूछा—'कैसी दुर्गन्धि है ?'

वह नम्रतापूर्वक हाथ जोड़कर बोला, 'श्रीमन्त, यहाँ एक पोखरे में बहुत-सा सड़ा हुआ जल एकत्रित है। उसी की दुर्गन्धि है।'

'हमारे हटते ही राजधानी की यह दशा ? यहाँ कल ही एक सुन्दर जलाशय बनाना आरम्भ कर दिया जाय।' सम्राट ने अपने साथ के मुख्य अंगरक्षक को आज्ञा दी। उसने मस्तक झुकाकर आदेश स्वीकार किया और सम्राट की सवारी आगे बढ़ गई।

थोड़ी दूर पर ही सड़क के किनारे एक टूटा-फूटा मकान था। मकान गृह-विहीन भिक्षुओं का अड्डा बन रहा था। बहुत से भिक्षुक उस टूटे मकान में घुसकर अपने बच्चों को शीत-ताप से बचा रहे थे।

सम्राट की दृष्टि उस पर पड़ी, बोले, 'यह क्या ? इतना भ्रष्ट मकान ! इसका जीर्णोद्धार करनेवाला कोई नहीं ?'

नगर प्रतिनिधि बोला, 'श्रीमान् ! इस मकान का स्वामी मर चुका है। वह निःसन्तान था। उसके मरने के बाद इसकी रक्षा करने वाला कोई नहीं रहा। अतः वह भिक्षुओं का अड्डा बन चुका है। यहाँ पर एक धर्मशाला बन जाय तो अच्छा हो श्रीमन्त !'

'ठीक है, कल ही इसका प्रबन्ध कर दिया जाय। धर्मशाला के साथ भिक्षुओं के लिये एक अन्नसत्र भी खोला जाय।'

अंगरक्षक ने यह भी आदेशपत्र में लिख लिया। प्रजा सम्राट की यह उदारता देखकर गद्गद हो रही थी।

सम्राट का हाथी आगे बढ़ चुका था। आगे कोई घटना नहीं हुई। काफी देर नगर-भ्रमण के बाद सम्राट की सवारी वापस लौटी।

सायंकाल सम्राट की ओर से भिक्षुकों, गरीबों, ब्राह्मणों आदि को भोजन, वस्त्र, धन आदि यथेच्छित दान दिया गया। जिसे पाकर सम्राट पर लोग मुग्ध हो गये। सभी के मुख से यही शब्द निकले—'ऐसा राजा जुग-जुग जिये !'

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

रात्रि में नगर के मुख्य-मुख्य लोगों की गोष्ठी हुई। थानेश्वर में उन दिनों काश्मीर के कुछ व्यापारी भी आये हुये थे। एक नगर प्रतिनिधि अपने सम्राट का दर्शन कराने उन्हें भी अपने साथ लेता आया। सम्राट ने काश्मीरियों से वहाँ की भूमि का बहुत कुछ हाल पूछा। उन्होंने अपने देश को स्वर्गभूमि बताया और कहा कि वहाँ का वैभव और प्राकृतिक सौन्दर्य संसार में प्रसिद्ध है। सुनकर सम्राट के मुंह में भी पानी भर आया।

वार्तालाप के बीच उन व्यापारियों से सम्राट को ज्ञात हुआ कि काश्मीर का राजा बुद्ध-धर्मावलम्बी है और उसके राज्यान्तर्गत एक स्थान पर भगवान् बुद्ध का एक दाँत अब तक सुरक्षित है। लोग उसका दर्शन कर अपने को कृतार्थ मानते हैं।

दिवाकर मुनि और अवलोकितेश्वर के सम्पर्क एवं उनके उपदेशों से सम्राट हर्ष के हृदय में बुद्ध धर्म के प्रति कुछ न कुछ श्रद्धा, अथवा उत्सुकता ही कहें, उत्पन्न हो चुकी थी और फिर बुद्ध को चोबीस अवतारों की श्रेणी में मानकर उन्हें उनके दाँत के दर्शन की अभिलाषा उत्पन्न होना स्वाभाविक था। बस फिर क्या था, उन्होंने एक दूत को पत्र देकर काश्मीर-नरेश दुर्लभवर्धन के पास भेज दिया। जिसमें दाँत के दर्शन के लिये अपने काश्मीर आने की सूचना दी गई थी।

दूत द्वारा सूचना पाकर काश्मीर नरेश दुर्लभवर्द्धन बहुत भयभीत हुआ। वह कान्यकुब्जाधिपति की अतुल सैन्यशक्ति जानता था और यह भी जानता था कि दिग्विजय के लिये निकले सम्राट को मुंह लगाना महान संकटों को स्वयं बुलाना है। उसमें सामर्थ्य नहीं थी कि सम्राट को आने से रोक सके। उसने अपने यहाँ के बौद्ध संघ को इसकी सूचना दी। बौद्धसंघ भला कैसे स्वीकार करता? एक इतर धर्मावलम्बी राजा को बिना अपना धर्म स्वीकार कराये इतनी पवित्र वस्तु का दर्शन कराना उसी प्रकार उनकी दृष्टि में पाप था जैसे सनातन धर्म में अस्पृश्यों को मन्दिर प्रवेश! उन्होंने अपने देशाधिपति से ऐसा न कार्य न करने का अनुरोध किया जिससे उनके धर्मपर आघात हो।

यह सुनकर तो दुर्लभवर्द्धन और भी चिन्तित हुआ। एक महा पराक्रमशाली सम्राट का प्रबल भय, दूसरी ओर अपने धर्मगुरुओं की ईश्वर तुल्य आज्ञा। किन्तु

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

वस ही क्या था ! बिना दर्शन की अनुमति दिये राज्यरक्षा का और कोई उपाय न था। यह निश्चित था कि दर्शन की अस्वीकृति होते ही हर्ष अपनी विशाल वाहिनी का मुंह काश्मीर की ओर मोड़ देते और काश्मीर की ईंट से ईंट बजाकर अपने अपमान का बदला ले लेते।

वाध्य होकर काश्मीरेश्वर ने दूत द्वारा स्वीकृति-सूचक विनीत पत्र सम्राट की सेवा में भेज दिया किन्तु शर्त यह रखी कि वे अधिक साजवाज के साथ न आयें क्योंकि इससे मंदिर दर्शन के नियमों का उल्लंघन होगा। उसने सोचा था कि चुपके से सम्राट को वह दर्शन करा देगा। लोगों में हो-हल्ला न हो पायेगा। उसे बौद्ध गुरुओं के कुपित होने का अत्यधिक भय था।

हर्ष के पास उत्तर पहुँचा। वे तत्काल काश्मीर यात्रा के लिये तैयार हो गये। लगभग एक हजार अश्वारोहियों को साथ लेकर वे चल दिये। कुछ दिनों की यात्रा में ही वे काश्मीर-सीमा पर पहुँच गये। सीमा पर दुर्लभवर्द्धन ने अपने मंत्रियों, सेनापतियों के साथ सम्राट का स्वागत किया और पुनः अनुरोध किया कि सेना को वे वहीं छोड़कर राज्य में प्रवेश करें। सम्राट ने स्वीकार कर लिया और अपने वीस मुख्य अंगरक्षकों को साथ लेकर वे काश्मीर-नरेश के साथ हो लिये।

काश्मीर नरेश ने राजधानी की सीमा पर एक सुन्दर भवन में हर्ष के निवास का सुप्रवन्ध किया। दुर्लभवर्द्धन सम्राट हर्ष से बहुत भयभीत था, इसलिये उसने उनकी सेवा में बड़ी तत्परता दिखाई। अपने देश के विविध उपहारों द्वारा उनका स्वागत किया। सुवर्ण-रत्नों के अतिरिक्त काश्मीर देशकी प्रसिद्ध बहुमूल्य शालों एवं सुन्दर-सुन्दर वस्त्रों सहित काश्मीर को एक सौ सुन्दरी दासियाँ भी उसने सम्राट को अर्पण कीं। काश्मीर का सौन्दर्य जगत-प्रसिद्ध है। इसलिये सम्राट ने यह भेंट भी बड़े हर्ष के साथ स्वीकार की।

काश्मीर नरेश ने ऐसा प्रवन्ध किया कि किसी को सम्राट के आने का ज्ञान न हो। रात्रि में जब बुद्धमंदिर में बिल्कुल एकान्त हो गया और पुजारी के अतिरिक्त सभी वहाँ से चले गए तब अपने साथ दुर्लभवर्द्धन हर्ष को दर्शनार्थ ले गया। सम्राट के दस अंगरक्षक साथ थे। वे भी उनके पीछे कुछ दूर होकर चल रहे थे। जिससे किसी को सन्देह न हो।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

मंदिर के पुजारी को किसी देश का बौद्ध राजा बताकर सम्राट का वास्तविक परिचय दुर्लभवर्द्धन ने छिपा लिया। हर्ष ने बड़ी श्रद्धा से भगवान के दाँत के दर्शन किये। एक सुवर्ण-रत्न-जटित सिंहासन में मखमली वस्त्रों के बीच सजाये जाकर दन्तदेव रखे गये थे। हर्ष ने अत्यन्त श्रद्धापूर्वक दर्शन किये। आरम्भ से ही हर्ष का हृदय वैराग्य और ईश्वर के भजन पूजन की ओर अग्रसर था। दर्शन करते ही वे श्रद्धातिरेक से इस प्रकार विह्वल हो गये मानो उन्होंने स्वयं बुद्ध भगवान के दर्शन किये हों। वास्तव में वह दाँत था तो उन्हीं बुद्ध का ही एक अंश न ! उसमें उसी मोहक शक्ति का होना स्वाभाविक था।

हर्ष बहुत देर तक उस मन्दिर के सामने सुध-बुध खोये खड़े रहे। वहाँ से हटने की उनकी इच्छा न होती। अन्त में दुर्लभवर्द्धन ने प्रार्थनापूर्वक उनका ध्यान भंग किया। सम्राट उस दाँत पर इतने मुग्ध हुए कि वे उसे हस्तगत कर लेना चाहते थे। वे चाहते थे कि ऐसी अलौकिक वस्तु उनके पास या कम से कम उन्हीं के राज्य में तो अवश्य रहे।

उन्होंने दुर्लभवर्द्धन से स्पष्ट कहा, 'यह दन्तदेव की मूर्ति हम अपने साथ ले जायँगे।'

सुनकर दुर्लभ भौचक्का रह गया। सुनते ही उसका चेहरा सूख गया। पुजारी तो मानो क्रोध के मारे पागल हो गया और इसी पागलपन में कुछ इधर उधर की बक भी गया। किन्तु सम्राट ने उसकी ओर ध्यान न देकर दुर्लभवर्द्धन से कहा, 'या तो हमारे आगमन के उपलक्ष्यमें यह मूर्ति भेंटस्वरूप दे दो अथवा शस्त्रग्रहण के लिये तैयार हो जाओ।'

दुर्लभवर्द्धन सम्राट के चरणों पर गिर पड़ा। बोला, 'श्रीमान् की अतुल सैन्यशक्ति की ओर आँख उठाकर देखना भी स्वयं अपने काल को निमंत्रण देना है। भला मैं आपके सामने शस्त्रग्रहण करने योग्य हूँ। किन्तु........!'

उसने प्रार्थना की कि राज्य की बड़ी से बड़ी मूल्यवान वस्तु लेकर भी वे कृपया इस मूर्ति को छोड़ दें किन्तु हर्ष पूर्ण निश्चय कर चुके थे।

उन्होंने कहा, 'हमारा निश्चय अटल है।' और उन्होंने अंगरक्षकों को पुजारी को पकड़ कर एक ओर करने का आदेश देकर स्वयं आगे बढ़कर उन्होंने दन्तदेव को

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

उठा लिया। दुर्लभवर्द्धन मन्त्रबद्ध साँप की तरह हृदय में क्रोध के मारे जला जा रहा था किन्तु हर्ष की शक्ति के सामने बेबस था। चुपचाप अपने देवता के अपहरण का दृश्य देखता रहा। राज्य वैभव के समक्ष उसने अपने प्रभु का अपहरण सह लिया, उनकी रक्षा के लिये शस्त्रग्रहण करने को तैयार न हो सका। यह है धन, वैभव, ऐश्वर्य का लोभ, जो मनुष्य से बड़े से बड़ा पाप भी करा डालता है। क्या था कि वह हर्ष की सैन्यशक्ति से मार खा जाता, किन्तु कम से कम जीवित रहते अपने प्रभु का अपहरण तो न होने देता। पर धन लोभ ने उसके पैरों में बेड़ियाँ डाल दी थीं। वह तमाशा देखता रहा।

हर्ष ने मूर्ति उठाई और घोड़े पर सवार हो अंगरक्षकों के साथ चल दिये। घोड़े बात की बात में दौड़कर उनके निवासस्थान तक पहुँच गये। उपहार में प्राप्त हुई सुन्दरियों को सम्राट ने दिन में ही थानेश्वर रवाना कर दिया था। वहाँ शेष था ही क्या? शेष दस अंगरक्षकों को भी तत्काल वहाँ से लेकर वे राज्यसीमा की ओर पलायन कर गये।

हर्ष के जाने के बाद दुर्लभवर्द्धन ने नगर में यह प्रचारित कर दिया कि रात्रि में कुछ डाकू मन्दिर पर धावा बोल कर वहाँ के सुवर्ण-रत्नादि के साथ वह दाँत भी उठा ले गये। मन्दिर के पुजारी को राजा ने बहुट-सा धन देकर सिखला दिया कि वह भेद न खोले। पुजारी भी धन लोभमें आ गया। किन्तु बौद्धसंघ बहुत क्रुद्ध हुआ। पर बाद में शान्त होने और मन मसोस कर बैठ जाने के अतिरिक्त और चारा भी क्या था?

हर्ष थानेश्वर लौट आए। आते ही उन्हें सूचना मिली कि भांडी ने बड़ी सफलता के साथ पारियात्र देश पर विजय कर ली। पारियात्र के शासक ने बहुमूल्य उपहार भेंट कर सम्राट की अधीनता स्वीकार कर ली। सूचना अवश्य प्रसन्नता-सूचक थी किन्तु हर्ष के हृदय में सर्वाधिक प्रसन्नता और आनन्द बुद्ध के दन्त-अपहरण पर था। वे अपने हृदय में दिग्विजय कर चुके थे। श्री हर्ष ने तत्काल कन्नौज में एक विशाल सुवर्ण मंदिर का निर्माण करने का आदेश भेज दिया जिसमें उक्त दाँत की स्थापना करने का उनका विचार था।

तीन-चार दिन बाद सेनापति सिंहनाद की ओर से भी सूचना मिल गई कि उन्होंने शतुद्रु और जालन्धर राज्यों को अपने अधीन कर लिया। शुतुद्रु ने तो बिना

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

युद्ध किये ही आत्मसमर्पण कर दिया किन्तु जालन्धर ने दो एक हाथ दिखा कर अपने क्षत्रियत्व का मान रखा और बाद में कान्यकुब्ज के आगे माथा झुका दिया ।

सम्राट ने सिंहनाद को वहीं रुकने का आदेश भेजा और अपनी शेष सेनाओं को भी वहीं पहुँचने की आज्ञा देकर स्वयं भांडी के आने की प्रतीक्षा करने लगे । तीसरे दिन ही भांडी भी सैन्यसहित आ पहुँचा । उसने सम्राट को विजित प्रदेश के बहुत से उपहार अर्पित किये ।

भांडी ने कहा, 'एक उपहार ऐसा मिला है जिस पर मेरा अधिकार होगा ।'

'अब भी किस वस्तु पर तुम्हारा अधिकार नहीं ?' सम्राट उसका अभिप्राय समझ न पाये ।

'यह तो ठीक ही है महाराज ! किन्तु वह ऐसी वस्तु है जिसपर एक ही व्यक्ति का अधिकार हो सकता है ।' भांडी सम्राट का ममेरा भाई था, अतः अधिक हिलमिल कर बातें करता था । वह सम्राट को 'महाराज' सम्बोधन करता था ।

'क्या हम उस वस्तु को देख भी नहीं सकते ?' हर्ष ने कुछ उत्सुकता से पूछा ।

'मुंह दिखाई के लिये कुछ खर्च करना पड़ेगा महाराज !' भांडी के ओठों पर अर्ध मुस्कराहट थी ।

सम्राट अब समझे । 'ओ ! तो भाभी लाये हो ? हम मुंह दिखाई के लिये अवश्य बहुत कुछ भेंट अपने भाई को देंगे । किन्तु हम भी एक ऐसी अपूर्व वस्तु लाये हैं, जो सम्पूर्ण भारत की दिग्विजय से भी बढ़कर है ।'

'ऐं !' भांडी ने आश्चर्य दिखलाया, 'कौन सी वस्तु है वह ?'

'उसके दर्शन के लिये श्रद्धा-भक्ति की आवश्यकता है । वह वस्तु कान्यकुब्ज की सबसे प्रिय वस्तु होगी जो कन्नौज के नवनिर्मित सुवर्ण मन्दिर की शोभा बढ़ायेगी ।

भांडी अर्थ न समझ पाया, बोला, 'स्पष्ट समझाइये महाराज ! आपकी पहेलियाँ मेरी समझ में नहीं आतीं ।'

सम्राट ने दन्तापहरण की सम्पूर्ण कथा कह सुनाई । सुनकर भांडी भी दाँतों तले उँगली दबाने लगा । 'तब तो आपने बहुत बड़ी विजय की । काश्मीर नरेश इस पर कुछ प्रतिक्रिया तो न करेगा ?'

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

'अब क्या करेगा ? यदि कुछ करना होता तो उसी समय करता । हम लोग उसी की मुट्ठी में थे ।'

'आपने वास्तव में बहुत बड़ा साहस किया ।'

सम्राट मुस्करा पड़े । बोले, 'जाओ थोड़ा विश्राम कर लो । मध्याह्न बाद प्रस्थान होगा ।' और भांडी चला गया ।

मध्याह्नोत्तर सेनाएँ रवाना हुईं । शुतुद्रु जालन्धर के बाद चिनभुक्ति और कुल्लू प्रदेश थे । इन्हीं दो को सीधे मार्ग पर लाना था । दूसरे ही दिन भांडी की सेनाएँ भी जालन्धर जा पहुँचीं । वहाँ शुतुद्रु और जालन्धर के शासकों ने सम्राट का अभूतपूर्व स्वागत किया । उन दोनों ने बड़े-बड़े उपहार भेंट किये थे । सिंहनाद द्वारा कई खेमे सम्राट् को दिखाये गये जिनमें उक्त दोनों राजाओं द्वारा दिये गये बहुमूल्य उपहार रखे थे । खेमे उन उपहारों से ठसाठस भरे थे । सम्राट ने दोनों राजाओं को उन उपहारों के बदले उनके राज्यों की सर्वविध समुन्नति का पूरा आश्वासन दिया ।

एक दिन वहाँ ठहरकर सम्राट ने अपनी तीनों भागों में विभक्त सेना को व्यवस्थित किया और तब आगे बढ़ने की आज्ञा दी । वह विशाल वाहिनी अन्धड़ तूफान या समुद्र की तरह उमड़ती, मार्ग में पड़नेवाले राज्यों को कुचलती, उन पर विजयपताका फहराती आगे बढ़ रही थी । किसी में शक्ति न थी कि उस प्रबल तूफान के सामने चट्टान बनकर खड़ा रह सके । सभी कच्चे मकानों, वृक्षों, पौधों की तरह जमीन पर लेटते जा रहे थे और वह उन्हें धूलि में मिलाता आगे बढ़ता जा रहा था ।

चिनभुक्ति और कुल्लू यद्यपि बहुत छोटे राज्य थे, किन्तु वहाँ के शासक बड़े शूरवीर थे । अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा करना उन्होंने अपना कर्त्तव्य समझा । यद्यपि वे जानते थे कि उस महापुरुष के प्रबल वेग में वे तिनके की तरह बह जायँगे । फिर भी वे अपने क्षत्रियत्व की मर्यादा-रक्षा के लिये मैदान में आये । दोनों राज्यों की सेनाएँ संयुक्त रूप से युद्ध में आईं ।

सम्राट ने समझा था कि पारियात्र, शुतुद्रु और जालन्धर की तरह इन्हें भी परास्त करना खिलवाड़ होगा किन्तु उन वीरों ने बलात् सम्राट की उस धारणा पर पानी

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

फेर दिया। निरन्तर दो दिन तक सिंहनाद और भांडी जैसे कुशल वीरों के नेतृत्व में विशाल वाहिनी द्वारा आक्रमण किये जाने पर भी उन वीरों का साहस न छूटा। वरन् वे और भी उत्साह से लड़ने लगे। दो दिनों में दोनों की आधी से अधिक सेना रणक्षेत्र में काम आ गई किन्तु उन्होंने अन्तिम दम तक युद्ध करने का निश्चय किया।

हर्ष सुन कर दाँत पीसने लगे। अभी तक वे स्वयं युद्ध में नहीं उतरे थे। अपनी विशाल वाहिनी की यह स्थिति देखकर उनके क्रोध की सीमा न रही और तत्काल उन्होंने सेवकों को शस्त्र धारण कराने की आज्ञा दी—'देखते हैं ये फुदकने वाले खिलौने कब तक उछल-कूद मचाते हैं। चुटकियों में मसल दिया जायगा।'

आज्ञा पाकर सेवक युद्ध की वेशभूषा और शस्त्र ले आये। सम्राट ने शीघ्र शस्त्र धारण किये और अंगरक्षकों के साथ अश्वारूढ़ हो समरांगण में आ गये। उन्होंने देखा, दोनों वृद्ध राजा प्राणों की बाजी लगाकर युद्ध कर रहे हैं। सिंहनाद और भांडी जैसे योद्धाओं के भी उन्होंने छक्के छुड़ा रक्खे हैं। सम्राट आगे बढ़े। सिंहनाद ने कहा—'संभल कर श्रीमन्त! शत्रु भयानक है।'

'सभी भयानकता अभी नष्ट हो जायगी।' हर्ष कुछ मुस्कराये और आगे बढ़े। सम्राट को युद्धक्षेत्र में जाते हुए देखकर थके हुए हताश सैनिक पुनः आँधी की तरह शत्रु पर टूट पड़े। सम्राट बड़ी फुर्ती से स्वयं उन दोनों वृद्ध राजाओं से युद्ध करने लगे। उनकी सहायता में सिंहनाद और भांडी थे। उन वृद्ध राजाओं की अपूर्व वीरता पर सम्राट बहुत प्रसन्न हुए। वे उनका प्राण नहीं लेना चाहते थे। उन्होंने धीमे स्वर में भांडी और सिंहनाद से कहा—'ऐसा प्रयत्न करो कि शत्रु जीवित ही पकड़ा जाय। निरस्त्र करने का उपाय करो।'

तीन कुशल योद्धा उन वृद्धों पर एक साथ टूट पड़े। हर्ष स्वयं एक कुशल योद्धा थे। अंग-अंग में यौवन का नया फुर्तीलापन और विजय के लिये प्रबल उत्साहभरी उमंगें। उन्होंने थोड़ी देर में ही चिनभुक्ति नरेश को वाहनरहित कर दिया। अब हर्ष भी घोड़ा छोड़ नीचे आ गये। दोनों अपनी तलवारों का अद्भुत कौशल दिखा रहे थे। किन्तु एक बूढ़ा सिंह प्रबल मदमत्त हाथी के सामने कबतक ठहर पाता? हाथी ने सिंह को अपनी सूँड़ की लपेट में ले ही तो लिया। हर्ष ने ऐसा दाँव चला कि शत्रु की तलवार के दो टुकड़े हो गये। बस, हर्ष उसके

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

मस्तक पर जा चढ़े, संकेत पाते ही चारों ओर से सैनिकों ने उसे आ घेरा और बन्दी बना लिया।

इधर भांडी और सिंहनाद से लड़ते-लड़ते कुल्लू नरेश भी थक कर चूर-चूर हो रहा था। अपने साथी के बन्दी होते ही उसका भी साहस टूट गया। हर्ष ने पहुँचते ही उसे भी वाहनहीन और निरस्त्र कर बन्दी बना लिया। इस प्रकार बड़ी कठिनाई से उन वीरों पर हर्ष ने विजय पाई। यह विजय हर्ष को काफी मँहगी पड़ी। उनके एक हजार अश्वारोही, पचास गजारोही और १।। हजार पैदल सैनिक वाहनों सहित मारे गये। किन्तु फिर भी हर्ष प्रसन्न थे। वीर शत्रुओं के साथ लड़ने में ही वीर पुरुष की महत्ता है। हर्ष चाहते थे कि ऐसे दो-एक युद्ध करने का उन्हें अवसर मिले जिससे उन्हें युद्ध का अनुभव हो।

विजयोपरान्त सेनाओं ने दोनों राज्यों पर अपना अधिकार कर लिया। रात्रि में दरवार हुआ। सम्राट ने दोनों पराजित राजाओं को दरवार में उपस्थित करने की आज्ञा दी। सैनिक दोनों को बन्दीगृह से ले आये। सम्राट ने वृद्ध राजाओं से बन्दी की तरह व्यवहार न कर सम्मानजनक वर्ताव किया और आसन पर बैठने के लिये संकेत किया।

सम्राट ने पूछा—'अब आप लोग क्या चाहते हैं?'

'एक पराजित राजा जो चाह सकता है।' दोनों ने एक स्वर से अभिमानपूर्वक उत्तर दिया।

'आप लोगों के राज्य हम अपने विशाल साम्राज्य के अधीन कर रहे हैं, किन्तु आपको पदच्युत न किया जायगा। आप ही उसके शासक होंगे।'

'इस कृपा की हमें आवश्यकता नहीं।' चिनभुक्ति नरेश वोले।

'यह कृपा नहीं, आप लोगों का अधिकार है। आपके स्वाभिमान से हम बहुत प्रसन्न हैं। किन्तु राजनीति के अनुसार जितना विशाल साम्राज्य हो, उतना ही वहाँ की प्रजा में सुख, शान्ति एवं सुव्यवस्था स्थापित होने में सुविधा होती है। हम आप लोगों की स्वतन्त्रता का अपहरण नहीं करना चाहते किन्तु अपनी प्रजा को सुखी बनाने के लिये आप भी उत्सुक होंगे ही। इन छोटे-छोटे राज्यों की अपेक्षा एक शक्तिशाली राज्य बने, इसी में देश एवं प्रजा का हित होगा। भारतीय

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

इतिहास का सम्मान भी विशाल सम्राज्य की स्थापना से होगा। आपकी प्रजा को सुखी बनाने में यदि कोई साम्राज्य अपना हाथ बटाये, तो इसमें आपको खिन्न न होना चाहिये।'

सम्राट की उच्च भावनाएँ सुनकर दोनों वृद्ध राजाओं की आँखें खुल गईं। वे समझते थे कि हर्ष भी अन्य सम्राटों की तरह विजय-लोलुप होंगे किन्तु उनकी विशाल साम्राज्य बनाने की पवित्र भावना में प्रजाहित का कारण देखकर दोनों बहुत प्रसन्न हुए।

चिनभुक्ति-नरेश बोले, 'हम आपकी इस उदार भावना का समादर करते हैं सम्राट! हमें आपके इन विचारों का पता न था। हम प्रसन्नतापूर्वक आपका आधिपत्य स्वीकार करते हैं।'

'मुझे भी आपकी अधीनता स्वीकार है सम्राट! आपके विशाल साम्राज्य की स्थापना में हम पूरा सहयोग देने को तैयार हैं।' कुल्लू-नरेश ने भी निवेदन किया।

सम्राट बहुत प्रसन्न हुए, बोले, 'आप लोगों की सुबुद्धि के लिये धन्यवाद! आप लोग मुक्त हैं। अपने राज्य का सावधानीपूर्वक पालन कीजिये।'

दोनों राजा प्रणाम कर चले गये और दूसरे ही दिन बड़े-बड़े उपहारों के साथ वापस लौटे। सम्राट ने उनके उपहार सहर्ष स्वीकार किये और आगे प्रस्थान की तैयारी की।

इसके बाद सम्राट ने सीधे सिन्धु देश पर आक्रमण करने की ठानी। मार्ग में छोटे-मोटे राज्यों की चिन्ता न कर उन्होंने सेना का मुख सिन्धु प्रदेश की ओर मोड़ने का आदेश दिया। वे जानते थे कि सिन्धु अधिकार में आ गया तो ये छोटे-छोटे राज्यगण स्वतः भयवश आत्मसमर्पण कर देंगे।

बड़े वेग से प्रस्थान हुआ। तीव्र गति से सेनाएँ आगे बढ़ने लगीं। मार्ग में जो नदियाँ पड़तीं उन्हें नौकाओं की सहायता से पार किया जाता। सम्राट के साथ हाथियों पर लदी तीन सौ बड़ी सेनाएँ भी थीं जिनके द्वारा नदी पार करने में कोई असुविधा न थी। सतलज और व्यास, दो नदियाँ पार की जा चुकी थीं। रावी, चिनाब और झेलम तथा महानद सिन्धु पार करने के बाद ही सिन्धु प्रदेश पर आक्रमण हो सकता था।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

सिन्धु नद तक पहुँचने में एक मास का समय लगा। सिन्धु का शासक बहुत प्रवल था। उसकी सैन्य शक्ति काफी प्रबल थी। उसने जब सुना कि हर्ष आक्रमण को आ रहे हैं तो उसने शत्रुसेना को सिन्धु नदी पार न करने देने का निश्चय कर लिया। सम्राट ने सिन्धु नद तक का प्रदेश तो अनायास ही अपने अधिकार में कर लिया क्योंकि शत्रु ने अपनी सेनाओं का मोर्चा नदी पार बनाया था। अब नदी पार करने की समस्या थी। हर्ष ने यहाँ कूटनीतिक चाल चली। शत्रु की सेना उस पार ठीक सामने डटी थी। हर्ष ने तीन सहस्र अश्वारोहियों को दक्षिण की ओर, और तीन सहस्र को उत्तर की ओर, दो-दो मील हटाकर नौकाओं से नदी पार करा दिया। शत्रु समझता रहा कि शत्रु की सेना सामने ही है, ज्यों ही नौकाओं से पार आने का प्रयास करेगी, बीच में ही वाण मार-मार कर नौकाएँ डुवो देंगे। किन्तु उसकी सारी चाल धरी की धरी रह गई। अचानक उत्तर दक्षिण दोनों ओर से हर्ष के अश्वारोही भारी संख्या में सिन्धु की सेना पर टूट पड़े। सहसा आक्रमण देखकर वे लोग दंग रह गये और तब मची मारकाट !

इधर शत्रु सेना को युद्ध में उलझाकर हर्ष ने अपनी शेष सम्पूर्ण सेना नौकाओं द्वारा एवं हाथियों, अश्वों को तैराकर उस पार पहुँचा दिया। सबके पहुँचते ही शत्रु पर हर्ष ने पूरी तरह आक्रमण वोल दिया। इस कूटनीति से हर्ष को अत्यधिक लाभ हुआ। अचानक आक्रमण ने शत्रु की रीढ़ ही तोड़ दी थी। उस पर अब हर्ष की सम्पूर्ण वाहिनी ही जब पार पहुँची, तो उसने शत्रु के लिये कहर ढाह दिया। गाजर-मूली की तरह शत्रु सेना कट-मर रही थी। वास्तव में इस अचानक आक्रमण से हर्ष को अतिशीघ्र सफलता मिली और एक ही दिन में सायंकाल तक शत्रु ने हर्ष के सामने घुटने टेक दिये। सायंकाल होते-होते सिन्धु नरेश की आधी से अधिक सेना रणक्षेत्र में सो गई और उसे निश्चय हो गया कि अब प्रवल शत्रु से युद्ध करना अपना सर्वनाश बुलाना है।

उसने सफेद झंडे लहरा दिये और अपने दूत को सन्धि का प्रस्ताव लेकर भेजा। हर्ष ने भी हठ न कर उसे स्वीकार कर लिया। उन्होंने संधि की शर्तों में सिन्धु देश के एक हजार घोड़े और हर्जाने के लिये पाँच लाख सुवर्ण मुद्राओं के अतिरिक्त वार्षिक कर ५० हजार सुवर्ण मुद्राएँ निश्चित कीं और शर्तनामा भेज दिया। सिन्धु नरेश

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

युद्ध का मजा अच्छी तरह चख चुका था। अतः सन्धि की शर्तें कड़ी होने पर भी उसने उन्हें स्वीकार कर लिया। सन्धि के अनुसार वह स्वयं पाँच लाख सुवर्ण-मुद्राएँ एवं बहुत से रत्नों का उपहार लेकर सम्राट हर्ष के शिविर में पहुँचा। सम्राट ने उपहार स्वीकार कर उसे अभयदान दिया। बाद को एक हजार सुन्दर तीव्रगामी घोड़े भी अपने शिविर से निकलवाकर उसने हर्ष की सेना में भेज दिये।

संधि की शर्तों का विधिवत् पालन देखकर हर्ष प्रसन्न हुए। पश्चिमी समुद्र तक अपने साम्राज्य का विस्तार देखकर उन्हें अपार आनन्द हुआ। हर्ष ने पश्चिम की सम्पूर्ण विजय कर सन्तोष की साँस ली और कुछ दिन वहीं विश्राम करने का निश्चय किया। एक मास तक सिन्धुदेश का भ्रमण करने के बाद हर्ष ने अपनी विशाल वाहिनी का मुख पूर्व की ओर मोड़ दिया।

———

: २३ :

वापिस कन्नौज में

पश्चिम विजय के बाद लौटते समय मार्ग में विभिन्न नगरों की जनता ने अपने विजयी सम्राट का शानदार स्वागत किया। प्रजा के आग्रह से सम्राट प्रत्येक नगर, मुख्य-मुख्य ग्राम तक में एक-एक, दो-दो दिन ठहरने के लिये बाध्य हुए। लौटते समय विजित प्रदेश जालन्धर की प्रजा ने सम्राट के प्रति बहुत प्रेम दिखाया। फलतः सम्राट को ससैन्य १५ दिन तक वहीं रुकना पड़ा। इसी प्रकार थानेश्वर-वासियों ने भी अपने हृदय-सम्राट के स्वागत में कोई कोर-कसर न रखी और पुनः उन्हें एक सप्ताह वहीं रोके रखा।

स्वयं सम्राट की भी इच्छा होती कि विभिन्न प्रदेशों में कुछ-कुछ समय तक रुक कर अपना शासनप्रबन्ध सुदृढ़ करते जायँ। प्रजा के दुःख सुनने और उनके निवारण के लिये अपने शासित प्रदेशों में निरन्तर भ्रमण करते रहने के सम्राट पक्ष-

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

पाती थे । इसी से तो विजित प्रदेशों की प्रजा को भी सम्राट हर्ष ने थोड़े दिनों में ही अपने प्रभाव से ऐसे मुग्ध कर लिया कि भविष्य में कभी उसने बाग़ी होने का नाम न लिया ।

इस प्रकार पश्चिम की ओर से ठीक एक वर्ष वाद सम्राट राजधानी लौटे । राजधानी में तो उनका इतनी धूमधाम से ससमारोह स्वागत हुआ कि सम्भवतः उनके सम्राट-पदग्रहणोत्सव के समय भी न हुआ होगा । प्रजा अपने प्रिय सम्राट पर न्यौछावर हुई जा रही थी । सारी प्रजा घर छोड़-छोड़ कर सड़कों पर उलट पड़ी । घरों में कोई नवजात बच्चा तक न रहा जिससे हम कह सकें कि घर सर्वथा सूने नहीं थे, क्योंकि घर में से गोद के बच्चे तक को माता उठा कर सम्राट की सवारी देखने चली आई । सड़कों और छतों पर मुंड ही मुंड दीख रहे थे ।

एक सौ सुन्दर सजे हाथियों की पंक्ति के बीचों-बीच विशाल मदमत्त गजराज पर सम्राट हर्ष विराजमान थे । हाथियों के आगे-पीछे और बीच-बीच में अश्वारोही, पदाति एवं सैनिकों के पंक्तिवद्ध दल अनुशासन पूर्वक चल रहे थे । सबसे आगे युद्धवाद्य बजते चल रहे थे । जनता के हार्दिक स्वागत का उत्तर सम्राट हाथ जोड़ कर देते चल रहे थे । जनता तुमुल हर्षध्वनि कर उठी । पुष्पवर्षा से सम्पूर्ण सड़कें फूलों की सेज-सी लग रही थीं ।

बड़े ही स्वागत-समारोह के बीच सम्राट राजभवन आये । यहाँ कुमारगुप्त, अवन्ति आदि मंत्रियों के अतिरिक्त स्वयं राजश्री ने अपने विजयी भाई का स्वागत किया । विजयी भाई को पुष्पमाला पहनाते समय राज्यश्री का गला भर आया ।

उसने कहा, 'मैंने आज अपना असली भाई पाया । विशाल सम्राज्य की पिता जी की कामना को सार्थक बनाकर मेरे भाई ने विश्व में अपना नाम अमर कर लिया ।'

हर्ष बड़े हर्षित हुए । बोले, 'इस स्नेह के बदले हम अपनी बहन को एक ऐसी वस्तु देंगे जिसे पाकर वह वास्तव में कृतार्थ हो जायगी ।'

राज्यश्री उत्सुकता से हर्ष के मुख की ओर देखने लगी । हर्ष ने भांडी के हाथ से सोने की वह पिटारी ली, जिसमें भगवान् बुद्ध का दन्त था और बहन के हाथ में दी । बोले, 'इसे अन्दर ले जाकर खोलना और श्रद्धापूर्वक प्रणाम करना ।'

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

राज्यश्री समझ न पाई कि वह क्या वस्तु है किन्तु लेकर उसने मस्तक पर रख लिया। सभी लोग राजभवन में आये। अन्दर जाकर राज्यश्री ने वह पिटारी खोली तो देखकर दंग रह गई। बोली, 'यह क्या तमाशा है? यह तो किसी का दाँत है। मुझसे परिहास करने लगे!'

भाई बोला, 'नहीं राजू, जब तुम इसका परिचय पा जाओगी तो अवश्य ही इसे सिरमाथे पर चढ़ाओगी, हृदय से लगाओगी।' राज्यश्री की उत्सुकता और बढ़गई—'तो बताओ न! यह है क्या वस्तु?'

'यह भगवान बुद्ध का दाँत है। बड़ी कठिनाई से हम इसे हस्तगत कर पाये हैं।' और हर्ष ने सम्पूर्ण कथा कह सुनाई।

राज्यश्री गदगद् हो उठी। उसके नयन पुलकित हो गये। उसने कई बार बड़ी श्रद्धा से नतमस्तक हो उसे प्रणाम किया।

हर्ष की आज्ञा पाकर कन्नौज में सुवर्णमंदिर का निर्माण आरम्भ हो ग़या था। अब तक आधे से अधिक बन चुका था। हर्ष के आते ही उसका निर्माण-कार्य और तीव्र हो उठा और दो मास बाद ही उसका सम्पूर्णता भी हो गई। हर्ष ने बड़े ही समारोह पूर्वक मन्दिर में बुद्ध की 'दंत मूर्ति' की स्थापना कराई। दिवाकर मुनि के हाथों उस मन्दिर का शिलान्यास हुआ था। अब अवलोकितेश्वर बोधिसत्त्व द्वारा उसकी स्थापना हुई।

इस अवसर पर सम्राट ने वृहद् दानोत्सव किया। दस हजार बौद्ध भिक्षुकों को तथा दस हजार ब्राह्मणों को निमंत्रित कर उन्हें भोजन कराया तथा बड़ी-बड़ी दक्षिणाएँ देकर प्रसन्न किया।

अब सम्राट की प्रवृत्ति बौद्ध धर्म की ओर कुछ अधिक होने लगी थी। फिर भी सनातन धर्म के प्रति उनकी हार्दिक श्रद्धा थी और उसकी उन्नति के लिए बहुत प्रयत्न करते रहे।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

: २४ :

शासन प्रबन्ध

कन्नौज लौटने के एक वर्ष बाद सम्राट हर्ष की पटरानियाँ गर्भवती हुईं और समय पाकर उन दोनों को सन्तानें उत्पन्न हुईं। छोटी रानी ने कन्या रत्न उत्पन्न किया और बड़ी महारानी ने साम्राज्य का उत्तराधिकारी पुत्र! उत्तराधिकारी पाकर प्रजा तो आनन्द से उछल-उछल पड़ी; किन्तु ईर्ष्यालु दैव को न जाने यह पुत्रोत्पत्ति क्योंकर असह्य हो उठी और उसने तीन मास की अल्प आयु देकर उस शिशु को संसार से उठा लिया। प्रजा तो अनाथ हो गई। बड़े अरमानों के बाद एक ही पुत्र उत्पन्न हुआ किन्तु कली खिलने से पूर्व ही मदमत्त हाथी ने उसे मसल कर रख दिया।

रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातं,
भास्वानुदेष्यति हसिष्यति पंकजश्रीः।
इत्थं विचिन्तयति कोषगते द्विरेफे,
हा हन्त, हन्त नलिनीं गज उज्जहार!!

रात बीतेगी, प्रातःकालकी मधुर वेला आयेगी, भगवान् दिवाकर उदयाचलपर पहुँचकर दर्शन देंगे और तब सरोवर में सो रही पंकज की कलियाँ खिलखिलायेंगी (तब मैं उनका दर्शन पाऊँगा। उनका एक ही मधुर चुम्बन मुझे कृतार्थ कर देगा। रात्रि में कमल की बन्द कली के बीच कैद हुआ अनजान भँवरा यह सोचता और आनन्द मनाता ही रहा कि प्रातःकाल होने से पूर्व ही किसी मदमत्त उच्छृंखल हाथी ने उस कली को अपनी सूंड़ से उखाड़ कर मसल दिया। उस अभागे भँवरे की सारी अभिलाषाएँ मन में ही धंसी रह गईं और उस सोई कली के साथ वह भी सदा के लिये सुला दिया गया। संसार की यही गति है।

पुत्र चल बसा किन्तु कन्या चन्द्रकला की तरह बढ़ने लगी। हर्ष के गार्हस्थ्य जीवन की एक मात्र वही सहारा थी। सम्राट अपना जीवन सन्तान-सुख, एवं महिषियोंकी विलासलीला में ही बिता रहे थे। इतने दिनों तक बड़े-बड़े युद्ध करने के बाद

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

उनका चित्त कुछ समय तक शान्तिपूर्वक एक स्थान पर रहकर बिताने को हुआ। वे अपनी नवेली युवती पत्नियों के अंक में रहकर अपनी युवावस्था सार्थक करने में लगे रहे। किन्तु राजप्रबन्ध की समुचित व्यवस्था का भी उन्हें पूरा ध्यान था। सुखभोग में फँसकर प्रजापालन का कर्त्तव्य वे नहीं भूले। नित्य राजदरबार में आना, रात्रि में नगर-भ्रमण कर प्रजा की सुरक्षा का पूरा ध्यान रखना वे आजन्म न भूल सके।

एक दिन राज्यदरबार लगा हुआ था। कई अपराधियों का मुकदमा था। अपराधी की ओर से अपनी निर्दोषिता सिद्ध करने के लिये बहुत से प्रमाण एवं गवाह प्रस्तुत किये गये। अभियुक्त पर पड़ोसी के खेत पर बलात् अपना अधिकार कर लेने का अपराध था। पड़ोसी का कहना था कि वह कुछ दिनों के लिये सपरिवार तीर्थयात्रा को गया था तभी अवसर पाकर वहाँ के राजकर्मचारियों को अभियुक्त ने मिला लिया और उसकी लहलहाती खेती पर अपना अधिकार कर लिया।

सम्राट ने उस क्षेत्र के अक्षपटलिक (पटवारी) से पूछा, वह भी अभियुक्त को निरपराध सिद्ध कर रहा था और उक्त भूमि उसकी पैतृक सम्पत्ति बता रहा था।

सम्राट बड़े असमंजस में पड़े। न्यायाधीश के आसन पर बैठकर तनिक भी अन्याय हो जाना महानरक का भागी बनना था। सम्राट ने बहुत सोचा-विचारा और तब अभियुक्त की जल-परीक्षा लेंने का निर्णय किया।

उन्होंने सैनिकों को आदेश दिया, 'अभियुक्त की जल परिक्षा ली जाय।'

उपस्थित जनता काँप उठी--'जल-परीक्षा!' जल-परिक्षा महान कठिन थी। अभियुक्त का हृदय दहल उठा। उसका मुख पीला पड़ गया। सम्राट की तीव्र दृष्टि ताड़ रही थी किन्तु वे चुपचाप निर्णय देकर दरबार से चले गये।

प्रधान न्यायाधीश कुमारगुप्त के निरीक्षण में अभियुक्त की जलपरीक्षा ली गई। जनता की भारी भीड़ इस अद्भुत दृश्य को देखने के लिये नदी के किनारे उमड़ पड़ी। नदी पर स्नान पर्व का मेला ही लग गया। नदी किनारे पहुँच कर सैनिकों ने अभियुक्त को एक बोरे में बैठाकर बन्द किया। एक दूसरे बोरे में एक भारी पत्थर भी बन्द कर एक लम्बे सुदृढ़ बांस के एक छोर पर पत्थर वाला

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

बोरा लटकाया गया और दूसरे छोर पर अभियुक्त वाला बोरा। यह क्रिया कर लेने के बाद उस बांस को नौका में ले जाकर बीच नदी के गहरे जल में छोड़ दिया गया।

दर्शक जनता में कोलाहल मच गया। सब लोगों की दृष्टि उस बांस और दोनों बोरों पर थी। बांस नदी में छोड़ते ही एक बार तो छप्प से पानी में डूब गया किन्तु दूसरे ही क्षण तैरकर ऊपर आ गया। न्यायाधीश कुमारगुप्त के साथ नौकाओं पर मुकदमा लड़ने वाले दोनों पक्षों के लोग भी उपस्थित थे। दोनों पक्ष के लोगों के हृदय जोर-जोर धक-धक कर रहे थे। 'न जाने कौन पक्ष अपराधी सिद्ध हो ?'

इतने में उन्होंने और सभी जनता ने ध्यान से देखा कि अभियुक्त वाला बोरा पानी में डूब रहा है और भारी पत्थर का बोरा ऊपर आ रहा है। अपराधी पक्ष के लोग तो थर-थर काँपने लगे और दूसरे पक्ष वालों के मुख कमल की तरह खिल उठे। थोड़ी देर में ही पत्थर जल पर पूरी तरह तैरने लगा। अभियुक्त जल में डूब गया।

कुमारगुप्त अपराधी पक्ष से बोले, 'लीजिये, साँच को आँच नहीं। आप लोगों का असत्य आप के मुँह पर नाच रहा है।'

कुमारगुप्त ने सैनिकों को आदेश दिया कि अब उक्त पत्थर के साथ अभियुक्त का बोरा बाँधकर इसी जल में डुबो दो। यही अपराधी को दंड है। प्राणदंड!

सारी प्रजा यह विचित्र न्याय देखकर दंग रह गई। सत्य की विजय और असत्य की पराजय का यह अद्भुत उदाहरण वास्तव में प्राचीन काल के न्याय की महान गाथा है। अपराधी को जलसमाधि देने के बाद कुमारगप्त ने उस पक्ष के सभी लोगोंको बंदी बना लिया और दूसरे पक्ष को उसकी भूमि वापिस दे दी गई। इन बंदियों पर भी असत्य बोलने का अपराध लगाकर विभिन्न कठोर दंड दिये गये।

एक दिन एक और मुकदमा प्रस्तुत हुआ। इसमें भी दोनों पक्षों के प्रमाण बड़े सबल और गवाह तार्किक थे। दोनों पक्षों का धन सम्बन्धी विवाद था। दोनों साझीदार व्यापारी थे। एक का दूसरे पर यह आरोप था कि उसके साझीदार ने विदेश में जाकर एक व्यापार किया और उसमें उसे एक लाख का लाभ

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

हुआ किन्तु वह अस्वीकार करता है और केवल २५ हजार का ही लाभ दिखला रहा है। इसमें दोनों ओर के प्रमाण पर्याप्त सबल थे अतः मुकदमा अत्यन्त जटिल हो गया। सम्राट ने यहाँ भी कठिन परीक्षा का सहारा लिया।

सम्राट ने अग्नि-परीक्षा का आदेश दिया। दोनों ओर के लोग थर-थर काँप उठे। अग्नि-परीक्षा अर्थात् साक्षात् मृत्यु का आलिंगन! किन्तु सत्यवादी को भय कैसा? दोनों पक्ष चुपचाप अग्नि-परीक्षा का खेल देखने लगे।

एक विशाल भट्ठी दरबार के कोने में बनाई गई। प्रचंड अग्नि जलने पर उस पर एक लोहे का बड़ा-सा तवा रक्खा गया। क्षणों में वह तवा जलकर लाल हो गया। सम्राट ने अभियुक्त को आदेश दिया 'तप्त लोहे का तवा हाथों से उठाकर उसे जीभ से चाटो।'

उपस्थित दर्शक, राजकर्मचारी तक यह दृश्य न देख सके। बहुतों ने भय आँखें मूंद लीं। स्त्रियाँ तो चीख उठीं। किन्तु अभियुक्त भयभीत न हुआ। उसने एक बार आकाश की ओर देखकर हाथ जोड़े और झटके से गरम, जलता हुआ तवा उठा लिया। सारी दर्शक मंडली मे तहलका मच गया। सब एक-दूसरे को धक्का देकर दृश्य देखने के लिए आगे बढ़ने का प्रयास करने लगे। तवा उठाने पर पहले तो अभियुक्त के हाथ कुछ काँपे और जान पड़ा कि तवा उसके हाथ से गिर पड़ेगा, किन्तु उसने एकबार फिर चिल्लाकर 'माँ सीते, तू ही रक्षाकर!' कहा और आँखें मूंदकर जोर से तवे को थाम लिया। धीरे-धीरे तवा ऊपर उठा कर वह उसे जीभ से चाटने लगा।

सारी जनता चकित रह गई और चिल्ला उठी—'सम्राट हर्ष की जय!'

सम्राट, ने कहा—'हमारी नहीं, अग्नि-परीक्षक की जय बोलो।' और सम्राट ने उसे तवा नीचे रख देने को कहा। सारा आकाश उस अग्नि-परीक्षक की जय-जयकार से गूंज उठा। तवा नीचे रखकर उसने सम्राट के पास आकर मुस्कुरा कर प्रणाम किया। उसके शरीर पर अग्नि का कोई प्रभाव न पड़ा था।

सम्राट ने दूसरे साझीदार को साधारण दण्ड दिया। वह बोला, 'श्रीमन्त! मैंने तो कोई अपराध नहीं किया मुझे केवल संदेह था, उसकी निवृत्ति हो गई? बस! मैं प्रसन्न हूँ।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

'किन्तु किसी पर निरर्थक संदेह करना भी अपराध है।' सम्राट ने २५ कोड़े लगाने का दण्ड देकर उसे भी छोड़ दिया।

सम्राट हर्ष की विचित्र न्याय-प्रणाली देखकर अपराधी काँपते थे। इन परीक्षाओं का नाम सुनकर ही उनके प्राण सूखने लगते। इसी प्रकार तुला-परीक्षा और विष-परीक्षा भी थी। तुला-परीक्षा में अभियुक्त को तुला के एक पलड़े पर बैठाया जाता। दूसरे पलड़े पर भारी पत्थर रक्खा जाता। यदि अभियुक्त का पलड़ा भारी पड़ता तो निर्दोष जान उसे छोड़ दिया जाता। विष-परीक्षा करने के लिये एक मेढ़े की पिछली दायीं टाँग काटकर उसमें विष भर दिया जाता और अपराधी को वह मांस खाने को दिया जाता। मांस खाने पर यदि वह जीवित बच जाता तो उसे निरपराधी घोषित किया जाता अन्यथा नहीं। मांस-भक्षण की परीक्षा नीच जातिवालों के लिए ही थी।

इसी प्रकार राजद्रोह करने वाले के लिए आजीवन कारावास, सदाचार के विरुद्ध आचरण करने, विश्वासघात करने तथा माता-पिता आदि बड़े पूज्यों के साथ अनुचित व्यवहार करने पर नाक, कान, एक हाथ, एक पैर में से कोई अंग काट लिया जाता या अपराधी को देश-निर्वासिन का दण्ड दिया जाता।

किन्तु यह न्यायप्रणाली केवल राजधानी कन्नौज में ही प्रचलित थी। अन्य नगरों में न्याय-अन्याय का उतना ध्यान न दिया जाता। सम्राट के सावधानीपूर्ण शासन-प्रबन्ध के कारण कन्नौज प्रान्त बहुत सुरक्षित हो चुका था और जब-जब सम्राट अन्य प्रान्तों में भ्रमण करते और वहाँ कुछ दिन ठहर जाते, तो वहाँ भी अपराधों की स्थिति नगण्य हो जाती किन्तु वैसे कन्नौज के अतिरिक्त अन्यत्र अपराधों की संख्या कुछ अधिक थी। चोरी, डकैती, धोखाधड़ी एवं अन्य असत्य बोलने की घटनाएँ प्रायः हुआ करतीं। सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य और विक्रमादित्य-सा सुप्रबन्ध साम्राज्य में अब न रहा था।

प्रान्तीय शासकों के पास अपराधियों के मुकदमों की भरमार रहा करती और उन्हें मुकदमा सुलझाने में काफ़ी समय देना पड़ता। हर्ष का शासन सर्वथा अपराधरहित कहना भूल होगी। वे स्वयं न्यायप्रिय एवं कुशल शासक थे, इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

सम्राट का सारा साम्राज्य अनेक प्रान्तों में विभक्त था जिन्हें भुक्ति या देश कहते थे। प्रत्येक प्रान्त जिलों में बंटा था जिन्हें प्रदेश या विषय कहा जाता। अहिच्छत्र, श्रावस्ती आदि प्रान्तों को क्रमशः अहिच्छत्र भुक्ति और श्रावस्ती भुक्ति कहते थे। इसी प्रकार पुंड्रवर्द्धन-भुक्ति, कौशाम्बी-भुक्ति आदि अनेक प्रान्त थे। इन भुक्तियों के शासक को 'उपरिक' नाम से पुकारा जाता। ये उपरिक राजकुल के राजकुमार ही नियुक्त होते थे।

जिले के प्रशासक को विषयपति कहा जाता और इन विषयपतियों की नियुक्ति भुक्तियों के उपरिक (प्रान्तीय प्रशासक) द्वारा होती। कभी सीधे सम्राट द्वारा भी वे नियुक्त किये जाते थे। विषयपति (जिलाधीश) की राजधानी को अधिष्ठान कहा जाता और उनका कार्यालय अधिष्ठानाधिकरण कहलाता। इसी प्रकार प्रान्तीय कार्यालय को उपरिकाधिकरण कहा जाता। ऐसे ही रणभांडागाराधिकरण से सैनिक-प्रधान कार्यालय, विनयस्थिति-स्थापकाधिकरण से सदाचार-शिक्षा का प्रधान कार्यालय और दंडपाशाधिकरण से पुलिस का प्रधान कार्यालय समझा जाता। दांडिक, चौरोद्धरिक, दंडयाशिक आदि नाम पुलिस के विभिन्न कर्मचारियों के थे।

ग्रामीण शासन में वहाँ के मुखिया ही सर्वप्रधान शासक होते थे। ग्रामों में राजा द्वारा नियुक्त अक्षपटलिक (पटवारी) कर ग्रहण करने के लिये नियुक्त होता। कर ग्रहण करने के सर्वोच्च अधिकारी को महाक्षपटलिक कहते थे।

कई प्रकार के कर थे—उद्रंग (एक भूमिकर), उपरिक (नियमित कर से अतिरिक्त कर), वात, भूत, धस्न्य, हिरण्य तथा आदेय आदि विभिन्न कर लिये जाते थे। इनके अतिरिक्त दूध, फल, चरागाह तथा खनिज पदार्थों पर भी कर लिया जाता रहा। यातायात कर भी था। घाटों पर भी चुंगी लगती। बिक्री के लिये माल को आर-पार ले जाने पर महसूल देना पड़ता था। महसूल वसूल करने वाले को शौल्किक कहते थे। किन्तु हर्ष के शासन में उक्त सभी कर बहुत हल्के थे। प्रजा पर कर का भार अधिक न था। आय का छठा अंश कर के रूप में वसूल होता था।

खेतों की सिंचाई का भी प्रबन्ध था। वर्षा के अभाव के कारण जहाँ जलकष्ट होता वहाँ नहरों द्वारा जल-प्रबन्ध किया जाता। यातायात की पर्याप्त सुविधा होने से एक देश का दूसरे देश से काफी व्यापार-सम्बन्ध रहता। चन्द्रगुप्त मौर्य काल की

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

सड़कें अभी भी मौजूद थीं, जिनकी समय-समय पर मरम्मत होती रहती । नगरों की सुन्दरता और उनके विकास के लिये एक अलग विभाग (इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट) ही था । नगरों के सौन्दर्य पर विशेष ध्यान दिया जाता । नगरों की सफाई और स्वास्थ्य के लिये भी भिन्न-भिन्न विभाग थे ।

देश की सुरक्षा के लिए तो अत्यधिक प्रबन्ध था । अपने शासनकाल की अन्तिम स्थिति में हर्ष ने ६० हजार गजारोही, १।। लाख अश्वारोही एवं १।। लाख पदाति सैनिकों की विशाल वाहिनी एकत्र कर ली थी । उसे किसी भी देश के आक्रमण का भय न रहा था । उसका साम्राज्य सुरक्षित था । किन्तु सैनिकों में पूर्ण अनुशासन न था । चन्द्रगुप्त मौर्य और अशोककाल के सैनिकों की तरह हर्ष के सैनिकों में अनुशासन का अभाव था । विजय के लिए यात्रा करते समय सैनिक लोग मार्ग के ग्रामीणों पर मनमाना अत्याचार करते । उन्हें लूटते-खसोटते और ग्रामीण सुन्दरियों को भी तंग करने या उनसे गर्हित व्यवहार करने से बाज न आते । सैनिकों के विरुद्ध हर्ष के यहां सुनवाई न होती । हर्ष अपने सैनिकों से डरते भी थे । उनकी अनुशासन हीनता के कारण विद्रोह हो जाने के भय से सैनिकों के अपराधों का उचित न्याय करना हर्ष की सामर्थ्य के बाहर था । इसी लूट-खसोट और अत्याचारों के कारण ग्रामीण प्रजा सम्राट् की विजय यात्रा के समय उन्हें कोसती । सैनिकों द्वारा नष्ट होती हुई अपनी फसल देखकर ग्रामीण लोग जी भर कर सम्राट् को गालियां देते । चन्द्रगुप्त मौर्य ग्रामीणों के खेत बचाकर अपनी सेनायें ले जाते थे किन्तु हर्ष इसकी चिन्ता न करते थे । राष्ट्र की सुरक्षा के लिए ग्रामीणों के खेतों की उन्हें परवाह न थी । सेना के जाने के मार्ग के लिए लहलहाती खेती काट डालने में हर्ष को दुःख न होता । हाँ, इसके लिए हर्जाने स्वरूप भले ही वे खेत के मालिक को कुछ धन दे देते । लूट-खसोट की कहीं भयानक घटना हो जाती तो भले ही सम्राट् सैनिकों को कुछ दंड दे देते किन्तु वैसे उन्हें न छेड़ने का ही प्रयत्न करते ।

हर्ष के शासन-प्रबन्ध की जहाँ प्रशंसा की जा सकती है वहीं इन सब बातों के कारण उसे त्रुटिपूर्ण भी कहा जा सकता है । ये साधारण त्रुटियां यद्यपि इतने बड़े साम्राज्य में स्वाभाविक हैं किन्तु उस साम्राज्य की तुलना अशोक और चन्द्रगुप्त से नहीं की जा सकती ।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

: २५ :

वलभी पर आक्रमण

समय बीतता जा रहा था । हर्ष शान्तिपूर्वक सुखभोग और प्रजा-रंजन में व्यस्त थे। उन्हें अपनी दिग्विजय की प्रतिज्ञा भी भूल चुकी थी। साम्राज्य की उत्तरोत्तर उन्नति एवं समृद्धि चाहनेवाला सम्राट् आज रमणी-विलास में ही मुग्ध हो अपने इतने मात्र राज्य से ही पूर्ण सन्तुष्ट हो रहा था। प्रधान सेनापति सिंहनाद, प्रधान सचिव भांडी और गजसेनापति स्कन्दगुप्त सम्राट् की इस शिथिलता से बहुत दुखी थे। वे चाहते थे कि सम्राट् अपनी विशाल वाहिनी का सदुपयोग करें और अपने समस्त शत्रुओं को पराजित कर एकच्छत्र साम्राज्य का उपभोग करें। उन्होंने परस्पर विचार-विनिमय के बाद निश्चय किया कि सम्राट् को उद्बोधित किया जाय।

एक दिन सम्राट् अपने विचार-गृह में बैठे कुछ सोच-विचार में संलग्न थे। तीनों मंत्री उनके पास जा पहुँचे। सम्राट् को प्रणाम कर वे लोग बैठ गये। सम्राट् को तीनों के एक साथ आनेपर आश्चर्य हुआ। वे समझ गये, कोई समस्या अवश्य है।

पूछा, 'क्यों भांडी क्या बात है ? आप लोगों ने कैसे कष्ट किया ?'

'कुछ निवेदन करना है श्रीमन्त !' उत्तर सिंहनाद ने दिया।

'कहो, ऐसी क्या बात है जिसके लिए आप लोग अत्यधिक चिन्तित जान पड़ते हैं ?' सम्राट् ने कहा।

'चिन्तित होने का ही विषय है श्रीमान् ! आप इतने बड़े साम्राज्य के अधिष्ठाता हैं। आपको इस प्रकार शान्त बैठे देखकर कौन चिन्तित न होगा। इतनी विशाल वाहिनी, लाखों सैनिक किस दिन काम आयेंगे ? आप स्वयं उपदेश देते थे कि साम्राज्य जितना विशाल हो उतना ही प्रजापालन में सुविधा होती है। आज हम श्रीमान् को यही स्मृति दिलाने आये हैं।' सिंहनाद बोले।

'ओ ! तो कहीं रण-प्रस्थान की इच्छा है क्या ?' सम्राट् ने मुस्करा कर पूछा।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

'हमारी इच्छा से काम नहीं चल सकता महाराज! इच्छा आपको करनी चाहिये।' भांडी ने कहा।

'तो सोचना क्या है? रणयात्रा की तैयारी करो। हम सोच ही रहे थे। इस बार हम पश्चिम के वलभी और गुर्जर का मानमर्दन करना चाहते हैं। आप लोगों का क्या परामर्श है?'

'श्रीमान्! सर्वोत्तम होगा, वलभी जिसके हाथ में होगा उसकी स्थिति सुदृढ़ रहेगी। पुलकेशी भी इसी ताक में है। इसके पूर्व ही हम उस पर अधिकार कर लेना चाहिये।' स्कन्दगुप्त ने उत्साह दिलाते हुए कहा।

'किन्तु एक वात है महाराज! वलभी पर आक्रमण का अर्थ है कभी न कभी पुलकेशी से भी दो हाथ करना पड़ेंगे।' भांडी ने दूर की वात कही।

'तो इससे कौन डरता है? पुलकेशी से यों ही एक दिन भिड़ना अनिवार्य है भांडी! एक म्यान में दो तलवारें नहीं रह सकतीं।'

'हाँ, तो ठीक है। पुलकेशी से युद्ध करने की तैयारी करके ही वलभी से छेड़-छाड़ करना उचित है।'

'हमारी सैन्य-शक्ति पुलकेशी को परास्त करने में पर्याप्त सामर्थ्य रखती है।'

और सम्राट् ने सेनापति को रणसज्जा का आदेश दिया। तीनों सलाहकार प्रणाम कर लौट गये।

रणप्रस्थान की तैयारियों का तत्काल आदेश हुआ। वहुत दिनों से तड़प रहे सैनिकों की जान में जान आई। खाली वैठे-वैठे वे दिन भर मक्खियाँ मारा करते थे। युद्ध-यात्रा का नाम सुनते ही उनके चेहरे प्रफुल्लित हो गये। आनन्द के मारे कूद-कूद कर वे आकाश छूने लगे।

सैन्य सामग्री अस्त-व्यस्त पड़ी थी। कई वर्षों से कोई युद्ध न हुआ था। युद्ध की पुनः तैयारी में दो सप्ताह लग गये। सम्राट् का सम्प्रति केवल वलभी से लड़ने का विचार था। समस्त सेना को ले चलने की आवश्यकता नहीं थी। दस हजार अश्वारोही, दो हजार गजारोही और पांच हजार पैदल सैनिकों की वाहिनी ही ले चलने का सम्राट् का आदेश हुआ।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

समस्त तैयारियाँ हो चुकने पर शुभ मुहूर्त्त मे सम्राट् ने प्रस्थान किया। भांडी को कन्नौज का शासन भार दिया गया। यद्यपि उसका आग्रह साथ चलने का था किन्तु सम्राट् ने उससे वहीं रहने का अनुरोध किया। बड़े ही साज-बाज से रण-चण्डी चल पड़ी।

वलभी नरेश ने ज्यों ही सुना, उसका हृदय कांप उठा। सम्राट् हर्ष के सामने किसकी शक्ति थी, जो युद्ध में दो क्षण ठहर सके। फिर भी अपने मंत्रियों के प्रोत्साहन पर वह वीर मैदान में आने के लिए प्रस्तुत हो गया। उसके शूर-वीर सैनिक भी कमर कस कर तैयार हो गये। वलभी नरेश ध्रुवभट्ट उतावले और क्रोधी स्वभावका व्यक्ति था। क्षण में क्रुद्ध या उतावला हो जाना और धमकी पाकर भयके मारे कांपने लगना उसके नैसर्गिक गुण थे। मंत्रियों के उत्साह से विना समझे-सोचे वह रण-क्षेत्र में कूद तो पड़ा किन्तु परिणाम क्या होगा, इस पर उसने तनिक भी विचार करने की आवश्यकता न समझी।

सम्राट् हर्ष को अपने गुप्तचरों द्वारा पहले ही ज्ञात हो गया कि वलभी नरेश युद्ध में दो हाथ करने की लालसा रखता है। अतः उसे चेतावनी देने के लिए दूत भेजने की उन्होंने आवश्यकता न समझी। सीधे रणक्षेत्र में प्रथम भेंट करने के इरादे से सम्राट् विल्कुल मौन रहे और उन्होंने यह भी निश्चय कर लिया कि स्वतः वलभी -सेना से युद्ध न किया जाय। उसके आक्रमण के मुकाबले के लिए ही दो हाथ हों। सम्राट् की आज्ञा से उनकी विशाल वाहिनी चुपचाप वलभी राज्य में प्रवेश करती राजधानी की ओर ऐसे बढ़ने लगी मानों अपने राज्य का भ्रमण कर रही हो।

राजधानी से पूर्व किसी ने सामना नहीं किया। राजधानी के पास पहुँचते ही हर्ष ने आज्ञा दी कि नगर चारों ओर से घेर लिया जाय। नगर प्रवेश के सभी द्वार वन्द थे। अन्दर वलभी की सेनाएँ डटी थीं।

हर्ष की सेना ने द्वार तोड़ने आरम्भ किये। यद्यपि उन लौह द्वारों को तोड़ना साधारण बात नहीं था और तोड़ने वालों के ऊपर दीवारों से ऊपर से पत्थर की मार पड़ रही थी; किन्तु हर्ष-सेना वहुतों की वलि देने के बाद एक द्वार तोड़ पाने में समर्थ हो गई। वस फिर क्या था! धड़ाधड़ हर्ष के सैनिक नगर में प्रवेश करने

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

लगे। प्रवेश द्वारों पर हीं शत्रु सेना डटी थी। यहीं मार-काट मची जोरों में। वलभीनरेश भले ही भीरु स्वभाव का था किन्तु उनके सैनिकों में अद्भुत उत्साह और वीरता कूट-कूट कर भरी थी। ज्योंही हर्षके सैनिक द्वार से प्रवेश करते, शत्रु सेना उन्हें वहीं काटकर फेंक देती। नगर की चहारदीवारी के ऊपर छिपकर बैठने का काफी स्थान था। उसके ऊपर से शत्रु के सैनिक अन्दर प्रवेश करने वाले हर्ष के सैनिकों पर धड़ाधड़ पत्थर फेंक-फेंककर मार रहे थे। नीचे खड़े सैनिक तलवारों भालों से ही उन पर टूट पड़ते। हर्ष की सेना के आगे बढ़ने में यहाँ भयंकर बाधा उपस्थित हुई। एक साथ सेना अन्दर घुस नहीं सकती थी। थोड़े-थोड़े सैनिक ज्यों ही घुसते, तत्काल मार डाले जाते।

अपनी सेना का इस प्रकार संहार देख हर्ष क्रोध से लाल-पीले हो रहे थ। उन्होंने सेनापतियों से परामर्श किया और तत्काल एक युक्ति खोज निकाली। नगर के दक्षिण के द्वार असुरक्षित थे। हर्ष की सेना उत्तर की ओर डटी थी। अतः शत्रु ने भी अपनी सम्पूर्ण सेना इसी ओर डटा रखी थी।

हर्ष ने तत्काल अपनी चौथाई सेना दक्षिण की ओर भेज दी। शत्रु को इसका कुछ पता न लग सका। यद्यपि थोड़े बहुत सैनिक वहाँ भी द्वार रक्षा पर नियुक्त थे किन्तु हर्ष की विशाल सेना का वे क्या सामना करते? हर्ष स्वयं दक्षिण के मोर्चे पर गये थे। उन्होंने सीढ़ियों द्वारा सैनिकों को दीवार पर चढ़ाकर अन्दर कूद पड़ने का आदेश दिया। आज्ञा पाकर सैनिक धड़ाधड़ सीढ़ियों से ऊपर चढ़ने और अन्दर कूदने लगे। यहाँ शत्रु के जो थोड़े बहुत सैनिक थे उन्होंने हर्ष के सैनिकों से हाथा-पाई की किन्तु थोड़ी देर में ही वे इनके हाथों ढेर हो गये। बस फिर क्या था! द्वारों पर अधिकार होते ही उन्हें खोलकर हर्ष की सारी सेना अन्दर प्रवेश कर गई। दक्षिण के द्वारों पर शत्रु का आक्रमण देख एक अश्वारोही द्वार-रक्षक अपने सेनापति को सूचना देने उत्तर की ओर दौड़ा किन्तु जब तक वह सूचना देता और वहाँ से सेना की एक टुकड़ी उस ओर आती उससे पूर्व ही हर्ष की सेनाएँ प्रवेश कर राजभवन तक जा पहुँचीं। शत्रु की यह चाल देखकर वलभी की सेनाएँ उत्तर का द्वार छोड़कर राजभवन की रक्षा के लिये दौड़ीं। इधर द्वार खाली होते ही हर्ष की सम्पूर्ण वाहिनी भी अन्दर घुस आई और दोनों ओर वलभी की सेना पर दुतरफा

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

आक्रमण होने लगा। भला सम्राट हर्ष की विशालवाहिनी के उमड़ते प्रबल वेग के सामने वलभी-सेना कितनी देर ठहरती ? दोनों ओर की मार ने तो उस पर तबाही ला दी। राजभवन के पास ही वलभी की बची-खुची सेना शत्रु से घिर गई और देखते-देखते रण-क्षेत्र में उसका सफाया हो गया।

वलभी-नरेश ध्रुवभट्ट ने ज्योंही दक्षिण का द्वार टूटने और शत्रु-सेनाओं के दुर्ग-वेश का संवाद सुना तो अपने पुराने स्वभाव के कारण तत्काल भयभीत हो कहीं भाग जाने का विचार करने लगा। इतने में ही एक सैनिक ने आकर उसे सूचना दी कि शत्रु राजभवन की ओर बढ़ रहा है। ध्रुवभट्ट के तो प्राण सूख गये। उसने अपने अंगरक्षकों को तत्काल अपना घोड़ा लाने की आज्ञा दी और तत्क्षण भागने के लिए तैयार हो गया। पश्चिम के द्वार पर संकट नहीं था। वह अंगरक्षकों के साथ गुप्त मार्ग से राजभवन से निकल कर उसी द्वार से बाहर भाग गया।

राजभवन पर अधिकार करने के बाद ध्रुवभट्ट का पता न चलने पर हर्ष समझ गये कि शत्रु भाग निकला। उन्होंने तत्काल उसका पीछा करने का सैनिकों को आदेश दिया, किन्तु ध्रुवभट्ट को भाग निकलने का पर्याप्त अवकाश मिल चुका था। हर्ष के सैनिक बहुत खोज के बाद भी उसे न पकड़ पाये।

ध्रुवभट्ट भागकर गुर्जर राज्य में जा पहुँचा। गुर्जर यद्यपि बहुत छोटा-सा राज्य था किन्तु उसका शासक दद्द बहुत साहसी, वीर और निडर था। ध्रुवभट्ट को शरण में आया देखकर उसने उसका स्वागत किया और निर्भीक हो वहीं रहने की अनुमति दे दी। वह जानता था कि अपने शत्रु को शरण देने के कारण हर्ष उसपर बहुत कुपित होंगे किन्तु कर्त्तव्यपालन के सामने उसने हर्ष की तनिक परवाह न की। साथ ही चालुक्य-सम्राट पुलकेशी का उसे भरोसा था। अपना सीमान्त राज्य होने के कारण गुर्जर को अपनी ओर मिलाये रहना पुलकेशी के लिए आवश्यक था और इसी दृष्टि से हर्ष भी गूर्जर को अपने अधिकार में करना चाहते थे, किन्तु उनकी यह इच्छा पूर्ण न हो सकी। परिस्थितिवश वे गुर्जर पर अपना अधिकार करने से वंचित रहे।

राजधानी पर हर्ष का पूर्ण अधिपत्य हो चुका था। धीरे-धीरे उन्हें गुप्तचरों द्वारा ज्ञात हो गया कि ध्रुवभट्ट गुर्जर में जा पहुँचा है। यह पता

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

पाकर उन्होंने तत्काल अपना दूत वहाँ भेजा। उन्होंने भांडी के नाम से पत्र लिखवाया।

स्वस्ति श्री वलभी नरेश !

आपका राज्य हमारी सेनाओं के पूर्ण अधिकार में आ चुका है। आपने एक वीर राजा की तरह यथासम्भव हमारी सेनाओ से मुकावला किया किन्तु चोर की तरह भाग कर अपने उज्ज्वल नाम पर धब्बा लगा दिया ! हम आपको सविधि सूचित कर रहें हैं कि यदि आप सम्प्रत्ति स्वयं आ कर आत्मसमर्पण कर दें तो आपके साथ सम्मानजनक व्यवहार कर वलभी का राज्याधिकार आपको पुनः दे दिया जायगा अन्यथा एक पलायित शत्रु की कोटि में आप भी गिने जायँगे और कभी भी पकड़ जाने पर बन्दी जीवन बिताने के अतिरिक्त तब आपके सामने और कोई म.र्ग न होगा।

—आपका

भांडी (प्रधान सचिव)

महामान्य भारत सम्राट की ओर से

दूत द्वारा पत्र पाकर ध्रुवभट्ट काँप उठा। वह संकट में पड़ गया। उसे सन्देह था कि कहीं यह सम्राट की चाल न हो और आत्म-समर्पण करते ही कहीं उसके प्राण भी शत्रु के समर्पित न हो जायँ। साथ ही दूसरी ओर यूं भी उसके प्राण सूखने लगते। 'कब तक भागता फिरूँगा ? एक न एक दिन प्रबल शत्रु मुझे पकड़ ही लेगा। तब और अधिक कष्ट भोगने होंगे।' विचारों के इन द्वन्द्व में वह पिसने लगा। अन्त में उसके बुद्धिमान मस्तिष्क ने प्रथम मार्ग अपना कर आत्म-समर्पण कर देना ही उचित करार किया और गुर्जर नरेश को उसकी कृपा के लिए धन्यवाद देकर विदा ले वह दूत के साथ ही वलभी चला आया। मार्ग में उसका हृदय बार-बार काँप उठता था। बड़ी कठिनाई से वह अपने दिल की धड़कन को थामने में समर्थ हो सका।

आखिर वलभी आ ही गई। डरते-डरते वह सम्राट के आगे पहुँचा। उसे सिंहासन पर सम्राट हर्ष मानों साक्षात यमराज की तरह दीख रहे थे। वह झुक

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

कर प्रणाम करने के बाद सामने खड़ा काँपने लगा। सम्राट को उसकी यह स्थिति देख दया हो आई।

वोले, 'हम तुम्हे अभय देते हैं ध्रुवभट्ट! तुम घबराओ मत!' उन्होंने सामने आसन पर बठने का उसे संकेत किया। अब जाकर ध्रुवभट्ट की जान में जान आई। वह चुपचाप आसन पर बठ गया।

सम्राट् ने प्रधान सेनापति सिंहनाद को संधिपत्र निकालने का आदेश दिया। सिंहनाद ने संधिपत्र निकाला और ध्रुवभट्ट को देने के लिए उठा। ध्रुवभट्ट ने स्वयं आगे वढ़कर संधिपत्र सिंहनाद के हाथ से ले लिया। संधिपत्र में अनेक शर्तें थीं जिनके अनुसार भविष्य में कभी भी सिर उठाने के लिए प्राणदण्ड की धमकी दी गई थी। थी तो यह शर्त भयंकर, किन्तु अन्य शर्तों के अनुसार ध्रुवभट्ट को समस्त राज्य का अधिकार वापस मिल रहा था। उसने चुपचाप संधिपत्र पर हस्ताक्षर कर दिये।

ध्रुवभट्ट के आने के पूर्व मंत्रियों से कई बार सम्राट् ने गम्भीर परामर्श किया था। सभी की दृष्टि में वलभी एक महत्त्वपूर्ण राज्य था। पुलकेशी और हर्ष, ये दो हो सम्राट् भारत के दक्षिण और उत्तर में दो विशाल साम्राज्यों पर शासन करते थे। इन्हीं दोनों साम्राज्यों की सीमा के बीच में वलभी राज्य पड़ता था। अतः दोनों ही इस राज्य पर अपना अधिकार करने को उत्सुक रहते किन्तु हर्ष ने पहल कर राजनीति में पुलकेशी से बाजी मार ली।

हर्ष जानते थे पुलकेशी अपनी राज्य-सीमा पर अपने शत्रु का अधिकार देख कर जल उठेगा और समय पाकर अवश्य ही वलभी पर आक्रमण किये बिना भी न मानेगा। इसलिए वलभी को अपना पूर्ण मित्र बनाने के लिए उन्होंने एक कूट-नीतिक चाल चली। प्राचीन काल में राजाओं के वैवाहिक सम्बन्ध राजनीतिक आधारों पर ही निर्भर थे। सम्राट हर्ष ने भी ध्रुवभट्ट को अपना दामाद बनाने का निश्चय किया।

संधिपत्र पर हस्ताक्षर करने के बाद जब ध्रुवभट्ट ने जाने की आज्ञा माँगी, तो हर्ष सिंहासन से उठ खड़े हुए। बोले—'ध्रुवभट्ट, यह लो!'

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

ध्रुवभट्ट ने देखा, सम्राट् के हाथ में एक नारियल और सुन्दर दुपट्टा है, पुरोहित तिलक का सामान लिये खड़ा है। ध्रुवभट्ट समझ न पाया बोला, 'यह क्या श्रीमन्त ?'

सम्राट् बोले, 'यह लो तो बताएँ।'

ध्रुवभट्ट ने नारियल और दुपट्टा ले लिया। पुरोहित के हाथ में सोने का थाल था। उसमें से तिलक लेकर सम्राट् ने ध्रुवभट्ट के माथ पर लगा दिया। बोले, 'अब समझे ?'

'समझा श्रीमन्त !' ध्रुवभट्ट जान गया कि सम्राट् उससे वैवाहिक सम्बन्ध करना चाहते हैं। 'सम्राट् की इस कृपा के लिए आजीवन ऋणी रहूँगा।' उसने सम्राट् का चरण स्पर्श किया। सम्राट् ने आशीर्वाद दिया। अब ध्रुवभट्ट के हृदय का भय लुप्त हुआ। उसे सम्राट् के संधिपत्र पर पूर्ण विश्वास ही नहीं हो गया, वरन् इस संधिपत्र को उसने बेकार भी समझ लिया। सम्राट् के दामाद के लिए संधिपत्र कैसा ?

सम्राट् की कन्या बड़ी रूपवती और गुणवती थी। १४ वर्ष की आयु ! गोल-गोल सुन्दर सलोना मुखड़ा। शिक्षा में बढ़ी-चढ़ी और सदा हँसमुख रहनेवाली सम्राट् की लाडली एकमात्र कन्या ! सम्राट ने उसे राजनीति की भेंट चढ़ा कर कोई बुरा नहीं किया। ध्रुवभट्ट भी उस सुन्दर कन्या के अनुरूप ही था। सुन्दर तेजस्वी रूप। २२ वर्ष की युवावस्था। सुशील स्वभाव ! डरपोक और उतावलेपन की आदत भी चारों ओर से प्रबल शत्रुओं से घिरे रहने के कारण थी। अब हर्ष की छत्रछाया में रहकर उसका सम्पूर्ण भय लुप्त हो गया।

शुभ मुहूर्त्त में सम्राट् ने कन्यादान किया। वलभी में ही विवाहोत्सव हुआ। सम्राट् की प्यारी बेटी, उस पर एकमात्र संतान ! विवाहोत्सव इतनी धूमधाम से किया गया कि उसके जन्म पर भी ऐसा आनन्दोत्सव न मनाया गया होगा।

कई मास तक सम्राट् हर्षवर्द्धन वलभी में अपने दामाद के यहाँ ही रहे और वहाँ की शासन-व्यवस्था सुधारने का प्रयत्न करते रहे।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

: २६ :

हर्ष की महान् पराजय

सम्राट् अपने जीवन में कभी असफल नहीं हुए । सदैव जिस कार्य में उन्होंने हाथ लगाया उसे सफल करके दिखला दिया । किन्तु विधाता ने एक स्थान पर उन्हें महान् असफलता प्रदान कर उनके निष्कलंक चन्द्रमुख पर एक काला धब्बा लगा दिया । वलभी पर अपना पूर्ण आधिपत्य स्थापित करने के बाद हर्ष से एक भारी राजनीतिक भूल हो गई । उन्होंने वलभी नरेश को शरण देने के अपराध में गुर्जर नरेश से बदला लेने की ठान ली । गुर्जर दक्षिण के महान् शासक पुलकेशी का आश्रित था । उस पर आक्रमण करने का अर्थ, दूसरे अर्थों में पुलकेशी को रण-निमंत्रण देना था । हुआ भी यही ! सम्राट हर्ष ने गुर्जर नरेश को चेतावनी दी कि शीघ्र आत्मसमर्पण करो अन्यथा तुम्हें तुम्हारे राज्यसहित नष्ट, भ्रष्ट और छिन्न-भिन्न कर दिया जायगा ।

गुर्जर राजा भयभीत अवश्य हुआ किन्तु अपनी निर्भीकता में वह प्रसिद्ध था । उसने तत्काल युद्ध की तैयारी कर ली और साथ ही पुलकेशी को भी इसकी सूचना दे दी । पुलकेशी तो सुनते ही भड़क उठा । उसे अपने शत्रु हर्ष की साम्राज्य-विस्तार की यह प्रवृत्ति सह्य न हुई । हर्ष के अपनी राज्यसीमा के बिलकुल निकट पहुँचने जैसा संकट उसे सह्य कैसे होता । उसने भी तत्काल रणवाहिनी को तैयार होने के आदेश दिये । यद्यपि पुलकेशी का राज्य हर्ष के विशाल साम्राज्य की बराबरी नहीं कर सकता था किन्तु उसकी सैन्यशक्ति पर्याप्त सुदृढ़ थी । उसकी गज-सेना बहुत प्रबल और महान् थी जब कि हर्ष की गजवाहिनी उस समय तक अजेय न बन पाई थी ।

हर्ष ने गुर्जर पर चढ़ाई करने के लिये कूच किया और उधर राजधानी में शेष सम्पूर्ण सेना वलभी की ओर लेकर आने का आदेश भांडी के पास भेज दिया । हर्ष जानते थे कि गुर्जर को छेड़ने पर पुलकेशी का युद्ध में कूद पड़ना सम्भव है । उक्त आदेश पाकर जितनी तीव्र गति से भांडी ने अपनी सेनाओं के साथ कूच किया, उससे कहीं शीघ्र पुलकेशी की सेनाएँ रणक्षेत्र के लिये प्रस्थित हो गईं ।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

हर्ष ने जिस निर्भीकता से गुर्जर पर आक्रमण किया उसी निर्भीकता से उसने हर्ष की विशाल वाहिनी का, प्राण हथेली पर लेकर, मुकाबला किया। गुर्जर नरेश को इस बात की सूचना मिल चुकी थी कि पुलकेशी की सेनाएँ उसकी रक्षा के लिए प्रस्थान कर चुकी हैं। वह बड़ी वीरता के साथ हर्ष की विशाल वाहिनी को दो दिन तक नगर के बाहर रोके रहा। प्रबल आक्रमणों के बाद भी हर्ष गुर्जर की राजधानी में प्रवेश न कर पाये। इसी समय उन्हें गुप्तचरों ने सूचना दी कि पुलकेशी सिर पर आ धमका है। हर्ष बहुत चिन्तित हुए किन्तु उनकी विशाल वाहिनी भांडी के नेतृत्व में आ ही पहुंची थी। यह संवाद भी उन्हें मिल चुका था। अब उन्हें एक महान् युद्ध के लिए तैयार होना था। उन्होंने सेनापतियों से गम्भीर परामर्श किया और सेना के व्यूह बनाने की तैयारी की। सिंहनाद के परामर्श के अनुसार उन्होंने गुर्जर की राजधानी से हटकर नर्मदा-तट पर रणवाहिनी का मोर्चा लगाने का निश्चय किया।

नर्मदा क्षेत्र बहुत विस्तृत था। वहाँ युद्ध की अनेक सुविधाएँ प्राप्य थीं। सम्राट् अपनी सेना लेकर राजधानी छोड़कर पीछे हट गये और भांडी की तथा अपनी दोनों सेनाओं का विशाल मोर्चा नर्मदा के पार लगाया ताकि शत्रु नदी पार करने के बाद शीघ्रता में भाग न सके।

नर्मदा से कई मील इधर ही हर्ष की सेनाओं ने मोर्चा लगाया था। बाध्य होकर पुलकेशी को नर्मदा पार करनी पड़ी। उसके लिए वापिस भागते समय वह नदी काफी संकट बन सकती थी। किन्तु करता ही क्या? पहले तो उसने सोचा कि वह नर्मदा के इस पार डटा रहे। शत्रु स्वतः युद्ध करने आयेगा। किन्तु हर्ष इस समय गुर्जर प्रान्त के अन्दर प्रवेश कर चुके थे। राजधानी के अतिरिक्त नर्मदा पार शेष सम्पूर्ण प्रदेश पर हर्ष का अधिकार हो चुका था, अतः वहाँ से उसकी सेना को खदेड़ना आवश्यक था। वह अब यह भी जान चुका था कि हर्ष स्वतः आगे लड़ने नहीं आयेगा। अस्तु, और भी कई कारणों वश पुलकेशी को नदी पार आना पड़ा।

उसका नदी पार आना था और कुछ दूर आगे बढ़ना था कि हर्ष की प्रथम विशाल टुकड़ी से भिड़न्त हो गई। हर्ष ने नदी तट पर युद्ध करने की ठान ली

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

और मोर्चा छोड़कर आगे बढ़ आये। बस तब क्या था ? दोनों प्रबल वाहिनियों की भयंकर टक्कर हो गई। बड़ा ही तुमुल युद्ध आरम्भ हो गया। पुलकेशी की सैन्यशक्ति कम बलशालिनी न थी। बराबरी का युद्ध हो रहा था। हर्ष सहज ही उसे न दबा सकते थे। कई दिन तक भयानक मार-काट मचती रही किन्तु कोई भी पक्ष पीछे हटने को तैयार न हुआ।

अभी तक दोनों पक्षों की अश्वारोही सेनाएँ तलवार भाला आदि शस्त्रों से युद्ध कर रही थीं। पुलकेशी ने जब देखा कि शत्रु प्रबल है तो उसने तत्काल अश्व सेना को वापिस लौटने का आदेश दे दिया। हर्ष ने समझा शत्रु भाग रहा है। उन्होंने भागती शत्रुसेना का पीछा किया किन्तु वे पुलकेशी की कूटनीति समझ न पाये। जब पुलकेशी शत्रु को अपना पीछा करा कर उसके शिविरों से काफी दूर भगा लाया तो अचानक अपनी सुरक्षित विशाल गजवाहिनी को उसने आगे कर दिया। इस प्रकार धोखे से इतनी दूर लाकर उस पर अचानक मदमत्त हाथियों की सेना छोड़ देने से वह घबरा उठी। दूसरा कारण यह भी था कि हाथियों पर से पुलकेशी के सैनिक बाण बरसा रहे थे और हर्ष की अश्वारोही सेना तलवारों-भालों से लड़ रही थी। धड़ाधड़ बाणों द्वारा हर्ष के सैनिक गिरने लगे। थोड़ी देर में ही हर्ष के मृत सैनिकों से मैदान पट गया। जब तक हर्ष ने अपनी गजारोहिणी सेना मंगाई, तबतक उनके काफी सैनिक मारे गये।

अस्तु हर्ष के गजारोही भी आये। दोनों ओर से बाणयुद्ध होने लगा। हर्ष की धनुर्धर सेना बाण चलाने में बहुत निपुण थी। उसने थोड़ी देर में ही पुलकेशी के हजारों सैनिकों को मौत के घाट उतार कर अपने सैन्यसंहार का बदला ले लिया। इसी के साथ हर्ष ने भी अबकी चाल चली। गजारोहियों को आगे कर पुलकेशी ने अश्वसेना को एक ओर हटा दिया था। हर्ष ने अपनी अश्वारोहिणी का एक बड़ा दल ीछे से पुलकेशी के अश्वारोहियों पर आक्रमण के लिए भेज दिया। उसने जाकर अचानक पुलकेशी की अश्ववाहिनी पर हल्ला बोल दिया। इस अचानक आक्रमण से उसमे भगदड़ मच गई। पुलकेशी के अश्वारोही धड़ाधड़ मारे जाने लगे।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

पुलकेशी को पता चला। उसने तत्काल अपनी गजवाहिनी का एक छोटा सा दल अश्वारोहियों की रक्षा के लिए भेजा। पुलकेशी की गज सेना हर्ष की गजवाहिनी से संख्या में अधिक थी। अतः हर्ष की गजसेना का डट कर मुकावला करते रहने पर भी उसके पास गजवाहिनी का वड़ा दल अतिरिक्त था जो हर्ष की अश्वसेना पर टूट पड़ा। यद्यपि अव तक हर्ष की अश्ववाहिनी ने शत्रु सैनिकों का काफी सफाया कर दिया था किन्तु अब गज सेना की मार से वह मैदान छोड़कर भाग खड़ी हुई। भागते-भागते वह इधर के मोर्चे पर आकर रुकी जहाँ हर्ष की गजवाहिनी शत्रु से डटी थी।

यहाँ हर्ष के दुर्भाग्य ने वुरा पलटा खाया। ज्योंही हर्ष की अश्वसेना भागकर यहाँ तक पहुँची, उनकी गजवाहिनी में भी भगदड़ मच गई। हाथियों में एक वहुत वुरी आदत होती है कि जव कहीं भगदड़ मचती है तो स्वयं भी भागना आरम्भ कर देते हैं। इसलिए सेनापतियों को इस वात का वड़ा ध्यान रखना पड़ता है कि हाथियों के सामने किसी प्रकार की भगदड़ न हो पाये। यही इनसे भूल हुई। जिसका परिणाम यह हुआ कि गज सेना वुरी तरह अपने ही सैनिकों को कुचलती हुई भागी।

भागती हुई गज सेना पर शत्रु के बाण भयंकर वार कर रहे थे जिससे हाथी चिग्घाड़ मार-मार कर गिरते जा रहे थे और उनका संहार हो रहा था। इसी वीच एक वहुत वड़ी दुर्घटना हुई कि शत्रुसेना का एक ऐसा प्रवल बाण सरसराता हुआ आया जो गज सेनापति स्कन्दगुप्त की पीठ चीरता हुआ पार निकल गया। सेनापति 'आह' करके हाथी पर गिर पड़े। गजसैनिकों में हाहाकार मच गया किन्तु इस भगदड़ में किसी को किसी की सुध न थी। भागते-भागते गजसेना कई मील दूर आकर रुकी। पुलकेशी कुछ दूर पहले ही हर्ष की सेना का पीछा करता अपनी वाहिनी लौटा ले गया। सायंकाल भी हो चुका था। उस दिन का युद्ध समाप्त हो गया।

आज की पराजय से हर्ष बहुत चिन्तित थे। अपने गज-सेनापति की मृत्यु से हर्ष अत्यधिक दुखी हुए। इस युद्ध में उनकी यह सर्वाधिक अपूरणीय क्षति हुई थी। क़िन्तु अव क्या होना था? गज सेनापति की ससमारोह सम्मानपूर्वक

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

अन्त्येष्टि के बाद रात में अनेक योजनाएँ तयार की गईं। दूसरे दिन पुनः युद्ध आरम्भ हुआ। नये उत्साह और नई उमंगों से दोनों पक्ष की वाहिनियाँ इस दुनिया का भार हल्का करने में लग गईं। देखते-देखते पृथ्वी रक्त से लाल हो गई। सैनिकों के कटे हाथ-पैर, धड़ और घोड़े-हाथियों के शवों से नर्मदा तट महाश्मशान बन रहा था। महाभारत मच रहा था। घोड़ों और सैनिकों की बेतहाशा भगदड़ से धूल से आकाश यों भर रहा था, मानो वर्षा ऋतु के काले मेघ छा गये हों। उनमें तलवारों का टकराना भालों का चमकना, चमकते वाणोंका उड़ना, भयानक बिजली चमका और कड़का रहे थे। कोलाहल से रणभूमि इतनी गूंज रही थी कि कुंभीपाक नरक के नारकी लोगोंकी चीत्कार भी उससे मात खाती थी।

उस दिन भी दोनों ओर के सैनिकों की संख्या कुछ कम हुई किन्तु अभी यह अनुमान लगाना असम्भव था कि कौन पक्ष विजय-श्री का आलिंगन करेगा। इसी प्रकार कई दिन और बीते किन्तु पुलकेशीकी गजसेना प्रबल होने के कारण हर्ष की गजवाहिनी का दिन-प्रतिदिन संहार हो रहा था। सम्राट् हर्ष के लिए यह एक प्रवल चिन्ता का कारण था। हर्ष की विशाल वाहिनी ने भी शत्रु के सैनिकों का अत्यधिक संख्या में संहार किया था किन्तु उन्हें अपनी गजसेना के ह्रास पर गहरा शोक था।

दूसरा दिन हुआ । इतिहास का महत्वपूर्ण दिन! जिस दिन सम्राट् के जीवन की समस्त सफलताओं में एक महान् असफलता की संख्या भी जुड़ गई। यह हर्ष के जीवन की अनहोनी और महाशोकग्रस्त घटना थी। उस दिन मध्याह्न में ही हर्ष की सेना के पैर उखड़ गये। न जाने पुलकेशी को अपनी गजसेना को अपने काबू में रखने का ढंग कैसे आता था? आज तक उसकी गजवाहिनी में कभी भगदड़ न मची थी जब कि हर्ष के हाथियों में प्रायः भगदड़ हो जाती थी। उस दिन भी यही हुआ। उस दिन युद्ध आरम्भ होते ही हर्ष की शक्ति पर एक गहरी चोट पड़ी। वह थी सेनापति सिंहनाद का वीर गति पा जाना। सेनापति अधिक वृद्ध थे। महाराज प्रभाकरवर्द्धन के समय से देश की सेवा करते आ रहे थे। उन्होंने वड़े-बड़े युद्धों में अपने अद्भुत कौशल दिखाये थे। वास्तव में प्रभाकरवर्द्धन के युद्धों की सफलता का कारण सिंहनाथ का कुशल सैन्यसंचालन

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

ही था। वृद्ध सेनापति लड़ते-लड़ते अत्यधिक घायल हो चुके थे। आज उनका एक अद्भुत वीर से सामना पड़ा, जिसके हाथों काफी देर तक लड़ने के बाद वे वीर-गति को प्राप्त हो गये।

सेनापति की मृत्यु से तो हर्ष की रीढ़ ही टूट गई। पुलकेशी विशेष रूप से तैयार था। ज्योंही आज भी हर्ष की गजवाहिनी में तनिक घबराहट के चिह्न दिखाई दिये कि पुलकेशी की गजसेना उस पर बुरी तरह टूट पड़ी। परिणाम वही हुआ जो सम्भावित था। सेनापति की मृत्यु के शोक में हर्ष अपनी गज सेना पर काबू न पा सके और वह भागने लगी। पीछे से शत्रु प्रबल प्रहार करता उनका पीछा करता रहा। इस बार हर्ष के दुर्भाग्य ने उसे पुलकेशी के हाथों पूर्ण पराजित करके छोड़ा। हर्ष की गज सेना भागते-भागते मीलों दूर दौड़ गई किन्तु वीर पुलकेशी बराबर उसका पीछा करता रहा। हर्ष ने अनेक बार अपनी भागती सेना को वापिस लाने का प्रयत्न किया किन्तु हाथी क्योंकर मानते। महावतों की एक न चली। वैसे हाथी रुक भी जाते किन्तु पीछे से शत्रु की मार इतनी प्रबल थी कि कहीं रुक पाना संभव न था। अन्ततः शत्रु को नर्मदा से ३० मील दूर भगा कर पुलकेशी लौट आया।

सायंकाल हो चुका था। हर्ष की भागी सेना में भी दम न रहा था कि पुलकेशी की लौटती सेना पर आक्रमण करे। उस समय यदि हर्ष ने साहस और बुद्धि से काम लिया होता तो सफलता उसी की होती। उन्हें चाहिये था कि पुलकेशी की लौटती सेना पर आक्रमण कर इतना भगाते कि उसे नर्मदा में डूब मरने के अतिरिक्त और कोई चारा न रहता? किन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। उन्हें यह सलाह देता भी कौन? दोनों कुशल सेनापति मर चुके थे। हर्ष सेनापति की मृत्यु से हताश से हो रहे थे। दुष्परिणाम यही हुआ कि इतिहास में हर्ष के नाम एक भारी पराजय का कलंक लग ही गया। हर्ष के जीवन की सबसे बड़ी और सबसे आखिरी दुर्घटना यही थी।

रात्रि में शोकमग्न वाहिनी ने बड़ी धूमधाम से वीर अमर योद्धा सेनापति सिंहनाद की अन्त्येष्टि क्रिया की। युद्ध में सेनापति का कोई सम्बन्धी मौजूद न था। अतः स्वयं सम्राट् ने अपने हाथों पितृतुल्य सेनापति की क्रियाएँ सम्पन्न

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

कीं। रात्रि में ही सभी छोटे-बड़े परामर्शदाताओं की बैठक बुलाकर हर्ष ने भविष्य का कार्यक्रम निर्धारित करने की सबसे राय मांगी। अधिकांश ने यही इच्छा प्रकट की कि अब और अपनी सेना का संहार कराना मूर्खता होगी। सभी ने कहा कि दक्षिण-विजय का विचार सम्प्रति त्याग देना चाहिये। हर्ष स्वयं भी घबरा चुके थे। दोनों सेनापतियों की मृत्यु के साथ उन्हें सबसे बड़ा दुःख था। अपनी गज सेना के विनष्ट होने का। आधी से अधिक गजवाहिनी रण-चण्डी की बलि चढ़ चुकी थी, और इसी गजसेना पर हर्ष को अपनी सैन्य-शक्ति का गर्व था। अब रही सही सेनाओं की भी आहुति कर देना उचित नहीं था। यही हर्ष सोच रहे थे। अपने मंत्रियों से पूछा। सभी बहुत दुखी थे। इस पराजय से अपने स्वामी की अपेक्षा उन्हें अधिक दुःख था। उन सबने अब शान्तिपूर्वक लौट चलने की सम्राट् की इच्छा का समर्थन किया।

बस, सबका एकमत जानकर सम्राट् ने गुर्जर प्रान्त की सीमा त्याग दी और अपनी सेनाओं का मुख कन्नौज की ओर मोड़ दिया। यद्यपि इस महायुद्ध में पुल-केशी की अपूर्व सफलता हुई और वह पूर्ण विजयी रहा किन्तु हर्ष के साम्राज्य पर अपना आधिपत्य कर पाना उसकी सामर्थ्य में न था। केवल वह अपने राज्य की रक्षा कर पाने में समर्थ रहा और दैवसंयोगसे उसमें अद्भुत सफलता मिल गई, यही उसकी कीर्ति के लिए बहुत था। इतना ही हुआ कि इस विजय के बाद उसकी शक्ति की तुलना सम्राट् हर्ष की अतुल सैन्य शक्ति से की जाने लगी। वह भी अपने को एक महान् बलशाली सम्राट् समझने लगा। वैसे उसका राज्य हर्ष-साम्राज्य से कहीं बहुत छोटा था।

——;o:——

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

: २७ :

पूर्वाभियान

पश्चिम विजय के वाद वर्षों तक सम्राट् ने शान्तिपूर्वक शासन किया। इस वीच कोई विशेष घटना नहीं घटी। सम्राट् ने इस ग्रवधि में ग्रपना शासन-सुप्रवन्ध इतना सुदृढ़ कर लिया था कि कोई भी शत्रु उनकी ग्रोर ग्राँख उठाकर देखने में समर्थ न रहा। प्रजा के सम्पूर्ण कष्ट दूर कर उन्होंने शान्ति-साम्राज्य की स्थापना की। चोर, डाकू, बदमाश प्रायः लुप्त हो चुके थे। सभी प्रकार के ग्रपराध वहुत कम हो गये। हर्ष के शासन की यह महान सफलता थी। हर्ष ने विदेशों से भी सम्वन्ध स्थापित किया। चीन देश से तो उनकी गहरी मित्रता थी। कई वार उन्होंने ग्रौर चीन ने ग्रपने-ग्रपने प्रतिनिधि भेजकर मैत्री-सम्वन्ध वढ़ाने की चेष्टा की। इस प्रकार हर्ष का साम्राज्य वहुत प्रवल ग्रौर सुव्यवस्थित हो गया।

हर्ष का ध्यान ग्रव पूर्वी राज्यों की ग्रोर गया। उधर की राजनीति में इस समय तूफान ग्रा रहा था। वहुत से छोटे-छोटे राज्य-परस्पर लड़-मर रहे थे। इस परिस्थिति से लाभ न उठाने की भूल न करने का हर्ष ने दृढ़ निश्चय किया ग्रौर ग्रपने पूर्वाभियान की तैयारी का ग्रादेश दिया। सिंहनाद के वाद प्रधान सेनापति-पद पर कुमारगुप्त नियुक्त किये गये थे। उनका ग्रादेश पाते ही वहुत दिनों से विश्राम करते ऊवी हुई सेनाएँ कमर कस कर तैयार हो गईं। देखते-देखते विशाल वाहिनी का ग्रपार समुद्र पूर्व की ग्रोर उमड़ता नजर ग्राने लगा। शुभ मुहूर्त्त में सम्राट् ने पूर्व की ग्रोर प्रयाण किया।

मगध तक के राज्य हर्ष के साम्राज्यान्तर्गत थे ही। वहाँ तक उनकी विशाल वाहिनी वे-रोक-टोक वढ़ गई। हर्ष जिस ग्रधीन राज्य में पहुँचते, वहाँ के नरेश ग्रपने सम्राट का शानदार स्वागत करते। सम्राट की प्रसन्नता के लिए वे सेवकों की तरह उनके पीछे-पीछे सेवा में घूमते। सम्राट जवतक मगध में रहे, ग्रासपास के सभी राजा लोग सम्मान से उनके साथ-साथ रहे।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

मगध पार कर सम्राट् की प्रथम कुदृष्टि हिरण्यपर्वत पर गई। उन्होंने दूत द्वारा वहाँ के राजा को चेतावनी का पत्र भेजा। वह राजा डर गया और बुद्धिमानी पूर्वक उसने अपना राज्य सर्वनाश होने से बचा लिया। उसने सम्राट् की अधीनता स्वीकार कर ली और बहुत से उपहार लेकर सम्राट् के शिविर में आ पहुँचा। पहला मोर्चा बिना प्रयास ही जीत लिया गया। सैनिकों का मजा फीका हो गया। उन लोगों के हाथ फड़क रहे थे युद्ध करने को। उनकी तलवारें रक्त-पिपासा से तड़प रही थीं, यहाँ उनकी मनोरथ-पूर्ति न हो सकी।

सेनाएँ आगे बढ़ीं। आगे चम्पा राज्य[१] था। यहाँ का राजा भी कोई प्रबल न था। इसी के आगे कजंगल राज्य[२] था। सम्राट् ने सेनाओं को इन दोनों राज्यों पर आक्रमण करने का आदेश देकर स्वयं मणितारा के समीप अजिरावती नदी के रमणीक तट पर शिविर बना कर कुछ दिन तक निवास करने का निश्चय किया। यहाँ की रमणीयता पर सम्राट् मुग्ध हो गये। उन्होंने भांडी और सेनापति कुमारगुप्त को उक्त दोनों राज्यों पर आक्रमण करने की आज्ञा दी। वे दोनों अपनी विशाल वाहिनी के दो भाग कर दो ओर चल दिये।

नदीतट पर सम्राट् के लिए विशाल तृणनिर्मित भवन बनाया गया। नदी तट पर बने शेष बची सेना के शिविरों की शुभ्र पंक्तियाँ ऐसी लगतीं मानो एक और नदी साथ-साथ बहती हो। नदी किनारे सुन्दरवन की लम्बी रेखा थी जो नदी की मधुर गति का स्पर्श करती काफी दूर तक फैली हुई थी। उन वन-श्रेणियों में भ्रमण करते सम्राट् का चित्त दोलायमान हो-हो जाता। इस यात्रा में सम्राट् की रानियाँ भी साथ में थी। कभी-कभी सम्राट् उनके साथ एकान्त भ्रमण भी करते। उस समय दोनों ओर की मनोहरताएँ उनका चित्त पूरी तरह दोलायमान कर देतीं। एक ओर कल-कल करती एकान्त नदी और रमणीक वन की मनोहरता, दूसरी और स्त्री-यौवन-प्रभात की उदीयमान तरुण रश्मियों की मनोहरताएँ सम्राट् की सुधबुध-हरण के लिए पर्याप्त थीं।

---

१. आधुनिक भागलपुर। २. आधुनिक राजमहल।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

इन्हीं मनोहरताओं में एक और मनोहरता ने प्रवेश किया। प्राचीन साम्राज्य के अधिनायक न केवल साम्राज्य-पालक ही होते थे वरन् राजनीति के अतिरिक्त उनका व्यक्तिगत जीवन भी अत्यन्त मधुर और भावुक होता था। प्रत्येक राजा-महाराजा के दरवार में कवियों और साहित्यिकों का जमघट लगा रहता। सम्राट् हर्ष का जीवन इस ओर से विल्कुल सूना था। उनके दरवार में कोई कवि या साहित्यिक अभी तक प्रवेश न कर पाया था।

रात्रि का समय था। सम्राट् अपने विजित राजाओं एवं सामन्तों के जमघट में दरवार लगाये बैठे थे। दरवार में शुष्क राजनीतिक वार्ताएँ चल रही थीं। राजनीति के क्लिष्ट विषय ही उस वार्ता के मुख्य विषय थे। इतने में ही एक सरस मधुर व्यक्ति ने आकर उस दरवार की सम्पूर्ण नीरसता को सरस और मनोहर वना दिया। सभी आनन्द से झूम उठे।

एक प्रहरी ने आकर निवेदन किया कि एक ब्राह्मण, जो अपने को कवि वतलाता है, श्रीमान के दर्शन करना चाहता है।

कवि का नाम सुनते ही सम्राट् हँस पड़े। कभी आतुरता और सरसता से उनका काम न पड़ा था, वे कवित्व का महत्व क्या जानते ? हँसकर वोले, 'क्या कहता है कवि ? कोषागार से ब्राह्मण को कुछ धन देकर विदा करो। यहाँ उसकी क्या आवश्यकता ?'

सभी अधीन राजाओं ने भी उपेक्षा दिखाई। अपने स्वामी की हाँ में हाँ मिलाना ही उनका एकमात्र कर्त्तव्य था। सम्राट् दिन को रात कहें तो रात, रात को दिन बतायें तो वह ठीक! सम्राट् की प्रसन्नता सम्पादन करना ही उनका लक्ष्य होता। सम्राट् भी उन खुशामदी राजाओं से वड़े प्रसन्न रहते।

आज्ञा पाकर द्वार-प्रहरी जाने लगा। इतने में ही पर्दे के भीतर बैठी रानियों ने संकेत किया। स्त्रियों में माधुर्य और सौन्दर्य-प्रेम होना स्वाभाविक है। उन्होंने आग्रह किया कि कवि को आने दीजिये। दो घड़ी आनन्द में वीतेंगी। पत्नियों का आग्रह भला कैसे टलता ? आज्ञा मिल गई। जाते हुए द्वार-प्रहरी को पुकार कर सम्राट् ने उस कवि को अन्दर भेज देने का आदेश दिया।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

दूसरे ही क्षण प्रहरी के साथ दो युवा व्यक्ति भीतर श्राये । उन्होंने सम्राट् को श्राशीर्वाद दिया । सम्राट् ने उन्हें बैठने का संकेत किया। बैठते ही उनमें से एक ने, जो कवि था, एक श्लोकमय पद्य सस्वर सुनाया । इसमें सम्राट् का बड़े ही ललित शब्दों में गुणगान किया गया था । सम्राट् संस्कृत भाषा के भक्त थे । श्लोक सुनकर सम्राट् तो मौन रहे किन्तु एक राजाके मुखसे 'वाह !' निकल गया। वह समझता था कि सम्राट् श्रपनी प्रशंसा सुनकर गद्गद हो उठे होंगे । इसीलिए वेचारे ने सम्राट् की प्रसन्नता में एक पुट श्रौर देने के श्रभिप्राय से वाह कह दिया ।

इस पर सम्राट् बोले, 'क्या 'वाह' कर दिया ? कवियों भाटों का तो काम ही है किसी राजा, किसी सम्राट् की प्रशंसा करते फिरना श्रौर पुरस्कार का श्रधिकारी बनते फिरना ।'

इसपर एक वृद्ध साहसी राजा बोला, 'श्रीमन्त ! 'वाह' कवि की कला पर की गई है । उसके व्यापार पर नहीं ।'

'हाँ पद्य सुन्दर था । इसको पुरस्कार दिया जायगा ।' सम्राट् ने रुखाई से कहा ।

स्वामी के इस उपेक्षा व्यवहार से यद्यपि कोई भी कवि, चारण या भाट हतोत्साह होकर भयभीत हुए बिना नहीं रह सकता; किन्तु उस कवि ने साहस न छोड़ा । निवेदन किया, 'श्राज्ञा हो तो दो एक पद्य श्रौर सुनाऊँ ?'

'सुनाश्रो ! सुना दो ! श्राज हमारा मस्तिष्क बहुत थका हुश्रा है । यदि श्रपने कवित्वसे उसकी थकावट दूर कर दो तो हम समझें कि इन्होंने जो 'वाह' की वह सार्थक रही ।'

कवि ने स्वीकारसूचक मस्तक झुकाकर कविता श्रारम्भ की । सम्राट् पैर पसार जरा श्राराम से बैठ गये । कवि ने हिमालय पर्वत की वसन्तकालिक कृति का सौन्दर्य वर्णन करना श्रारम्भ किया । वर्णन इतना सजीव था कि सभी मन्त्रमुग्ध हो सुध-बुध खो बैठे । सम्राट् स्वयं श्रपने भाई राज्यवर्द्धन के साथ हिम पर्वत पर हो श्राये थे श्रौर वहाँ के प्राकृतिक सौन्दर्य का उन्होंने स्वयं दर्शन किया था । उसका इतना सुन्दर वर्णन सुनकर उनका हृदय भी गद्गद हो उठा ।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

वे बोले,'यह कविता ठिकानेकी रही ! कवि ने अपना पुरस्कार बढ़ा लिया ।'

'सब परमेश्वर कान्यकुब्जाधीश का अनुग्रह है श्रीमन्त ! मैं पुरस्कार पाने की अभिलाषा से यहाँ तक नहीं आया था महासम्राट् !'

'तो ?' सम्राट् को आश्चर्य हुआ ।

'मैं यही चाहता था कि जब-जब महासम्राट् अपने दैनिक कार्यों के कठिन परिश्रम से शान्त होकर दो घड़ी विश्राम करने बैठें, उस समय अपनी टूटी-फूटी वाणी के दो चार पद्य सुनाकर उनकी थकान मिटाने का प्रयत्न करूँ । यही सेवा मुझ अकिंचन को मिल जाय तो मैं कृतार्थ हो जाऊँ श्रीमन्त !'

'तो तुम हमारे साथ रहना चाहते हो ?'

'श्रीमान् !' कवि ने प्रार्थना की ।

'किन्तु हम युद्धप्रिय व्यक्ति हैं । तुम लोगों की कविता में फँसकर अपना राजनीतिक जीवन नष्ट करना नहीं चाहते । तुम जितना पुरस्कार चाहो लेकर जा सकते हो ।'

'मुझे श्रीचरणों का आश्रय ही अपेक्षित है ।' कवि ने हठ किया ।

हर्ष सोचने लगे । इतने में पर्दे में से आवाज आई—'रख लीजिये न ! समय-कुसमय दो घड़ी बिताने का अच्छा साधन है ।' रानी की इच्छा का विरोध कैसे होता । बोले, 'जाओ, तुम पर राजमहिषी की बड़ी कृपा है । उन्हीं की इच्छा से तुम यहाँ तक आये और अब उन्हीं की आज्ञा से दरबार में नियुक्त किये जाते हो । किन्तु तुम्हारा नाम तो हमने पूछा ही नहीं ।'

'बाणभट्ट, श्रीमन्त !'

'और यह तुम्हारे साथ कौन है ?'

'यह मेखलक है श्रीमान् ! यही मुझे यहाँ तक खींच लाया । इसका मैं उपकृत हूँ । यह वापिस लौट जायगा ।'

'ठीक है, जाओ !' सम्राट् ने एक सेवक को उन दोनों के ठहरने के प्रबन्ध के लिए भेज दिया ।

कवि के जाने पर फिर दरबार सूना हो गया । रात भी अधिक हो चली थी । सम्राट् ने सबको जाने की आज्ञा दी और स्वयं पर्दे के अन्दर चले गये ।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

दूसरे दिन युद्धक्षेत्र से सूचना मिली कि दोनों राज्यों की राजधानियों पर कान्यकुब्ज की पताका फहरा दी गई। वहाँ के राजाओं ने सविधि अधीनता स्वीकार कर ली। सम्राट् ने प्रस्थान का निश्चय किया। आज्ञा पाकर शिविर बाँधे जाने लगे और सेनाओं को तैयार किया जाने लगा। सम्राट् के साथ थोड़ी सी सेना बची थी। उसे तैयार करते कितनी देर लगती। तत्काल प्रस्थान हो गया।

शीघ्र सम्राट् अपनी विशाल वाहिनी से जा मिले। वाहिनी पड़ाव कंजलक में पड़ा था। सम्राट् के वहाँ पहुँचने पर कंजलक के शासक ने सम्राट् का शानदार स्वागत किया। बड़े-बड़े उपहार लेकर वह स्वयं सम्राट् के पास आया। उसने सम्राट् को सबसे बड़ा उपहार एक और भी दिया। वह यह कि उसने सम्राट् को बताया कि कर्णसुवर्ण का शासक (उनका पुराना शत्रु) शशांक रोगग्रस्त होकर मर गया। उसका पुत्र सिंहासन पर है। यही समय है जब अपना बदला लिया जा सकता है। कंजकल नरेश की बात सुनकर सम्राट् बहुत प्रसन्न हुए। शशांक की मृत्यु पर उन्हें जितनी प्रसन्नता हुई उतना दुःख भी, कि उस दुष्ट से बदला लेने का अवसर न मिल सका और वह पहले ही कालकवलित हो गया। सम्राट् ने तत्काल अपनी वाहिनी का रुख कर्णसुवर्ण की ओर मोड़ा। शशांक के अधीन सम्पूर्ण बंगाल प्रदेश था। उसे अपने हस्तगत करने का सुवर्ण अवसर पाकर सम्राट् तो फूले नहीं समाते थे। कर्णसुवर्ण पर विजय का अर्थ था, बंगाल प्रदेश के पुंड्रवर्द्धन, समतट, ताम्रलिप्ति प्रदेशों पर बिना प्रयास अधिकार! क्योंकि ये सब देश शशांक की अधीनता स्वीकार करते थे।

शशांक का पुत्र भी कम दुष्ट न था। सम्राट् हर्षकी विशाल वाहिनी के सामने डटने की उसने न जाने कैसे हिम्मत कर ली? सम्पूर्ण कर्णसुवर्ण को उसने अपनी सेनाओं के दुर्ग से परिवेष्टित कर लिया। राज्य की सीमा पर उसकी सेनायें जा डटीं। इधर से सम्राट् की विशाल वाहिनी आँधी-सी उमड़ती आ पहुँची और हुई दोनों में मुठभेड़। आँधी के बाद मानो तूफान आया। इधर से अपने भ्रातृ-हन्ता की सेना से बदला लेने के लिए स्वयं सम्राट् हर्ष, उधर उस हत्यारेका पुत्र! दोनों की सेनाएँ एक दूसरे की प्राणघातक बन रही थीं। हर्ष सम्पूर्ण युद्ध क्षेत्र

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

में उस दुष्ट के पुत्र को खोज रहे थे किन्तु वह कहीं दिखाई नहीं दिया। अन्त में हाथियों की सेना में वह दिखाई दिया। उसके हाथी पर कर्णसुवर्ण का विशाल झंडा लहरा रहा था। पहचानते देर न लगी। हर्ष घोड़े पर थे। तत्काल अपना हाथी मंगाकर उस पर जा चढ़े और प्रतिद्वन्द्वी के सामने आ डटे। दोनों ओर से वाण युद्ध आरम्भ हो गया। हर्ष को वहुत दिनों के वाद धनुष उठाने की आवश्यकता पड़ी थी। थोड़ी देर में ही हर्ष जान गये कि शत्रु कितने पानी में है। उन्होंने समझ लिया कि एक ही झटके में उसे नीचे गिराया जा सकता है।

उन्होंने महावत को संकेत किया। अंकुश दबाते ही हाथी कुछ आगे वढ़ा। हर्ष ने झटपट तलवार संभाली और अपने हाथी की सूँड पर वैठ गये। उसने जहाँ अपनी सूँड़ कुछ ऊपर की कि हर्ष कूदकर शत्रु के हाथी पर जा चढ़े और जाते ही धर दवोचा। इधर उनके अंगरक्षकों ने शत्रु के महावत को वाण मारकर समाप्त कर दिया ताकि वह हाथी को कहीं भगा न ले जा सके। महावत के मरते ही हर्ष का एक महावत उस पर चढ़ गया और अपनी इच्छानुकूल हाँकने लगा।

ऊपर हर्ष अपने शत्रु को पटक रहे थे। उसने भी अपनी तलवार निकाली किन्तु हर्ष उसे ऐसे दबोच रहे थे कि उसकी तलवार छटक कर नीचे जा गिरी। इसी समय हर्ष ने उसके पेट में तलवार भोंक दी। वह 'आह' कर वहीं ढेर हो गया। हर्ष ने अब तुरत चाल चली। एक सफेद झंडा मंगाकर उसके हाथी पर लगा दिया और कर्णसुवर्ण की पताका उतार ली। तत्काल कर्णसुवर्ण की सेना ने युद्ध बन्द कर दिया। इस प्रकार हर्ष ने अपने शत्रु को थोड़ी देर में ही वश में कर लिया।

हर्ष ने बड़ी धूमधाम से कर्णसुवर्ण की राजधानी में प्रवेश किया। वहाँ की जनता शशांक के अत्याचारों से त्रस्त थी। उसे अपने राज्यापहरण का दुःख न था। हर्ष की विजय पर जनता ने हर्ष मनाया। उसने सम्राट् का सस्नेह स्वागत किया और विजय के लिए धन्यवाद भी दिया। प्रजा के प्रतिनिधियों ने सम्राट् से कहा—'इस दुष्ट का अन्त कर आपने कर्णसुवर्ण की प्रजा को जो त्राण दिया है उसके लिए हम लोग आजीवन सम्राट् के ऋणी रहेंगे।'

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

सम्राट् की आज्ञा से कर्णसुवर्ण के समस्त बड़े-बड़े राज्याधिकारी बन्दी बना लिये गये। हर्ष जानते थे कि दुष्ट राजा के अधिकारी भी अपनी दुष्टता में परिपक्व होंगे। अतः उन्हें बाँधकर रखना ही उचित है। सब ओर से सुरक्षा की व्यवस्था कर सम्राट् ने शशांक के अधीनस्थ राज्य—पुंड्रवर्द्धन, समतट और ताम्रलिप्ति के राजाओं के पास अपने दूतों द्वारा सन्देशा भिजवाया जिसमें अपनी अधीनता स्वीकार कर निर्धारित कर देने की शर्तों पर हस्ताक्षर करने की आज्ञा दी गई थी।

कर्णसुवर्ण के इतने शीघ्र विजत होते ही अन्य समीपस्थ राजाओं का भी साहस छूट गया। उन्हें हर्ष की सैन्यशक्ति का पूरा अनुमान हो गया। उन्होंने उसका सामना कर काल के गाल में जाने जैसी भूल न करने का ही निर्णय किया और बिना कुछ प्रतिरोध किये अधीनता स्वीकार कर ली। दूत द्वारा दिये गये अधीनता-स्वीकारक पत्र पर उन्होंने तत्क्षण हस्ताक्षर कर दिये और उपहारों सहित उन्हें वापिस लौटाया।

अब बंगाल का सम्पूर्ण भूभाग हर्ष के साम्राज्य में समाविष्ट हो चुका था। पश्चिम में सिन्ध से लेकर पूर्वीय बंगाल की सीमा तक सम्पूर्ण उत्तरी भारत हर्ष के सामने नतमस्तक हो रहा था। हर्ष गर्व से फूले न समाते। केवल कामरूप और बंगाल के बीच एक छोटा सा प्रदेश सुवर्णगोत्र बच रहा था जिसे वश में करने के लिए सम्राट् को अपनी दृष्टि उधर घुमाने की आवश्यकता थी। यह स्त्री-राज्य था। इस पर स्त्रियाँ ही शासन करती थीं। रानी का पति ही राजा कहलाता था।

सम्राट् ने दूत भेजकर अधीनता स्वीकार करने की चेतावनी दी। किन्तु वे थीं तो अबलाएँ पर साहस उनका प्रबल था। उन्होंने युद्ध के लिए ललकारा। दूत लौट आया। सम्राट् से निवेदन किया कि वे अबलाएँ आपकी अधीनता स्वीकार करने को तैयार नहीं।

सम्राट् उस समय अन्तःपुर में थे। पर्दे के पीछे रानियाँ बैठी थीं। उन्हें बरबस हँसी छूट पड़ी। दूत के चले जाने पर बड़ी रानीशची बोली, 'अबलाएँ सदैव पुरुषों से प्रबल होती हैं और उन्हें पछाड़ कर ही छोड़ती हैं।'

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

'किन्तु इस बार हम उन्हें पछाड़कर छोड़ेंगे।' हर्ष ने मुस्कुराते हुए कुछ गम्भीरता पूर्वक सेवक से कहा। 'सेनापति को हमारा आदेश दो कि सेनाओं का प्रस्थान सुवर्णगोत्र की ओर करें।'

'जो आज्ञा!' सेवक चला गया।

छोटी रानी लक्ष्मी बोली, 'देखना है इस बार पुरुषों की शक्ति और साहस को।'

'उनके नयन वाण ही पर्याप्त हैं।' शची ने कटाक्ष किया।

'यह हम मान सकते हैं किन्तु युद्ध में स्त्रियाँ चाहें पुरुषों को परास्त करना तो असम्भव है।'

सम्राट् उठकर चल दिये। शिविर के बाहर ही सेनापति मिले। बोले, 'सेना प्रस्थान कर रही है!'

सम्राट् ने कहा, 'सेनापति! वह स्त्रियों का राज्य है। वहाँ दूसरी नीति व्यवहार में लानी होगी।'

'श्रीमन्त निश्चिन्त रहें। उसकी चिन्ता नहीं।' कुमारगुप्त ने मुस्कुरा कर उत्तर दिया।

—:o:—

: २८ :

स्त्री-राज्य पर विजय

कहना सरल है, उसे कार्यान्वित कर पाना कठिन होता है। स्त्री-राज्य साधारण-सा प्रदेश था। विशेष बलशाली नहीं। अबलाओं में बल कहाँ? किन्तु उनके साहस ने वास्तव में पुरुषों को बहुत नीचा दिखाया। स्त्रीराज्य की सेना में यद्यपि पुरुष सैनिक भी थे किन्तु मुख्य-मुख्य अधिकारी स्त्रियाँ ही थीं। स्त्री-सैनिकों का एक बहुत बड़ा दल भी युद्धक्षेत्र में उतरा था। स्वयं हर्ष युद्धक्षेत्र में नहीं गये। सोचा, स्त्रियों से क्या लड़ेंगे!

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

युद्ध छिड़ गया। पर्वतीय लोग धनुष-बाण चलाने में अत्यधिक निपुण होते हैं। उन अबलाओं के बाणों ने हर्ष के सैनिकों को बुरी तरह घायल करना आरम्भ किया। सेनापति कुमारगुप्त एक नीतिज्ञ निपुण योद्धा थे। पहिले ही से धनु-विद्या में कुशल सैनिकों को उन्होंने अग्रसर कर रखा था। दोनों ओर से बाणों की बौछार होने लगी। कुमारगुप्त स्वयं अकेले अनेक शत्रु योद्धाओं के बाणों का उत्तर दे रहे थे। किन्तु प्रतिद्वन्द्वी के बाण कुछ तीखे थे। एक तो स्त्रियों से युद्ध करने में हर्ष के सैनिक कुछ लज्जा का अनुभव कर रहे थे। उस लज्जा ने इन्हें शिथिल बना दिया था। तिस पर स्त्रीराज्य की सुन्दरियों का रूप उन पर शस्त्र चलाने से उनके हाथ रोक-रोक देता।

स्त्रीराज्य की अत्यल्प सेना ने हर्ष की वाहिनी के छक्के छुड़ा दिये। सायं वेला होने को हुई। हर्ष ने युद्धक्षेत्र का समाचार पुछवाया। सुनकर अचम्भे में रह गये। क्रोध भी उबल पड़ा—'ऐं! इन अबलाओं की यह मजाल!'

बड़ी रानी शची ने कहा, 'मैंने कहा जो था! आप जाइये तो सम्भवतः सफलता मिल सके।' उसने व्यंग्य किया।

हर्ष क्रोधित हो उठे। 'ठीक है! मुझे ही जाना होगा। बिना विजय प्राप्त किये आज हम रणक्षेत्र से न लौटेंगे।'

हर्ष शस्त्र धारण कर चल दिये। विशाल हाथी पर आरूढ़ हो धनुष बाण हाथ में लिये, वज्रपाणि इन्द्र की तरह उनकी शोभा अद्वितीय थी।

'कहाँ है वह हठीली रानी!' हर्ष ने सेनापति से पूछा।

'सामने ही तो श्रीमन्त!' कुमारगुप्त ने नम्र निवेदन किया।

हर्ष का अद्वितीय सुन्दरतम स्वरूप, सुकोमल अंग, विशाल वक्षःस्थल, मस्तक पर अद्भुत तेजोपुंज, इन्द्र की साक्षात मूर्ति! कौन अभागा है जो एक ही झलक पाकर मुग्ध न हो उठे। इस प्रौढ़ावस्था में भी सम्राट् अपने सुन्दर स्वास्थ्य और स्वरूप में अद्वितीय थे।

आँखें चार हुईं। हर्ष ने क्रोध भरी दृष्टि से उस प्रबल नारी को देखा! वह भी रूप यौवन की साक्षात देवी थी। अंग-अंग से फूट पड़ने वाला नवयौवन, मधुर मस्ती का प्याला पिये आलस भरी मतवाली बड़ी-बड़ी आँखें, दूध से धोये माँजे

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

चांदी के चमकते थाल-सा गोल-गोल गोरा मुख। उसने इनको देखा और इन्होंने उसको देखा। बस युद्ध का निर्णय हो गया। हर्ष की क्रोधभरी दृष्टि पर उस सुन्दरी युवती ने एक ऐसी मधुर मुस्कान भरी कि हर्ष सब कुछ भूल गये, किन्तु दो ही क्षण बाद देखा गया कि हर्ष नहीं वरन् युवती ही उनके रूप-यौवन पर अपने को हार बैठी थी। विना हर्ष के दो हाथ किये ही उसने सफेद झंडा ऊँचा कर दिया।

युद्ध बन्द कर दिया गया। उस दिन हर्ष स्त्रीराज्य के अतिथि बने। स्त्री-राज्य का वैभव देखकर उनके आश्चर्य एवं हर्ष का ठिकाना न रहा। प्राकृतिक सौन्दर्य की तो कमी थी ही नहीं। लौकिक साधनों से परिपूर्ण उसका राजभवन हर्ष के लिए कौतूहल बन गया।

स्त्रीराज्य की स्वामिनी का नाम था प्रियंवदा। अतीव सुन्दर! बड़े-बड़े तपस्वियों का चित्त दोलायमान कर देने वाली कामरूप की उस युवती की आयु अभी २०—२१ वर्ष ही तो थी। हर्ष के चित्त पर भी कुछ आकर्षण की छाप पड़ी। उनका हृदय उसकी ओर बरबस खिचा जा रहा था।

विजय के उपलक्ष्य में प्रियंवदा ने प्रीतिभोज आयोजित किया। हर्ष अपने मंत्रियों, सेनापतियों एवं अधिकारियों के साथ वहाँ गये। स्त्रियों ने बड़े सम्मान और मधुर स्नेह के साथ मिष्टान्न-पक्वान्न प्रस्तुत किये। एक तो उस देश के मिष्टान्नों की मधुरता कुछ अद्भुत ही होती, उस पर सुन्दरियों ने अपने हाथों से प्रस्तुत कर उनमें दुगुनी मधुरता भर दी। इस प्रीतिभोज ने अधिकारियों के इतने दिनों का युद्ध श्रम न जाने कहाँ विलुप्त कर दिया।

प्रीतिभोज के बाद प्रियंवदा ने अपनी मुख्य सहचरियों के साथ हर्ष और उनके मंत्रियों को अपने राजभवन का निरीक्षण कराया। उसने जब बताया कि यहाँ पुरुष स्त्रियों के वश में रहते हैं और उन्हें केवल स्त्रियों के उपभोग की वस्तु समझा जाता है, तो सभी लोग हँसते-हँसते लोट-पोट हो गये।

हर्ष ने पूछा—'राजा का क्या अधिकार है?'

'राजा रानी का पति मात्र होता है। आनन्द का साधन! उसका शासन पर कोई अधिकार नहीं। आपके यहाँ की स्त्रियों को जितने अधिकार प्राप्त हैं वे

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

सभी अधिकार यहाँ के पुरुषों को दिये गये हैं। आप लोगों के राज्य में राजमहिषी घर की स्वामिनी कहलाती है वैसे यहाँ का राजा राजभवन का स्वामी कहलाता है। उसकी सीमा के बाहर उसे कोई अधिकार प्राप्त नहीं।'

हर्ष सुनकर हँस पड़े, 'वास्तव में अद्भुत देश है। जरा व्यंग्यपूर्वक पूछा, 'तो यहाँ की स्वामिनी के भी कोई राजा है या नहीं?'

प्रियंवदा लज्जित हो गई। बोली, 'अभी ऐसा अवसर नहीं आया।'

वास्तव में जब से प्रियंवदा ने हर्ष को देखा, उन पर मुग्ध हो गई। उसका चित्त दोलायमान हो रहा। कुछ अंश तक वह हर्ष को भी अपनी ओर आकर्षित करने में सफल हो सकी थी। इसीलिए वह अपनी अभिलाषा स्पष्ट करने का अवसर ढूंढ़ रही थी।

वहाँ की स्त्रियों में लज्जा का अभाव था। पुरुषों को वह नगण्य दृष्टि से देखती थीं। लज्जा करतीं भी तो किससे? वास्तव में स्त्री-राज्य सुखवैभव, विलास-भोग का केन्द्र था जहाँ स्त्रियाँ अपनी कामनाओं को जी भर शान्त करतीं। उन्हें किसी प्रकार की रुकावट न थी।

प्रियंवदा हर्ष से निःसंकोच व्यवहार कर रही थी। उसमें जैसे स्त्रीत्व का लेश न हो। वह दूसरे दिन हर्ष के पीछे-पीछे, साथ-साथ घूमती रही और उन्हें अपने राज्य के मुख्य-मुख्य दर्शनीय स्थान दिखाती फिरी। सायंकाल के बाद थकान होने पर हर्ष वापिस लौटे। उनके साथ अंगरक्षक भी थे।

प्रियंवदा ने धीरे से कहा, 'श्रीमन्त से एक प्रार्थना है।'

'कहो!' हर्ष ने कहा।

'इस समय का भोजन मेरे यहाँ होगा।' उसने हठपूर्वक नखरे से कहा।

'तुम्हारे यहाँ? किन्तु वे रानियाँ क्या कहेंगी?'

'मैं तो आपकी हूँ।' उसके मुख से निकल गया और उन शब्दों पर जब उसका ध्यान हुआ तो उसका सारा शरीर लज्जा से काँप उठा।

'मेरा अनुरोध टालिये मत।' उसने लाड़ से कहा।

'अच्छी बात है।' हर्ष ने अंगरक्षकों को राजभवन के बाहर ही रहने का आदेश दिया और उसके साथ अन्दर चले गये।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

अत्यन्त सजे हुए भवन में प्रियंवदा के साथ हर्ष ऊपर पहुँचे। प्रियंवदा ने अपने हाथ से उनके सामने भोजन परोसा। हर्ष ने कहा, 'तो हम अकेले ही भोजन करें?'

'अतिथि सत्कार के यही नियम हैं महाराज!' प्रियंवदा ने मुस्करा कर कहा।

हर्ष भोजन करने लगे। प्रियंवदा कुछ बात छेड़ने का विषय खोजने लगी।

'भोजन कैसा बना?' कुछ देर बाद उसने पूछा।

'बहुत दिव्य!' हर्ष खाते हुए बोले।

'मैंने अपने हाथ से बनाया है।' उसके गालों पर मुस्कान की मधुर लाली छा गई।

'अच्छा!' हर्ष ने आश्चर्य दिखाते हुए कहा। 'तो तुम एक अच्छी गृहिणी भी हो। युद्ध क्रिया के साथ-साथ स्त्रियोचित सभी कलाएँ तुम्हें आती हैं?' हर्ष ने पूछा।

'हाँ, क्यों नहीं? नाचना, गाना, बजाना, चित्रकला क्या नहीं आता मुझे? चित्रकला में तो सम्भवतः अच्छे-अच्छे चित्रकारों को परास्त कर दूँगी।' उसने गर्व से अपना मस्तक ऊँचा किया। हर्ष ने आँख ऊपर कर उसकी ओर देखा। उसकी आँखें कुछ कह रही थीं। हर्ष समझ न पाये।

'तो तुम मनुष्य नहीं, पर्वतीय देवी हो।' प्रसन्नता से हर्ष बोले।

'आपकी दासी हूँ।' इन शब्दों में बहुत बड़ा रहस्य छिपा था जिसे हर्ष ने यों ही उड़ा दिया। विजित राजा अपने को दास सेवक ही कहा करते हैं। हर्ष की बुद्धि उनका यही अर्थ लगा पाई। प्रियंवदा परेशान थी कि उसकी अनेक प्रेमभरी बातों के उत्तर में हर्ष कोई उत्सुकता या स्नेह नहीं दिखलाते।

सोचते-सोचते बोली, 'स्त्रीराज्य की हम जैसी नारियों का जीवन भी बिल्कुल सूना है। कहने को हमारा राज्य है। सुख, वैभव, विलासभोग की सामग्रियों की भरमार है, किन्तु स्त्री जो सुख, जो आनन्द पुरुषों के वास्तविक प्रेम में पा सकती है, वह इस अपने अधीन रहने वाले दास स्वरूप उपभोग की सामग्री

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

मात्र पति से कहाँ से मिल सकता है ? अच्छा न लगा तो उसके स्थान पर दूसरा आ सकता है।'

'अच्छा, यह भी है ?' हर्ष ने अत्यधिक उत्सुकता से हँसते हुए पूछा।

'सेवक तो अस्थायी होता ही है। उससे जीवन भर का सम्पर्क नहीं होता।' वह कुछ लज्जा से बोली।

हर्ष चुप रह गये।

वह बोली, 'मैं तो इस देश से ऊब उठी हूँ।'

'तब क्या करोगी ? और जाओगी कहाँ ?'

'यही सोच रही हूँ। आप मार्ग बताइये।'

हर्ष सोचने लगे। इतने में उसने स्वयं साहस बटोरा। वह जानती थी कि हर्ष अपनी ओर से प्रस्ताव नहीं कर सकते। जरा झिझक कर बोली, 'एक निवेदन करूँ, यदि श्रीमान् स्वीकार करने का वचन दें ?'

हर्ष ने आश्चर्य से उसकी ओर देखा, उसका मुख संकोच और लाज से सिकुड़ा जा रहा था। 'कहो, मेरे योग्य होगा तो अवश्य पूर्ण करूँगा।'

'मुझे अपने साथ लेते चलिये।' लाज से उसका मुँह लाल हो रहा था।

'तुम्हें साथ ले चलें ? वहाँ चल कर क्या करोगी। हमारे देश में पुरुषों का राज्य है। वहाँ स्त्रियों के लिए ऐसी स्वतंत्रता नहीं है।'

'मैंने तो निवेदन किया कि इस स्वतन्त्रता से मैं घबरा उठी हूँ।'

'किन्तु वहाँ अकेली क्या करोगी, मन कैसे लगेगा ?'

'आप जो हैं, फिर अकेली कैसी ?' उसने हर्ष को समझाने का प्रयास किया।

'हम ?' हर्ष ठहाका मार कर हँसे—'हम अपना राजकाज देखेंगे या तुम्हें संभालेंगे ? वहाँ भी तुम्हारा मन ऊब उठे तो फिर वहाँ से भी भागने के लिए उतावली हो उठोगी।'

'नहीं महाराज। आपकी राजमहिषियाँ भी तो रहती हैं।'

'उनकी बात अलग है।'

'तो मुझे भी उसी श्रेणी में रख लीजिये।' कहते हुए वह लाज से सिकुड़ गई।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

अब हर्ष की समझ में आया। बोले, 'एं! तुम्हारा अभिप्राय ?'

'बिल्कुल स्पष्ट है स्वामी!' उसने हर्ष के चरण पकड़ लिये।

'यह क्या कह रही हो, यह असम्भव है प्रियंवदा!'

'असम्भव को सम्भव बनाना आप के हाथ का खेल है। इतने बड़े साम्राज्य के नाथ होकर एक साधारण अबला की माँग पूरी नहीं कर सकते। मैं हृदय हार चुकी हूँ नाथ!' वह चरणों पर गिर पड़ी।

हर्ष बड़े असमंजस में पड़े। इस कामरूप देश में आकर उन्हें काम और रूप ने वशीभूत कर लिया। यों तो स्वयं हर्ष भी उसके रूप-माधुर्य पर मुग्ध हो चुके थे। उसकी मीठी-मीठी बातों ने सम्राट् को अपने वश में कर लिया था किन्तु वे न जाने क्या सोचने लगे।

'किन्तु अब हम वृद्ध हो चले, तुम तो युवती हो। यह सम्बन्ध बहुत अनुचित लगता है।'

'उचित अनुचित कुछ नहीं नाथ!' वह गिड़गिड़ा कर बोली, 'आपको मेरी प्रार्थना स्वीकार करनी ही होगी। भारतीय नारियाँ एक को हृदय देकर दूसरा पति वरण नहीं करतीं। महासम्राट् को एक नारी की धर्मरक्षा करनी होगी।'

सम्राट् बड़े संकट में पड़े। अन्त में विजय प्रियंवदा की हुई। सम्राट् ने स्वीकृति दे दी। बोले, 'ठीक है, तुम्हें अपने साथ ले चलेंगे, किन्तु इस राज्य का क्या होगा? विजित प्रदेश होने के नाते यहाँ की व्यवस्था पर ध्यान देना हमारा कर्त्तव्य है।'

'मेरी छोटी बहन राज्य की उत्तराधिकारिणी होगी। वह आपकी अधीनता में रह कर शासन भार संभालेगी।'

'अच्छी बात है। तो तुम सब व्यवस्था कर डालो। किन्तु जानती हो विवाह संस्कार की प्रथा हुए बिना तुम्हें साथ रखना कठिन होगा।'

'तो कल ही यह प्रथा पूर्ण हो सकती है।'

हर्ष चले गये। लौटकर उन्होंने मंत्रियों और अपनी रानियों को भी सब बातें सुनाईं। मंत्रिगण जहाँ प्रसन्न एवं आनन्दित हुए वहाँ रानियाँ कुछ उदास हो

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

गईं कि एक सौत घर में और आने पर पति का प्रेम बँट जायगा ! किन्तु सुनते ही शची हँसकर बोली, 'मैंने कहा था न कि आप स्त्रियों पर विजय पाकर नहीं लौट सकते । आखिर हार ही आये न अपने को उस छोकरी के आगे ?'

हर्ष हँसे, बोले, 'अब छोकरी मत कहो उसे । वह हमारी राजमहिषी है ।'

'पाणिग्रहण होने के बाद !' लक्ष्मी ने कहा ।

'वह भी कल ही सम्पन्न हो जायगा ।'

और दूसरे दिन रात्रि में सम्राट् हर्ष ने प्रियंवदा का पाणिग्रहण बड़ी धूमधाम और समारोह के साथ किया । किन्तु इस बार एक उलटी रीति हुई कि उस स्त्री-राज्य में सदैव स्त्री बारात लेकर पति के घर व्याहने जाती थी और सम्राट् ने अपनी प्रथा के अनुसार उसे उसके घर में जाकर वरण किया ।

प्रियंवदा बड़ी प्रसन्न थी । उसके आनन्द का क्या ठिकाना ? उसे तो मानो विश्व का सम्पूर्ण साम्राज्य ही मिल गया । सर्वेश्वर प्राणधन मिलने पर विश्व का साम्राज्य उसके सामने क्या था ? वह फूली नहीं समाती थी ।

हर्ष को शीघ्र वहाँ से लौटना था । उन्होंने तत्काल स्त्रीराज्य की व्यवस्था की और वे अपनी नवविवाहिता वधू को साथ लेकर सैन्य सहित वापिस लौटे । कर्णसुवर्ण पहुँचने में उन्हें विलम्ब नहीं लगा । वहाँ दो-चार दिन विश्राम कर वे उटू और कोगोंध देश की ओर बढ़े । यह दोनों देश बहुत विस्तृत भू भाग में फैले थे । इन पर विजय पा लेने से हर्ष की शक्ति को बहुत बड़ा बल मिलने की संभावना थी ।

उटू (उड़ीसा) प्रदेश समुद्र के किनारे-किनारे बसा था । चारों धाम में भगवान् जगन्नाथ जी का मंदिर यहीं था । उनका दर्शन करने की भी सम्राट् की उत्कट अभिलाषा थी । यहाँ का राजा बड़ा क्रोधी और अभिमानी था । वैसे वह शशांक की अधीनता स्वीकार कर चुका था किन्तु उसकी मृत्यु पर पुनः स्वतंत्र हो गया । इसके साथ सम्राट् की जमकर लड़ाई हुई । उसने सम्राट् द्वारा भेजे दूत को बुरी तरह फटकार कर अधीनता स्वीकार करने से स्पष्ट इन्कार कर दिया । सुनकर हर्ष तो आग-बबूला हो गये । --'हमारे आज्ञा पत्र का यह अपमान ! चुटकी में मसल देंगे ।'

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

वास्तव में उटू नरेश का अभिमान निरर्थक था। सम्राट् की विशाल वाहिनी के, सामने उसकी थोड़ी सी सेना कब तक टिक पाती ? युद्ध आरम्भ हुआ और सांयकाल होते-होते उसकी आधी सेना का सफ़ाया हो गया। उसके सैनिक बहुत भीरु भी थे। उन्हें अपने प्राणों का मोह था। इसलिए वे पूर्ण उत्साह से युद्ध नहीं कर रहे थे। शत्रु उनके इस अनुत्साह से लाभ उठा रहा था और धड़ाधड़ मारता, काटता, चीरता आगे बढ़ता चला जा रहा था।

उस दिन तो सायंकाल युद्ध बंद हो गया। दूसरे दिन हर्ष की सेना ने सर्वनाशक काल का ही रूप धारण कर लिया। हर्ष के सैनिकों के शस्त्रास्त्र इस प्रकार शत्रु का सैन्यसंहार कर रहे थे मानो चारा काटने की मशीन चल रही हो। मध्याह्न होते-होते रणक्षेत्र में शत्रु का एक भी सैनिक बच न रहा और स्वयं उटू नरेश भी संम्भवतः उसी युद्ध में मर-मुर गये। उसका खोजने पर कोई पता न चला। मैदान साफ था। विजयिनी वाहिनी ने धूमधाम के साथ विजित प्रदेश की राजधानी में प्रवेश किया। उस दिन धूमधाम से विजयोत्सव मनाया गया। यहाँ की जनता ने सम्राट् का उतने उत्साह से स्वागत नहीं किया जितना और देशों की जनता ने किया था। सम्भवतः वह सम्राट् की लोकप्रियता से परिचित न थी। वह न जानती थी कि सम्राट् के शासन में वह कितनी अधिक सुखी हो जायगी।

उटू पर हर्ष की विजय होते ही कोंगोध का राजा बहुत भयभीत हुआ। उसने इस महाकाल से लड़कर अपना सर्वनाश न करने का निश्चय किया और अपने आप अपना दूत बहुमूल्य उपहारों सहित सम्राट् के पास भेज दिया। सम्राट् के दूत की उसने प्रतीक्षा तक न की और बुद्धिमत्ता कर उनके कोपभाजन होने से अपने को बचा लिया। सम्राट् उसकी बुद्धिमानी पर बहुत प्रसन्न हुए और उसी को उटू का भी अधीनस्थ प्रशासक घोषित कर दिया। वह सम्राट् की इस कृपा पर बड़ा ही मुग्ध हुआ और उसने सम्राट् के सामने उनके चरणों की सौगन्ध खाकर प्रतिज्ञा की कि वह कृतज्ञतापूर्वक उनकी अधीनता में रह कर सदैव उटू और कोंगोध का शासन करता रहेगा।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

इस प्रकार उटू और कोंगोध की विजयों ने हर्ष को सम्पूर्ण उत्तरी भारत का सम्राट् होने का अधिकार प्रदान कर दिया। पूर्वी समुद्र से पश्चिमी समुद्र पर्यन्त विशाल साम्राज्य पर उसकी अखंड सत्ता स्थापित हो चुकी थी।

वास्तव में इतने बड़े साम्राज्य का आधिपत्य प्राप्त करने में प्रमुख कारण सम्राट् की विशाल वाहिनी ही थी। सम्राट् की यह नीति रही कि जिस राज्य पर विजय करते, संधिपत्रों की शर्तों द्वारा उससे अश्व, हाथी, शस्त्र एवं सैनिक अवश्य माँगते। जिस राजा में जितनी सामर्थ्य होती उसी के अनुसार सैन्यसामग्री वसूल लेना सम्राट् की मुख्य नीति थी। इसी से उनकी सैन्य शक्ति बढ़ती गई और जब वे उटू और कोंगोध विजय कर लौटने लगे, उनकी सैन्यशक्ति बढ़कर दसगुनी हो गई। उनकी वाहिनी में ६० हजार गजारोही, १ लाख अश्वारोही और १।। लाख पदाति सैनिक हो चुके थे। उनकी विशाल वाहिनी विश्व में अजेय बन गई। कोई शक्ति उससे टक्कर लेने का साहस न कर सकती थी।

विजयोपरान्त दिग्विजय सम्राट् अपना संकल्प पूरा कर धीरे-धीरे अपनी विशाल चतुरंगिणी के साथ उत्तर की ओर लौटे। वापिस लौटने में कोई शीघ्रता नहीं थी। एक-एक नगर में दो-दो चार-चार दिन ठहरते, वहाँ की सुन्दर-सुन्दर भव्य दृश्यावलियाँ देखते और तत्तत् विजित राजाओं की शासन व्यवस्था का पुन-र्निरीक्षण करते हुए सम्राट् शनैः शनैः कान्य-कुब्ज की ओर बढ़ रहे थे। उटू पर आक्रमण करने के लिए कर्णसुवर्ण से चलकर जहाँ वे तीन-चार दिन में ही सैन्यसहित उसकी राज्य सीमा तक जा पहुँचे थे। वहाँ अब कर्णसुवर्ण लौटते समय उन्हें पूरा एक मास लग गया।

कर्णसुवर्ण पहुँचकर सम्राट् की वहीं दो-चार सप्ताह निवास करने की इच्छा हुई। उन्होंने सेनापति को सैनिकों के पक्के शिविर बनाने का आदेश दिया और यह भी आज्ञा दी कि सैनिकों को स्वेच्छित भ्रमण के लिए दो सप्ताह का अवकाश दिया जाय। छुट्टी पाकर सैनिक भी स्वतन्त्र हो विचरण करने लगे। कुछ सैनिक दलबद्ध हो पर्वतीय क्षेत्रों की ओर भ्रमण करने निकल गये। कुछ समुद्रीय आनन्द लेने समुद्र के किनारों की ओर चल दिये। बहुत से ग्रामों की सैर करने के लिए निकल पड़े। इस प्रकार जहाँ सम्राट् ने एक मास तक कर्णसुवर्ण में पूर्ण विश्राम किया

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

वहीं निरन्तर युद्ध करते-करते थके-मांदे सैनिकों ने भी यत्र-तत्र भ्रमण कर अपने शरीर स्वस्थ बना लिये ।

—:o:—

: २९ :

चीनी यात्री ह्वेनसांग

उस काल में भारत का विदेशों से काफी सम्बन्ध था । व्यापार के अतिरिक्त सांस्कृतिक सम्बन्ध भी अधिक दृढ़ था । भारत से विदेशों में और विदेशों से भारत में सदैव प्रतिनिधि आया-जाया करते थे । चीन देश का तो भारत से घनिष्ठ सम्बन्ध था । कई बार हर्ष अपने ब्राह्मण प्रतिनिधि चीन देश में भेज चुके थे । चीन से इसी प्रकार भारत आने वाले यात्रियों का तांता लगा रहता था । किन्तु चीन और भारत के पारस्परिक सम्बन्ध दृढ़ करने वाला उस काल का सर्वश्रेष्ठ महत्व-पूर्ण व्यक्ति ह्वेनसांग था ।

सन् ६०० ईस्वी में चीन के प्रतिष्ठित कन्फ्यूसियन परिवार में ह्वेनसांग का जन्म हुआ । कन्फ्यूसियन लोग बौद्ध धर्म के विरुद्ध थे और यही आश्चर्य है कि बौद्ध धर्म के कट्टर शत्रु की सन्तान होकर भी ह्वेनसांग इतना दृढ़ बौद्ध धर्मावलम्बी हुआ कि उसने न केवल स्वयं बौद्ध धर्म की शिक्षा ग्रहण की वरन् उसके प्रचार के लिए उसने अपना सारा जीवन समर्पित कर दिया । ह्वेनसांग अपने चारों भाइयों में सबसे छोटा था । विद्याध्ययन में उसकी इतनी रुचि थी कि बाल्यावस्था में ही वह अपने भाइयों से बाजी मारकर उच्च शिक्षा ग्रहण करने लगा । अपनी तीक्ष्ण बुद्धि द्वारा उसने अल्प वय में ही काफी ग्रंथों का अध्ययन कर डाला । इसी बीच कुछ भिक्षु साधुओं के सत्संग से उसका चित्त शाक्य मुनि के शान्तिमय धर्म की ओर प्रवृत्त होना आरम्भ हुआ । बस फिर क्या था ? अपनी कुशाग्र बुद्धि को उसने बौद्ध धर्म के अध्ययन की ओर मोड़ा और कुछ ही दिनों में इन ग्रन्थों का महा-पंडित बन गया ।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

उस पर वुद्ध धर्म का इतना रंग चढ़ चुका था कि माता-पिता, सगे-सम्वन्धियों के विरोध पर भी उसने अपना मार्ग न छोड़ा और अन्त में भिक्षु बनने की इच्छा से अपने देश के वौद्ध मठों की यात्रा पर निकल पड़ा। घर-बार त्याग कर उसने अपनी खाने-पीने और सुख-विलास भोगने की २० वर्ष की सुन्दर युवावस्था का उपयोग विद्वान चीनी भिक्षुओं के चरणों में वैठकर बौद्ध धर्म के मर्म जानने और उसके प्रसिद्ध ग्रन्थों के अध्ययन में किया। होनहार युवक ह्वेनसांग ने अल्प समय में ही अपनी विद्वत्ता और वाग्मिता के लिए चीन देश में प्रसिद्धि प्राप्त कर ली। किन्तु इसके लिए एक अभाव सदा दुःख का कारण बना रहता। चीन में वौद्ध धर्म के ग्रन्थों के अनुवाद मात्र ही उपलब्ध थे। उनकी मूल प्रतियाँ प्राप्त न थीं। उसे अनुवाद पढ़कर सन्तोष न होता। वह चाहता कि ऐसे शान्तिमय धर्म के मूल-ग्रन्थों को पढ़कर उसका मन्थन करे। किन्तु वह चीन म कहाँ से प्राप्त होते ?

उसकी दृष्टि बौद्ध धर्म के मूल स्रोत की ओर गई। वह उस देश को देखने के लिए वहुत लालायित था जहाँ सर्वप्रथम यह प्रकाशमय धर्म अपनी पूर्ण ज्योति के साथ उदित हुआ। वह उस पवित्र देश को देखने और वहाँ के उन पवित्र स्थानों के दर्शन के लिए परम उत्सुक था, जो भगवान् वुद्ध के चरण-चिह्नों से पवित्र हो चुके थे। अपनी इसी उत्कृष्ट अभिलाषा के कारण उसने भारत-यात्रा का निश्चय ठान लिया।

सन् ६२९ में उसने अपनी यात्रा की तैयारी की और चीन के टैंग राजाओं की राजधानी चैंग-अन से भारत के लिए प्रस्थान कर दिया। चीन से भारत आने के लिए उस समय चार मार्ग थे। इसमें से दो मार्ग प्रधान थे। एक उत्तरी मध्य एशिया और दूसरा दक्षिण मध्य एशिया से होकर आता था। तीसरा तिव्बत से और चौथा हिन्द महासागर एवं हिन्देशिया के उपनिवेशों से होकर आता था। ह्वेनसांग ने अपनी यात्रा के लिए उत्तरी मार्ग का अवलम्बन किया।

वह तुरफ़ान, कूचा, इस्सिकुल, ताशकंद, समरकंद, कुंदुज, कावुल तथा पेशावर होता हुआ भारत आया। ह्वेनसांग भिक्षु था। मार्ग यात्रा के लिए पर्याप्त धन की आवश्यकता थी। किन्तु उसकी पूर्ति तुरफ़ान के राजा ने कर दी। उसने

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

कई पत्र भी मार्ग में पड़ने वाले कई देशों के राजाओं के लिए उसे दिये। जिससे आवश्यकतानुसार वह लाभ उठा सके। इन्हीं पत्रों के कारण वह बेखटके पेशावर तक पहुँच गया। मार्ग में स्थान-स्थान पर उसका स्वागत भी होता रहा और उसकी यात्रा भी बड़ी सुविधापूर्वक सम्पन्न हुई।

चीन से भारत पहुँचने में उसे पूरा एक वर्ष (सितम्बर ६२९से सितम्बर-६३०) लग गया। सर्वप्रथम उसने हिन्दूकुश पर्वत पार कर भारत के प्रथम सीमान्त राज्य कपिशा में प्रवेश किया और वहाँ की राजधानी में अपना चातुर्मास्य बिताया। वर्षा ऋतु समाप्त होने पर वह पंजमी की घाटी से नीचे उतरा और काला पहाड़ पार कर लमघन देश में प्रविष्ट हुआ। अब उसे किसी प्रकार की कठिनाई न रह गई और वह काबुल नदी की तरेटी से होता हुआ और जलालाबाद के समीपस्थ एक मठ से होकर अक्तूबर ६३० तक गांधार राज्य में आ पहुँचा।

मई ६३१ ई० से अप्रैल ६३३ ई० तक दो वर्ष ह्वेनसांग ने काश्मीर में निवास कर बौद्ध सूत्रों और शास्त्रों का अध्ययन किया। कश्मीर से चलकर वह तक्क की राजधानी में आया और यहाँ एक मास तक रुककर उसने पंजाब में प्रवेश किया।

इसी बीच भिक्षु ह्वेनसांग को भारत यात्रा के कुछ कटु अनुभव भी हुए। भारत की विशालता और महानता का अनुभव करते हुए भी उसे यहाँ के शासन की कुछ त्रुटियाँ भी दिखाई दीं। अभी उसने भारत के प्रमुख भाग में प्रवेश ही किया था कि यहाँ की राज्य-व्यवस्था का अनुमान होने लगा। उस काल में सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य, अशोक और विक्रमादित्य जैसे प्रतापी एवं एकछत्र शासकों का अन्त हो चुका था।

चेनाब नदी पार हो चुकी थी। शाकल नगर से निकल कर ह्वेनसांग पलाश के एक बीहड़ वन में जा रहा था। मार्ग बहुत सुनसान था। भयावना और संकट-ग्रस्त! ह्वेनसांग भिक्षु होते हुए भी सर्वथा धनहीन न था। यात्रा-व्यय के लिए राजाओं द्वारा प्रदत्त उसके पास पर्याप्त धन रहा करता। उसे भय रहना स्वाभाविक ही था। आज उसका हृदय न जाने क्यों काँपने लगा। बीहड़ से बीहड़ मार्ग पार कर भी वह घबराया न था, किन्तु अचानक आज उसके मन की

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

धड़कन बहुत बढ़ गई। वह चारों ओर देखता-भालता चौकन्ना हो तीव्रगति से चला जा रहा था।

अन्त में उसकी आशंका सार्थक हो गई। वन में जाते-जाते अचानक झाड़ियों में छिपे लगभग पचास सशस्त्र डाकुओं ने उसे घेर लिया और बहुत मारा-पीटा। सम्पूर्ण धन अपहरण तो किया ही, वस्त्र भी उतरवा लिये। केवल एक आधी धोती पहिनने को देकर उन्होंने शेष माल-मत्ता छीन लिया।

ह्वेनसांग काफी पिट चुका था। एक साथ पचास डाकुओं का मुकाबिला करने की शक्ति उसमें कहाँ? चुपचाप सब सहन कर लिया। डाकू धन लेकर भागे किन्तु ईश्वर ने इस समय मानो स्वयं ह्वेनसांग की रक्षा की। वन से सटा हुआ एक ग्राम था। वहाँ खेतों में कुछ ब्राह्मण धान बो रहे थे। उन्होंने डाकुओं को भागते देखा तो चिल्लाहट मचा कर बहुत से लोगों को इकट्ठा कर लिया। वे सब लाठियां भाले लेकर डाकुओं पर टूट पड़े। डाकू भी बहादुर थे। कुछ देर तक दोनों ओर से जमती रही किन्तु संख्या में डाकू कम थे, अतः आधा माल-मत्ता छोड़कर भाग गये। बाकी अपने साथ लेते गये। उन ब्राह्मणों ने ह्वेनसांग की काफी सेवा शुश्रूषा की। मारपीट से जो चोटें आई थीं, उनका उन्होंने इलाज किया और कई दिन रोकने के बाद आदरपूर्वक भिक्षु को विदाई दी। हर्ष के शासन की एक बुरी झलक उसे यहाँ दिखाई दी। एक साधु पर आक्रमण करने में बड़े से बड़ा पापी भी संकोच करेगा; किन्तु उस काल में कलि का काफी प्रभाव जम चुका था जिसे मिटाने में हर्ष के प्रयत्न अपर्याप्त थे।

वहाँ से चलकर वह पूर्वी पंजाब में चिनभुक्ति पहुँचा और १४ मास तक रुका रहा। यहीं उसने एक प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान् से धर्मशास्त्रों का अध्ययन किया। वहाँ से वह जालन्धर पहुँचा जहाँ ४ मास तक ठहरा। फिर कुलूट और मथुरा पार कर थानेश्वर पहुँचा। बताया जाता हैकि उस काल में यमुना नदी इस राज्य के बीच से होकर पूर्व की ओर बहती थी और इस की पूर्वी सीमा पर गंगा नदी थी। इस देश में जाड़े भर तथा आधे वसन्त तक ठहर कर उसने जयगुप्त नामक श्रमण से अध्ययन किया। इसके बाद गंगा पार कर बिजनौर जिले में स्थित मतिपुर में आ पहुँचा। जहाँ शेष वसन्त एवं ग्रीष्म ऋतु बिताई। मतिपुर से ६३६ ई०

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

के मध्यकाल के लगभग वह हर्षवर्द्धन की राजधानी कन्नौज में आया, जहाँ भद्र-विहार में वह ठहरा रहा किन्तु उसने हर्ष से भेंट नहीं की। उसका उद्देश्य केवल बौद्ध ग्रन्थों का अन्वेषण और अध्ययन मात्र रहा। राजाओं से मिलकर वह क्या करता? धन या सम्मान का लोभ उसे था नहीं।

उत्तरी भारत की राजधानी से बढ़कर वह जब अयोध्या पहुँचा तो यहाँ उसे पुनः डाकुओं का शिकार होना पड़ा। यहाँ उसे धनापहरण का ही भय नहीं था, वरन् उसके सामने प्राणसंकट आ प्रस्तुत हुआ। अवध राज्य की राजधानी अयोध्या से होकर जब वह प्रयाग की ओर चला तो मार्ग में गंगा नदी पार करने की आवश्यकता पड़ी। उसने सोचा, क्यों न नदी-मार्ग से ही वह जल-विहार करता हुआ एक नौका द्वारा प्रयाग पहुँचे। वह एक नौका पर सवार हो प्रयाग की ओर बढ़ा। इतने में मार्ग में एक सुनसान स्थान पर नौका सवार बहुत से डाकुओं ने उसे आ घेरा और मल्लाह सहित गिरफ्तार कर उसे बीहड़ वन में स्थित अपने निवास स्थान पर ले गये। ह्वेनसांग सोचता था कि धन-वस्त्र छीन कर सम्भवतः वे उसे छोड़ देंगे; किन्तु नहीं, यहाँ तो उसके प्राणोंपर आ बनी। उसे एक सुरंग में कड़े पहरे के अन्दर बन्द कर दिया गया। उसे अच्छी प्रकार खिलाया-पिलाया और प्रसन्न किया गया। ह्वेनसांग की समझ में न आ रहा था कि बात क्या है? अन्त में उसे सुरंग के बाहर बहुत से ढोल और बाजे बजने की ध्वनि सुनाई दी। कुछ लोग नाच-कूद भी रहे थे।

इसी बीच ह्वेनसांग को अच्छे कपड़े पहना कर वे लोग बाहर लाये। यहाँ एक भारी काली की मूर्ति थी। भारतीय शास्त्रों के पर्याप्त अध्ययन के कारण ह्वेन-सांग को समझते देर न लगी कि वह मूर्ति महाकाली की है। उसे अब शंका हुई कि वे कहीं उसकी बलि न चढ़ाना चाहते हों। उसकी आशंका सत्य थी। थोड़ी देर में ही डाकू काली माई की जय पुकार-पुकार कर खड्ग हाथ में लेकर ह्वेन-सांग की बलि देने को तैयार हुए। ह्वेनसांग के तो प्राण सूख गये। उसे दुःख यही था कि वह सम्पूर्ण भारत-भ्रमण कर बुद्ध भगवान् के पवित्र दर्शनीय स्थानों को नहीं देख सका। मरने की उसे चिन्ता न थी। किन्तु जाको राखे साइयाँ मार न सकता कोय। ईश्वर को ह्वेनसांग का नाम सम्राट् हर्ष के साथ

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

भारतीय इतिहास में अमर करना था। बिना काम पूरा किये वह उसे मरने कैसे देता ?

ठीक इसी समय अचानक एक भयानक तूफान आया। पूर्व की ओर से जबरदस्त अन्धड़ बड़े-बड़े पेड़ों को गिराता-उड़ाता चला, जिसने डाकुओं तक के हृदय कँपा दिये। वे भी अपनी जान लेकर भागे। भागते समय वे अपने बन्दी का भी ध्यान भूल गये और अवसर पाकर ह्वेनसांग भाग निकला। यदि ईश्वर आज ह्वेनसांग को न बचाता, तो उसका इन दुष्ट डाकुओं के हाथों काली के बलिदान के नाम पर प्राणापहरण हो ही जाता।

इस प्रकार दूसरी बार ह्वेनसांग को डाकुओं का बुरी तरह शिकार होना पड़ा। अबतक तो वह इस बात से निश्चिन्त था कि भविष्य में वह अपने पास धन न रखेगा और जैसे-तैसे यात्रा करेगा किन्तु बलि चढ़ाने की इस प्रथा से उसके हृदय में बहुत भय उत्पन्न हुआ। किसी राजा की सहायता लेना उसके लिए अनिवार्य हो गया।

यहां से सीधे वह प्रयाग पहुँचा। जहाँ से निरन्तर यात्रा करता कौशाम्बी, श्रावस्ती, कपिलवस्तु, कुशीनगर, वाराणसी, वैशाली और नेपाल होता हुआ नीचे मगध में उतरा। यह देश भगवान् बुद्ध की पुण्य स्मृतियों से परिपूर्ण था। यहाँ पूर्वकाल के अनेक सम्राट् राजा-महाराजा अपनी अपूर्व स्मृति के चिह्न छोड़ गये थे। पाटलिपुत्र का प्राचीन नगर तो अब नष्ट-भ्रष्ट हो चुका था, किन्तु हाँ, उसके अन्दर चारों ओर बने प्रसिद्ध मठों, पवित्र बौद्ध स्तूपों के उसने दर्शन किये और अपने को धन्य समझता वह गया पहुँचा जहाँ बोधि वृक्ष की उसने पूजा की। उसने नैरंजन नदी और महाबोधि मन्दिर का दर्शन कर अपना जीवन सार्थक कर लिया। बचपन में वह जो स्वप्न देखा करता था वे आज पूरे हो गये। बोधिमण्ड अथवा वज्रासन देखकर उसे बड़ी प्रसन्नता हुई। वहाँ एक हज़ार बुद्ध बोधि (मोक्ष) प्राप्त कर चुके थे। ह्वेनसांग वहाँ आठ-नौ दिन रहा और एक-एक करके उसने बुद्ध के प्रत्येक पवित्र चिह्न की पूजा की।

ह्वेनसांग गया से ६३७ ई० में नालन्दा विश्वविद्यालय गया। इस प्राचीन विश्वभारती में उसकी ख्याति पहिले ही पहुँच चुकी थी। नालन्दा के बौद्ध-संघ

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

की ओर से उसका राजसी स्वागत किया गया। उसका वहुत वड़ा जुलूस भी निकाला गया। जुलूस के साथ-साथ दो सौ भिक्षु और हजारों उपासक थे, जिनके हाथों में छत्र, चंवर, झंडे, फूलमालाएँ और सुगन्धित पदार्थ थे। नालन्दा में ह्वेन-सांग कुछ समय तक एक सम्मानित अतिथि के रूप में ठहराया गया। यहाँ पर उसने अपने समय का सदुपयोग किया। वह योगशास्त्र पर विश्वविद्यालय के अध्यक्ष (चांसलर) शीलभद्र के व्याख्यान सुनता और हेतुविद्या, शव्दविद्या, वसुबंधु के कोष तथा पाणिनि के व्याकरण आदि का अध्ययन करता यहा।

नालन्दा से उसकी धूमधाम से विदाई हुई। वहाँ से वह हिरण्य देश (मुंगेर) आया। फिर चम्पा (भागलपुर) तथा खजुघिर (राजमहल) होता हुआ वंगाल में प्रविष्ट हुआ। वहाँ से पुंड्रवर्द्धन और फिर वंगाल के समतट तथा कर्णसुवर्ण जैसे प्रसिद्ध देशों की यात्राकर वह दक्षिण की ओर बढ़ा। उसकी इच्छा लंका जाने की थी। लंका में ऐसे विद्धान पर्याप्त थे जो योगशास्त्र का अध्ययन करा सकते थे और यही ह्वेनसांग के अध्ययन का मुख्य विषय था।

उड़ीसा होता हुआ वह थोड़े दिनों के लिए कोशल (मध्यप्रदेश का छतोस-गढ़) पहुँचा। दक्षिण कोशल बौद्धों के महान गुरु नागार्जुन का निवास स्थान था। यहाँ से ह्वेनसांग दक्षिण को ओर बढ़ता गया और ६३८ ई० में धनकटक (कृष्णा नदी के तट पर स्थित अमरावती) पहुँचा। यहाँ कई मास ठहरा। दूसरे वर्ष (सन् ६४०) पल्लवों की राजधानी कांची जाने का उसका इरादा हुआ। लंका जाने के लिए वहीं जहाजों का बन्दरगाह था। किन्तु लंका जाना उसके भाग्य में नहीं था। बहुत सी संकटापन्न स्थितियों के कारण लंका जाने का समुद्रीय मार्ग उस समय बंद था। ह्वेनसांग की लंका जाने की उत्कट इच्छा थी। इसके लिए वह काफी समय तक कांची ठहरा रहा। किन्तु उसकी यह इच्छा पूरी न हो सकी और उसे लौटना पड़ा। वहाँ से वह उत्तर की ओर बढ़ा।

वह महाराष्ट्र आया। वर्षा ऋतु उसने पुलकेशी की राजधानी में व्यतीत की और फिर उत्तर पश्चिम की ओर बढ़ा। जहाँ से नर्मदा पार कर वह भड़ौंच के गुर्जर राज्य में पहुँचा। भड़ौंच से मालवा और वहाँ से वलभी देश में आ गया। यहाँ हर्ष का दामाद शासन करता था। यहाँ से उसने उत्तर पश्चिम की यात्रा आर-

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

म्भ की। इस यात्रा में सिन्ध आदि प्रमुख प्रदेशों का भ्रमण कर वह मूलस्थान (मुल्तान) पहुँचा। वहाँ उसने सूर्यदेव का एक भव्य मंदिर देखा। यही प्रह्लाद के पिता हिरण्यकश्यप की राजधानी थी। यहाँ से वह फिर उत्तर पूर्व की ओर बढ़ा। जहाँ से जम्मू प्रान्त में आकर दो मास तक ठहरा रहा। यहीं से उसे पेशावर वापिस जाना था। किन्तु भारत छोड़ने के पूर्व उसे एक बार पुनः नालन्दा-दर्शन की इच्छा हुई। वह चाहता था कि कुछ दिन ठहर कर वह बौद्ध दर्शन का और अध्ययन करे। उसकी इच्छा पूरी हुई और वह ६४२ ई० में पुनः नालन्दा पहुँचा। उसके गुरु शीलभद्र ने एक जयसेन नामक प्रकांड पंडित से उसकी भेंट करा दी जिससे बौद्ध दर्शन के अनेक गूढ़ विषयों पर उसने अपनी शंकाओं का निवारण किया। वहाँ से वह एक बार फिर बोधि बिहार गया और नालन्दा लौट-कर गुरु के आदेशानुसार महायान शास्त्र पर उसने नालन्दा संघ में कई व्याख्यान दिये। उसकी ख्याति दूर-दूर तक पहुँच चुकी थी। तर्क में उसे कोई हरा न पाता और जो उसके विरुद्ध बोलने का साहस करते वे पूर्णतः पराजित होते। योगा-चार दल के सिद्धान्तों की यथार्थता को प्रमाणित करने के लिए ह्वेनसांग ने यहीं एक ग्रन्थ की रचना भी की।

ह्वेनसांग की ख्याति कामरूप जैसे दूर देश में पहुँची। वहाँ का राजा भास्कर-वर्मा उसका दर्शन पाने के लिए लालायित हो उठा। उसने अपने कई प्रवीण दूत अनेक विनय भरे पत्रों के साथ नालन्दा भेजे जिनमें उसे अपनी राजधानी आने का निमंत्रण दिया गया। ह्वेनसांग स्वदेश लौटने लिए अत्यन्त उतावला हो रहा था। किन्तु नालन्दा विश्वविद्यालय के अध्यक्ष आचार्य शीलभद्र ने उसे वहाँ जाने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने समझाया कि एक ऐसे राजा के यहाँ जो बौद्ध नहीं है, जाना कर्त्तव्य है। फलतः ह्वेनसांग दूतों के साथ चल पड़ा। दूत उसे बड़ी सुविधा और सम्मानपूर्वक कामरूप ले गये। भास्करवर्मा ने बड़ी धूमधाम से उसका स्वागत किया। भास्करवर्मा चीन के सम्राट् तैत्सुंग की ख्याति से प्रभावित था इसलिए चीनी यात्री का उसने सम्मानपूर्वक राजसी स्वागत किया।

सम्राट् हर्ष उस समय खजुघिर में अपनी सम्पूर्ण वाहिनी का पड़ाव डाले पड़े थे। उटू और क़ोगोंध पर विजय कर वे कन्नौज की ओर लौट रहे थे। उनके

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

पास भी ह्वेनसांग की ख्याति आ पहुँची। वे कब ऐसा अवसर चूकने पाते ? उन्होंने तत्काल अपना दूत कामरूप भेजा। दूत के हाथ भेजे अपने पत्र में उन्होंने भास्करवर्मा को लिखा कि शीघ्र अपने विदेशी अतिथि को साथ लेकर सेना के पड़ाव पर मिलो। भास्कर सम्राट् की आज्ञा पाकर बड़ा दुखी हुआ। वह नहीं चाहता था कि ह्वेनसांग को वह इतनी जल्दी अपने देश से विदा करे। किन्तु करता क्या ? सम्राट् की आज्ञा थी। उसका उल्लंघन करना काल को निमंत्रण देना था। बेचारा विवश हो चीनी यात्री के साथ खजुघिर चल पड़ा।

सम्राट् हर्ष ने चीनी यात्री के स्वागत की काफ़ी तैयारियाँ कर रक्खी थीं। उन्होंने बड़े सम्मानपूर्वक स्वयं मंत्रियों, सामन्तों के साथ शिविर से काफी दूर आगे बढ़कर ह्वेनसांग की अगवानी की और आदरपूर्वक शिविर में लाये। सम्राट् हर्ष गुणी का बड़ा ही समादर करते थे और फिर विदेशी अतिथि होने के नाते उन्होंने ह्वेनसांग का विशिष्ट राजकीय सम्मान किया।

सम्राट् ह्वेनसांग से मिलकर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने लगातार कई दिनों तक ह्वेनसांग से बौद्ध धर्म के हीनयान और महायान मतों पर विवाद किया। यद्यपि सम्राट् स्वयं ह्वेनसांग के अनुकूल ही थे और महायान मत के समर्थक थे किन्तु उसकी श्रेष्ठता का ज्ञान करने की उसकी अत्यन्त अभिलाषा रहती। ह्वेन-सांग जैसा तार्किक पाकर वे और भी उत्सुक हो गये। दिन रात वाद-विवाद में लगे रहते।

यहाँ से उन्हें राजधानी लौटना था। उन्होंने भास्करवर्मा को लौट जाने का आदेश दिया। आज्ञा पाकर वह अपने सम्मानित अतिथि से विदाई लेकर अपने राज्य को लौट गया और हर्ष चीनी यात्री को साथ ले कन्नौज रवाना हुए। अपनी विशाल दिग्विजयी चतुरंगिणी सेना के साथ उनके शिविर धीरे-धीरे आगे बढ़ रहे थे और यही अवसर हर्ष को ह्वेनसांग से बौद्ध धर्म पर विवाद करने का मिलता। सेनाएँ गंगा के किनारे-किनारे चल रही थीं और दिन में कठिनाई से दो चार कोस सरकतीं।

कन्नौज लौटने में उन्हें तीन मास लग गये। मार्ग में कई स्थानों पर हर्ष कई-कई दिन रुक भी जाते, इसीलिए और भी बिलम्ब हुआ। यों तो ह्वेनसांग चीन

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

लौटने के लिए अत्यन्त उत्सुक था किन्तु उत्तरी भारत के एकच्छत्र सम्राट् को अपनी ओर आकर्षित देखकर वह रुक जाने के लिए बाध्य हुआ। उसने सोचा कि सम्राट् को यदि वह पूर्ण रूप से बौद्ध धर्म के रंग में रँग लेगा तो उसकी यात्रा द्वारा एक महान कार्य सिद्ध हो जायगा। भारत आकर बौद्ध धर्म का अद्भुत ज्ञान प्राप्त कर वह स्वयं तो कृतार्थ हुआ ही, एक महान सम्राट को भी बौद्ध धर्म का अनुयायी बनाने में उसकी यात्रा पूर्ण हो जायगी। यही सोचकर, एक पन्थ दो काज करने के उद्देश्य से सम्राट् का आग्रह उसने स्वीकार कर लिया।

: ३० :

कन्नौज की धार्मिक परिषद्

जिसके पिता प्रभाकरवर्द्धन, समस्त पूर्वज और सम्पूर्ण वंश आर्यधर्म के अनुयायी थे, उसने आज पूर्णतः बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया। दिवाकर मुनि के जिस बौद्ध धर्म का अंकुर हर्ष के हृदय में अपना छोटा-सा रूप लेकर उदित हुआ, वह अवलोकितेश्वर बोधिसत्त्व के सत्संग से एक पौधे का रूप धारण कर बुद्ध भगवान के दन्तदर्शन से धीरे-धीरे अपनी परिपक्वास्था को पहुँचने लगा था। आज ह्वेनसांग द्वारा प्रदत्त ज्ञानामृत से सिंचकर वह एक विशाल वृक्ष के रूप में दिखलाई देने लगा। हर्ष अब पूर्ण बौद्ध धर्मावलम्बी हो चुके थे।

सम्राट् को धुन सवार हुई। जिस धर्म का उन्होंने अवलम्बन किया, उसे सर्वश्रेष्ठ सिद्ध करने के लिए देश के विभिन्न धर्मावलम्बी विद्वानों का एक विशाल सम्मेलन बुलाने की इच्छा हुई। जिस धर्म को सम्राट् माने, सारा देश उसे ही क्यों न माने ? यही एक हठ था। जिसके लिए हर्ष बहुत उतावले हो रहे थे। उन्होंने मंत्रियों को तत्काल विद्वत्परिषद् बुलाने का प्रबन्ध करने की आज्ञा दी।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

आज्ञा पाकर सभी मंत्री तत्पर हो उठे। कन्नौज में एक विस्तृत भूमि पर सम्मेलन का सुप्रवन्ध किया गया। बड़े-बड़े पंडाल लगने आरम्भ हो गये। दो सहस्र व्यक्तियों के बैठने की सुविधाजनक व्यवस्था उन पंडालों में की गई। पंडाल इतने भव्य बनाये गये थे कि देखने वाले उनकी सुन्दरता पर मुग्ध हो जाते। सभा मंडप के बीच एक विशाल मंच भी बनाया गया जिस पर वक्ता लोग और सम्मानित अतिथि बैठ सकें। पंडालों को चारों ओर घेरा गया जिससे कोई बिना प्रवेशपत्र अन्दर न आने पावे।

सम्राट् की ओर से देश के समस्त भागों के बड़े-बड़े विद्वानों, भिक्षुओं को निमंत्रण पत्र भेजे गये। नालन्दा के विद्वान विशेष रूप से आमंत्रित किये गये। अपने अधीनस्थ और मित्र राजाओं को भी इस परिषद में हर्ष ने बुलाया। प्रतिनिधियों के निवास के लिए विशेष सुव्यवस्था की गई। बड़े-बड़े शिविर लाखों रूपये व्यय कर बनवाये गये जिनमें रहने की सम्पूर्ण सुख-सुविधाओं का पूर्ण प्रबन्ध किया गया। शिविर घास-फूस के निर्मित थे। अभ्यागत राजाओं के निवास के लिए भी सुन्दर-सुन्दर पर्णनिर्मित अस्थायी राजभवन बनाये गये। स्वयं सम्राट् के लिए एक विशाल राजमहल उसी अवसर के लिए निर्मित हुआ। इस प्रकार धार्मिक परिषद् के लिए एक नवनिर्मित नगर ही तैयार हो गया।

सभा मंडप के पास एक १०० फुट ऊँची मीनार बनाई गयी जिस पर भगवान् बुद्ध की नवनिर्मित मूर्ति स्थापित होनी थी। बुद्ध की मूर्ति बनाने में एक सौ जौहरियों और सुनारों को नियुक्त किया गया जिन्होंने १५ दिन में मिलकर निर्माण पूरा किया। यह मूर्ति सम्राट् के कद के बराबर लम्बी थी। नगर-निर्माण-कार्य सम्राट् की देखरेख में हुआ। ह्वेनसांग के साथ सम्राट् नित्य निर्माण-कार्य का निरीक्षण करने जाते और उसकी त्रुटियां ठीक कराते। एक मास तक सम्राट् ने दिन रात एक कर पूरा नगरनिर्माण समाप्त कराया। सम्राट् की इतनी संलग्नता से ही शीघ्रता में निर्माण-समाप्ति हो पाई।

धीरे-धीरे वे दिन निकट आने लगे जब कन्नौज की महत्वपूर्ण धार्मिक-परिषद् का आयोजन था। प्रतिनिधियों का आगमन आरम्भ हो गया। सम्राट् ने अपनी अध्यक्षता में एक स्वागत समिति भी बनाई थी जिसके कार्यकर्त्ता प्रतिनिधियों

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

को बड़ी तत्परता से उचित स्थानों पर ठहराने लगे। उनके भोजन, पानी, स्नान-ध्यान, विश्राम आदि की व्यवस्था में किसी प्रकार की त्रुटि न आने देने के लिए कुशल कार्यकर्त्ता कटिबद्ध थे। समयानुसार १८ देशों के राजा भी अपने साज-बाज के साथ कन्नौज पहुँचे जिनमें कामरूप और वलभी के राजा मुख्य थे। स्वागत समिति ने इन सब का सम्मानपूर्वक स्वागत किया और उन्हें पर्णनिर्मित भवनों में सुखपूर्वक ठहराया। नालन्दा से आचार्य शीलभद्र के नेतृत्व में एक हजार बौद्ध पुरोहित आये। इन लोगों की व्यवस्था एक छोटे-से उपनगर में अलग ही की गई। यह उपनगर मानो एक विश्वविद्यालय का रूप था। इसके अतिरिक्त बौद्ध धर्म के महायान और हीनयान सम्प्रदायों के तीन हजार पारंगत विद्वान् श्रमण भी सम्मिलित होने आये। इन लोगों की विशेष ही व्यवस्था की गई। दूसरी ओर तीन ही हजार वैदिक धर्मावलम्बी ब्राह्मण भी पहुँचे जो बौद्ध धर्म को सर्वश्रेष्ठ सिद्ध करने के लिए कमर कसकर आ गये थे। इन्हें भी एक वैदिक नगर के नाम से बनाये उपनगर में अलग ठहराया गया।

उक्त सभी प्रतिनिधि अपनी विद्वत्ता एवं पांडित्य में देश के चुने गये विद्वानों में से थे। वह धार्मिक परिषद् एक प्रकार से सरस्वती का महान् अनुष्ठान ही था किन्तु देखा गया कि उक्त परिषद् में घोर पक्षपात के कारण उसका महत्व वह न रहा जो एक निष्पक्ष और निर्भीक वाद-विवाद द्वारा निर्धारित सिद्धान्त को प्रतिपादन से होता। सम्राट् अपने मत को सर्वश्रेष्ठ सिद्ध करना चाहते थे इसलिए उन्होंने ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न कर दीं जिससे परिषद् में हुआ वाद-विवाद एकतरफा रहा।

धार्मिक परिषद् के आरम्भ का दिन आया। बड़ी धूमधाम और उत्साह-पूर्ण वातावरण में उसका समारम्भ हुआ। सम्मेलन के आरम्भ होने से पूर्व-भगवान् बुद्ध की स्वर्णमूर्ति का विशाल जुलूस निकाला गया। मूर्ति हाथी पर सजे-सजाये सुवर्ण-आसन पर रक्खी गई थी। हाथी पर मूर्ति के दोनों ओर स्वयं सम्राट् हर्ष और कुमारगुप्त हाथों में चंवर लिये खड़े थे। आगे-पीछे विभिन्न देशों के राजे-महाराजे और उनके सामन्त लोग स्वर्ण-मुद्राएँ, मोती-हीरे, जवाहर तथा सोने के फूल आदि बहुमूल्य वस्तुएँ लुटाते चल रहे थे। ह्वेनसांग और राज्य

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

के प्रधान मंत्री, उच्च राज्याधिकारीगण हर्ष के पीछे-पीछे अन्य विशालकाय हाथियों पर सवार थे। तीन सौ अन्य हाथियों पर अन्य अभ्यागत राजा उनके मंत्री तथा मुख्य-मुख्य श्रमण-पुरोहित लोग थे। इस प्रकार एक शानदार विशाल जुलूस सारी राजधानी में घूमता हुआ सभास्थल पर पहुँचा।

सभास्थल पर पहुँच कर बड़े सम्मानपूर्वक हाथी से स्वर्णमूर्ति उतारी गई और उस मीनार-पर बने विशाल सुवर्ण-सिंहासन पर उसकी विधिवत् स्थापना हुई। स्थापना होने पर हर्ष एवं ह्वेनसांग ने उस पर बहुमूल्य सुन्दर मालाएँ चढ़ाईं। तदुपरान्त सभामंडप में १८ राजाओं को प्रवेश कराया गया। तब एक हजार चुने हुए विद्वान् पुरोहित, पांच सौ चुने-चुनाये ब्राह्मण, बौद्धधर्मेतर विद्वान् तथा दो सौ बड़े-बड़े मंत्री सामन्त अन्दर लाये गये। जिन्हें सभाभवन में स्थान न मिल पाया उन्हें बाहर बैठने की आज्ञा दी गई। सबके आ जाने पर कार्यक्रम आरम्भ हुआ। सर्वप्रथम श्रीहर्ष तथा ह्वेनसांग ने मूर्ति पर बड़े-बड़े उपहार चढ़ाये। पुरोहितों ने भी यथाशक्य चढ़ावे चढ़ाये और तब वाद-विवाद का श्रीगणेश किया गया।

हर्ष खड़े हुए। उन्होंने अध्यक्षीय प्रस्ताव रखते हुए कहा—'आदरणीय विद्वज्जन तथा सम्मानित अभ्यागत वृन्द! इस महान धार्मिक सम्मेलन के अध्यक्षीय आसन पर एक प्रकांड विद्वान, सुयोग्य और प्रभावशाली वक्ताको ही बैठाना उचित होगा। हमारी दृष्टि से, हमारे सम्मानित अतिथि महापुरुष ह्वेनसांग इस कसौटी पर सब रूप से खरे उतरेंगे। विद्वत्ता, सुयोग्यता, प्रभाव, सबमें वे बढ़े चढ़े हैं। उन्हें छोड़कर दूसरा कोई इस पद पर अधिष्ठित होने योग्य हमें नहीं दीखता। धार्मिक परिषद् के सभापति पद के लिए हम इन्हीं के नाम का प्रस्ताव रखते हैं।'

नालन्दा विश्वविद्यालय के अध्यक्ष आचार्य शीलभद्र ने प्रस्ताव का समर्थन-अनुमोदन कर कहा—'मैं समझता हूँ कि महामान्य सम्राट् के प्रस्ताव का प्रत्येक व्यक्ति समर्थन करेगा। विद्वत्ता, सुयोग्यता के अतिरिक्त एक सम्मानित विदेशी अतिथि को उक्त पद प्रदान करना हमारे देश के लिए शोभाजनक होगा। मैं इस प्रस्ताव का हार्दिक समर्थन एवं अनुमोदन करता हूँ।'

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

और एक स्वर में सभी के समर्थन के बाद ह्वेनसांग अध्यक्ष पद पर आसीन हुआ। हर्ष ने अध्यक्ष को बहुमूल्य मालाएँ पहिना कर उचित सम्मान किया और तब उसने वाद-विवाद का कार्य आरम्भ किया। उसने अपने विस्तृत अध्यक्षीय भाषण में बड़े-बड़े अकाट्य तर्क प्रस्तुत कर हीनयान से महायान सम्प्रदाय को श्रेष्ठ सिद्ध करने का प्रयत्न किया। उसने महायान के सिद्धान्तों की खूब प्रशंसा की और बताया कि महायान से बढ़कर बोधिसत्त्व को प्राप्त करने का मोक्षदायक सुलभ मार्ग दूसरा कोई नहीं।

अध्यक्षीय भाषण के बाद ही ह्वेनसांग ने वाद-विवाद का विषय घोषित किया। उसने सभाभवन के बाहर एक तख्ती लगाकर उसमे वाद-विवाद का विषय लगवा दिया और यह भी लिखवाया कि यदि कोई व्यक्ति महायान के सिद्धान्तों या उनके किसी भी अंग को तर्कविरुद्ध सिद्ध कर दिखाये तो वह अपना सिर कटा देने को तैयार है।

सर्वप्रथम ह्वेनसांग ने नालन्दा के कई विद्वान् श्रमण क्रमश: बोलने के लिए खड़े किये। वे लोग घंटों तक अपने लम्बे भाषणों में विभिन्न तर्कों द्वारा महायान सिद्धान्तों को श्रेष्ठ सिद्ध करते रहे। इसके बाद और भी बौद्ध विद्वान् सामने आये। सबकी वाणी महायान के पक्ष में थी। सम्राट् हर्ष स्वयं महायान के पक्ष में थे। उन्होंने यह भी घोषित करा दिया कि जो पक्ष पराजित होगा उसका प्राणापहरण कर लिया जायगा। सायंकाल तक एकपक्षीय भाषण होते रहे। कोई भी विपक्षी सामने नहीं आया। सभी सम्राट् से भय खाते थे। वे जानते थे कि सम्राट् स्वयं महायान सम्प्रदाय के कट्टर समर्थक हैं और वे उसे श्रेष्ठ सिद्ध करने के लिए सिर से पैर तक कोई प्रयत्न शेष न छोड़ेंगे। इसी सिलसिले में यदि उनका पक्ष कहीं पराजित होने को हुआ तो पक्षपात कर अपने उसी पक्ष की विजय किसी न किसी प्रकार करा डालेंगे। साम्राज्य का शासन अपने प्रभाव से क्या नहीं करा सकता? इसीलिए कौन अपने प्राण गँवाने आता? किसकी जान इतनी सस्ती थी? कोई विरोधी मैदान में न कूदा।

सम्राट् इस बात से अति प्रसन्न थे कि कोई विपक्षी सामने नहीं बढ़ पा रहा है। वास्तव में सम्राट् की ह्वेनसांग पर बड़ी कृपा थी और वे चाहते थे कि उन्हीं

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

का कृपापात्र ही विजयश्री का आलिंगन करे। वे इस वात पर तुले थे कि महायान सम्प्रदाय श्रेष्ठ सिद्ध हो। भला सम्राट् का कोपभाजन बनने कौन आता ? किन्तु सम्राट् की इस पक्षपात पूर्ण नीति से विरोधी लोग बीच ही बीच कुढ़ने लगे। बहुत से लोग इस वात से सम्राट् के प्रति अत्यधिक असन्तुष्ट और रुष्ट हो गये। उनमें कुछ ऐसे भी लोग थे जो अपने असन्तोष की भावना से प्रेरित हो साम्प्रदायिक शत्रुता की चरम सीमा पर पहुँच गये। उन्होंने ह्वेनसांग की हत्या का षड्यन्त्र रच डाला। इन धर्मान्ध लोगों से सम्राट् का पक्षपात सह्य न हुआ। किन्तु उनके दुर्भाग्यवश षड्यन्त्र फूट निकला। यद्यपि लोग पकड़े नहीं जा सके किन्तु सम्राट् के कान तक इस बात की भनक पहुँच गई।

सम्राट् बहुत क्रुद्ध हुए। उन्होंने तत्काल आदेश जारी किया—कोई भी व्यक्ति यदि धर्माचार्य को स्पर्श करेगा अथवा चोट पहुँचायेगा तो उसे प्राणदंड दिया जायगा और कोई भी उनके विरुद्ध कोई बात कहेगा तो उसकी जीभ काट ली जायगी। किन्तु जो लोग उनके उपदेशों से लाभ उठाना चाहते हों वे हमारी सत्कामना पर विश्वास रक्खें और इस घोषणापत्र से भयभीत न हों।

इस घोषणा-पत्र का परिणाम सम्राट् के अनुकूल ही हुआ। कौन ऐसी विजय-प्रतिष्ठा लेने आता जिसमें प्राणों का संकट हो। किसी को ह्वेनसांग के विरुद्ध बोलने का साहस न हुआ। क्योंकि वह सरकारी कृपारूपी लौहदुर्ग में सुरक्षित था, उस पर आक्रमण कौन करता ? सभी चुप रहे। किसी ने वाद-विवाद करने की हिम्मत न की।

नित्य सभा होती और बड़े-बड़े व्याख्यान होते किन्तु सभी एकपक्षीय। ह्वेनसांग का आनन्द भी बिगड़ गया। सभी समागत लोग, जो महान् वाद-विवाद का स्वाद लेने के उद्देश्य से ही प्रेरित हो यहाँ तक आये थे, उन सबको बड़ा क्लेश हुआ। वह विवाद था, वाद-विवाद नहीं। वाद-विवाद में पूर्व और उत्तर दोनों पक्ष रहते हैं और यह सभा केवल पूर्वपक्षियों की थी। उसमें उत्तर-पक्षियों ने बोलने का साहस ही न किया। अट्ठारह दिन तक नित्य यही क्रम चलता रहा और अन्त में तंग आकर ह्वेनसांग ने सभा-समाप्ति की घोषणा कर दी। उसने घोषित किया कि अट्ठारह दिन तक चुनौती देने पर भी कोई

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

शक्तिशाली विद्वान महायान की सर्वश्रेष्ठता को असत्य सिद्ध करने मैदान में नहीं आया, अतः देश के समस्त विद्वानों का प्रतिनिधित्व करने वाली यह धार्मिक परिषद् महायान सिद्धान्त को सर्वश्रेष्ठ और ऊँचा घोषित करती है !

ह्वेनसांग विजयी घोषित हुआ। सम्राट् ने विजयी ह्वेनसांग का नगर में शानदार जुलूस निकाला और घोषित किया कि ह्वेनसांग ने सभी विरोधियों को परास्त कर, महायान सिद्धान्तों की सत्यता तथा हीनयान सम्प्रदाय वालों के भ्रम को प्रमाणित कर दिया।

इससे विरोधियों को और आग लग गई—'एकपक्षीय विवाद पर विजयी बन बैठे। सभी को परास्त करने का गर्व तो तब होता जब कोई सामने भिड़ने गया होता। डंडे के बल पर विजय पा लेना विजय नहीं, पराजय है।' विरोधी सर्वत्र यही प्रचार करते फिरने लगे। सबमें बड़ा भारी क्षोभ उत्पन्न हो उठा—'बड़ा विजयोत्सव मनाया जा रहा है। दिग्विजयी का शानदार जुलूस निकल रहा है। सम्राट् निहाल हुए जा रहे हैं निहाल, अपने इस 'विजयी' अतिथि पर।' लोग दाँत पीस-पीस कर चिढ़ाने लगे।

सम्राट् के पक्षपात ने सभी के तन-बदन में आग लगा दी और इस आग ने एक भयंकर रूप धारण कर लिया। ह्वेनसांग की हत्या की भावना अब सम्राट् की हत्या का रूप धारण करने लगी। कुछ क्षुब्ध विपक्षियों ने एक गुप्त बैठक की जिसमें सम्राट की हत्या का षड्यन्त्र रचा गया। इसके लिये कुछ लोग नियुक्त किये गये।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

: ३१ :

सम्राट् की हत्या का षड्यन्त्र

सम्राट सहसा उस समय विचारभवन से बाहर निकले ही थे कि शोर मचा 'आग लगी, आग लगी।' यह विचारभवन बाहर से आये विद्वानों के परस्पर विचार-विमर्श और गोष्ठी आदि के लिये था। सम्राट उस समय ह्वनसांग तथा कई अन्य राजाओं के साथ ह्वेनसांग को विजयोपलक्ष्य में बधाई दे रहे थे कि अचानक उनकी इच्छा हुई कि बाहर चलकर टहला जाय। इधर उनका बाहर निकलना था कि उधर भवन पर आग की लपटें दिखाई देने लगीं। सम्राट और अन्य अतिथि बालबाल बच गये। शोर सुनकर सम्राट ने घूमकर देखा। विचार-भवन धाँय-धाँय जल रहा था। भवन काफी बड़ा था। उसे जलने में भी कुछ समय लगा।

उक्त दृश्य देखने के लिए सम्राट् ह्वेनसांग और कई अन्य राजाओं के साथ ऊँची मीनार पर चढ़ गये। वहाँ से आकाश को छूती हुई आग की लपटों को देख-देख कर अत्यन्त दुखी हो रहे थे। जिस धूमधाम से वादविवाद का आरम्भ हुआ, उसका अन्त आग की लपटों के बीच देख इन्हें बड़ा क्लेश हुआ। वे समझ रहे थे कि किसी उत्पाती ने ऐसा कुकृत्य किया है। क्षणों में वह सुन्दर भवन राख का ढेर हो गया। छोटे-छोटे अंगारों और काले-काले कोयलों के अतिरिक्त वहाँ अब और क्या था? प्रत्येक सुन्दर वस्तु की अन्तिम निशानी मिट्टी, धूल, राख ही तो हुआ करती है। सम्राट् की आज्ञा से आग बुझाने के लिए कर्मचारी दौड़े किन्तु घास फूस का वह भवन जल आने तक की प्रतीक्षा थोड़े ही करता? जब तक बुझाने वाले तत्पर हुए, वह जलकर राख हो चुका था।

सम्राट मीनार से नीचे उतरने लगे। विरोधियों ने सोचा था कि विचार-भवन में सम्राट अपने विदेशी अतिथि के साथ भस्मसात् हो जायेंगे और उनकी गरम-गरम अवशेष राखदेखकर वे अपना दिल ठण्डा करेंगे किन्तु वह कुप्रयास असफल हुआ। अब एक और दुर्घटना हुई। सम्राट कुछ ही सीढ़ियाँ उतर पाये थे कि एक निर्दय

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

दुष्ट युवक हाथ में छुरा लेकर उनके सामने आ खड़ा हुआ। उसने बड़ी तीव्रता से सम्राट पर आक्रमण कर दिया। सम्राट ने बड़े-बड़े युद्धों में हजारों योद्धाओं के भयानक आक्रमण देखे और सहे थे। इस साधारण आक्रमण से भला घबरा जाते ? बाईं बाँह पर छुरा लगा किन्तु उन्होंने झपट कर उस दुष्ट को दायें हाथ से पकड़ लिया। भय के मारे उसका छुरा छटक कर नीचे जा गिरा। 'हूँ! छुरों से अपना मत श्रेष्ठ सिद्ध करना चाहता है नराधम !' उन्होंने एक थप्पड़ कसकर उसके मुंह पर जमाया। वह लुढ़कता हुआ सीढ़ियों से नीचे आ गिरा। नीचे अब तक अनेक सैनिक पहुँच चुके थे। उन्होंने अपराधियों को गिरफ्तार कर लिया।

चोट यद्यपि पर्याप्त थी किन्तु सम्राट की दृष्टि में साधारण थी। उसके उपचार के बाद उन्होंने तत्काल अपराधी को अपने समक्ष प्रस्तुत करने का आदेश दिया। उस समय ह्वेनसांग और अन्य राजागण भी दरबार में षड्यन्त्र का विस्तृत विवरण जानने के लिए उपस्थित थे।

अपराधी सामने लाया गया। वह सिर झुकाकर सामने खड़ा हो गया। उसने सम्राट् को हाथ नहीं जोड़े। उसके मुख पर क्रूरता टपक रही थी।

सम्राट ने पूछा, 'तुम्हारा नाम ?'

'शीलभद्र !'

सम्राट कुछ सकुचे। आचार्य शीलभद्र की नामराशि, उस पर कर्म दुष्टों-सा ?

'तुम कौन हो ?'

ब्राह्मण !'

'हम पर आक्रमण किसलिये किया ?'

'सम्राट ने वादविवाद में पक्षपात किया। हमारे धर्म पर यह गहरा आघात है।' उसने सम्राट की ओर घूर कर देखा।

'हमने पक्षपात किया ? जब बार-बार चुनौती देने पर भी कोई माई का लाल सामने नहीं आया तब महायान मत को सत्य सिद्ध करना कैसे अनुचित है ? अब भी यदि कोई शक्ति रखता है तो सामने आये। हम अवसर देते हैं।'

'सम्राट स्वयं महायान के समर्थक हैं। अपने कृपापात्र विदेशी अतिथि को जिताने में आपने कोई कोर-कसर न रक्खी और न रख सकते हैं। शासन सत्ता के

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

प्रभाव से किसी को विजय दिला देना विजय नहीं पराजय, है ।' युवक निर्भीक हो बोल रहा था ।

'हमने पक्षपात किया ?' सम्राट क्रोध से दाँत पीसने लगे—'दुष्ट, अपराध पर अपराध किए जा रहा है !'

'सत्य बात कहना अपराध है, तभी तो वाद-विवाद में सत्यपक्ष में बोलने का साहस नहीं किया ।' युवक ने क्रोधपूर्वक कहा ।

सम्राट क्रोध से लाल-पीले हो रहे थे, बोले, 'सैनिक, इसे अभी कोड़े लगाये जायं और जब तक यह सम्पूर्ण षड्यन्त्र के अभियुक्तों का पता न बता दे, कोड़ों की मार जारी रहे ।'

सैनिक ने तड़ाक से कोड़ा जमाया । उसने उफ तक न की, बोला, 'इस षड्-यन्त्र में एक नहीं, हजार नहीं, देश के समस्त न्यायप्रिय ब्राह्मण और श्रमण हैं । किस-किस पर कोड़े बरसाओगे, किस-किस को गिरफ्तार करोगे ?'

अपराधी की जिह्वा कौन पकड़ सकता है ? मारने के अतिरिक्त और क्या चारा था ? मार खाते-खाते उसने दो-चार लोगों के नाम बताये और अन्त में मूर्च्छित हो गिर पड़ा ।

सम्राट् उसके बताये लोगों को गिरफ्तार करने का आदेश देकर उस युवक के लिए प्राणदंड की आज्ञा सुना दी । सुनकर ह्वेनसांग काँप उठा । बोला, 'सम्राट्, यह क्या ? बौद्ध धर्म यह नहीं सिखलाता । कुछ लोगों को यदि मेरी विजय में सन्देह है तो कहीं एकान्त में मैं उनसे शास्त्रार्थ करने को तैयार हूँ । आपका हस्त-क्षेप भी उसमें न रहेगा । तब देखेंगे किसकी विजय होती है ? अपराधी को छोड़ दीजिये ।'

सम्राट् हँसे, 'नहीं आचार्य ! वे लोग क्या जीतेंगे ? जीतने की शक्ति रखने वाले छुरा-तलवार लेकर हत्या का षड्यन्त्र नहीं किया करते । उन्हें मेरी निष्प-क्षता में संदेह था तो आपसे आकर कहते । आप तो परिषद् के अध्यक्ष थे । ... अपराधियों को दंड न देना भी अपराध है ।'

ह्वेनसांग चुप कर गया । सम्राट् उठ कर चल दिये । आज्ञानुसार षड्यन्त्र-कारियों की धड़-पकड़ होने लगी । सैनिकों ने कहर ढाह दिया । बड़े-बड़े विद्वानों

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

को कोड़ों से पीटना, मारना, तरह-तरह की यातनाएँ देकर षड्यन्त्र का पता लगाना। सैनिकों के अत्याचारों ने सीमा ही लाँघ दी। जो निरपराधी थे, उन्हें भी पता लगाने के निमित्त मारा-पीटा गया। बौद्धधर्म के शान्तिपूर्ण सिद्धान्त महायान की नींव पर निरपराध विद्वानों को पीटना-मारना उस युग की अद्भुत घटना थी।

कुशल सैनिकों ने दो दिन में षड्यन्त्र का सम्पूर्ण भंडा फोड़ डाला। लगभग १५ विद्वान एवं ५०० ब्राह्मणों को अपराधी ठहराया गया। सम्राट ने अधिक सुनवाई न कर उन १५ विद्वानों को प्राणदंड और ५०० ब्राह्मणों को देश-निर्वासन का कड़ा दंड दिया।

जिस उत्साह और शान्तिमय वातावरण में धार्मिक परिषद् का समारम्भ हुआ। महायान के ऊँचे सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने के निमित्त सम्राट हर्ष ने जिस पवित्र कार्य को अपने हाथों में लिया, उसकी पूर्णाहुति पर उनके हाथ विद्वानों के रक्त से रँगे थे। ह्वेनसांग धार्मिक परिषद् के जिन महान् उद्देश्यों के नाम पर अपनी स्वदेश यात्रा का विचार त्याग कर सोत्साह कन्नौज चला आया, वही लौटते समय उन पवित्र उद्देश्यों के धवल वस्त्रों पर रक्त के कुछ लाल धब्बे देखकर काँप उठा। उसकी इस यात्रा का अन्त अत्यन्त दुःखमय रहा। अहिंसा की बलिवेदी पर हिंसा का यह क्रूर कर्म वास्तव में बहुत बड़ी दुर्घटना थी।

———

—: ३२ :—

प्रयाग का दान-वितरणोत्सव

धार्मिक परिषद् के शिविर अभी उखाड़े ही जा रहे थे कि सम्राट ने एक नया आयोजन कर डाला। सम्राट प्रत्येक पाँचवें वर्ष प्रयाग में दानवितरणोत्सव की आयोजना किया करते थे। इस बार अपने विदेशी अतिथि की समुपस्थिति में यह पुण्य-कार्य करने का उन्होंने संकल्प किया। सम्राट के जीवन में यह छठा पंचवर्षीय दानवितरणोत्सव था। काँग्रेस शासन की पंचवर्षीय योजना के अनुसार हर्ष का

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

पंचवर्षीय आयोजन अपना अलग ही महत्व रखता था। अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति दान में प्रदान कर खाली हाथ हो जाने का नाम पंचवर्षीय दानवितरणोत्सव था।

सम्राट ने उसका तत्काल आयोजन किया। कन्नौज की धार्मिक परिषद् के आयोजन में लगी सामग्री व्यर्थ नहीं गई। उसे प्रयाग भेजना आरम्भ हो गया। शिविर उखाड़-उखाड़ कर रथ, बैलगाड़ियों, ऊँटों, हाथियों और अन्य वाहनों पर प्रयाग रवाना किये गये। कुशल कारीगरों के कई दल सम्राट की आज्ञा से प्रयाग आ पहुँचे और द्रुतगति से निर्माणकार्य आरम्भ हो गया।

दान के लिये प्रयाग तीर्थ का बड़ा महत्व है। त्रिवेणी संगम पर दान करने की महत्ता का शास्त्रों में अद्भुत वर्णन है। संगम के विस्तृत क्षेत्र पर ही उक्त नगर-निर्माण होने लगा। महाकुम्भ १२ वर्ष वाद होता है किन्तु हर्ष के शासन-काल में प्रत्येक पाँचवें वर्ष त्रिवेणी पर कुम्भ लगा करता। हर्ष के जीवन की सर्व-श्रेष्ठ और महान् घटना प्रयाग का छठा दानवितरणोत्सव ही था। जब कि अपने विदेशी सम्मानित अतिथि ह्वेनसांग की समुपस्थिति का ध्यान कर उन्होंने अपना सम्पूर्ण धन, सारी सम्पत्ति दान में दे दी। उनके कोष में तनिक भी धन न रह गया।

कारीगरों ने एक वर्गाकार हाल बनाया जो एक हजार फीट लम्बा एवं चौड़ा था। इसके बीच घास-फूस की अनेक झोपड़ियाँ बनाई गईं जिनमें सम्राट का सम्पूर्ण कोष रक्खा जाता था। हाते के बाहर भोजन करने के लिये अनेक स्थान बनाये गये। इसी के पास भंडार गृह बने जिनमें कुछ भोजन-निर्माण के लिये और कुछ सामग्री रखने के लिए थे। लोगों के ठहरने के लिये एक सौ बड़ी-बड़ी पर्णशालाएँ बनीं जिनमें से प्रत्येक में एक-एक हजार व्यक्ति विश्राम कर सकते थे।

सम्राट, आमन्त्रित विद्वानों तथा राजा-महाराजाओं के निवास के लिये कन्नौज जैसी ही व्यवस्था की गई। सामग्री कहीं बाहर से मंगानी नहीं थी। कन्नौज की निर्माण-सामग्री से कारीगरों ने कुछ ही दिनों में त्रिवेणी तट पर एक सुन्दर नगर बसा दिया।

समय दूर नहीं था। निर्माण-कार्य पूरा होते-होते दानवितरणोत्सव का आयोजन आरम्भ हो गया। बहुत से आमन्त्रित विद्वान् तो कन्नौज में ही अभी तक उपस्थित थे। वे सीधे प्रयाग चले आये। राजा लोग भी अभी लौटे नहीं थे।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

उन्हें आते कितनी देर लगती ? वलभी नरेश दो-तीन दिन के लिये राज्यव्यवस्था देखने अपनी राजधानी गया था जो तत्काल लौट आया। सम्राट स्वयं शुभमुहूर्त्त में ह्वेनसांग और अन्य राजाओं के साथ प्रयाग के लिये रवाना हुए। उनके साथ-साथ रथों पर राज्य का सम्पूर्ण खजाना चल रहा था, जिसकी रक्षा के लिये हजार-दो हजार घुड़सवार आगे पीछे चल रहे थे। सम्राट के साथ रानियाँ और बहन राज्यश्री भी पालकियों में प्रयाग आईं। मंत्री, सामन्त, राज्य के सभी छोटे-बड़े कर्मचारी, नगर के प्रतिष्ठित जन, यों कहें सारी राजधानी ही प्रयाग की ओर उलट पड़ी। मीलों लम्बा जुलूस ही कन्नौज रवाना हुआ जिसे प्रयाग पहुँचने में कई दिन लगे।

प्रयाग में सम्राट का शानदार जुलूस निकला। प्रयाग की जनता ने अपने सम्राट का अत्यन्त सम्मानपूर्ण सोत्साह स्वागत किया। नगर-नगर की प्रमुख-प्रमुख सड़कों से होता जुलूस त्रिवेणी तट पर आया, जहाँ पहिले सम्राट ने अपने अतिथियों की निवास-व्यवस्था का निरीक्षण किया, तत्सम्बन्धी आज्ञाएँ दीं और तब अपने निर्धारित भवन में गये।

दूसरे दिन से ही दानवितरणोत्सव का कार्य आरम्भ हुआ। प्रथम दिन सम्राट ने अपने हाथों बुद्धदेव की विशाल मूर्ति एक पर्णनिर्मित सुन्दर मन्दिर में स्थापित की और उसकी विधिवत् अर्चा-पूजा करने के उपरान्त उन्होंने सार्वजनिक दान आरम्भ किया।

त्रिवेणी पर चारों ओर विद्वानों, ब्राह्मणों एवं भिक्षुकों की भीड़ लगी थी। प्रबन्धकों की व्यवस्था के अनुसार ब्राह्मण, भिक्षु, साधु विभिन्न पंक्तियों में सम्मान-पूर्वक बैठाये गये थे। सम्राट् मूर्ति स्थापित कर ह्वेनसाग एवं अन्य मंत्रियों के साथ बाहर निकले और उन पक्तियों की ओर बढ़े। समस्त त्रिवेणी तट सम्राट् को जय-जयकार से गूंज उठा। सम्राट् क्रमशः लोगों को बहुमूल्य वस्तुएँ तथा सुन्दर-सुन्दर बहुमूल्य वस्त्रों का दान करने लगे ; सम्राट् के साथ-साथ अनेक बैलगाड़ियाँ विभिन्न दान-सामग्रियों से भरी हुई चल रही थीं जिनमें से सेवक गण उठा-उठा कर मंत्रियों को देते और वे एक एक व्यक्ति के लिए गिनकर निर्धारित वस्तु सम्राट् के हाथों में देते। सम्राट् दान करते आगे बढ़ जाते। दान लेने वाले ब्राह्मण, विद्वान,

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

भिक्षु आदि सम्राट् को शतशत आशीर्वाद देते धीरे से चले जाते। इस प्रकार बड़े शान्तिपूर्ण वातावरण में प्रथम दिन की दानक्रिया समाप्त हुई। आयोजकों की व्यवस्था इतनी सुन्दर थी कि इतना बड़ा दानोत्सव होकर भी उसमें दान लेने वालों की भीड़ अशान्त न थी। शान्तिपूर्वक, सन्तोष से दान लेनेवालों की श्रेणियाँ अपने-अपने स्थान पर बैठी रहतीं। किसी में असन्तोष या कोलाहल न था।

दूसरे दिन भगवान् आदित्य देव तथा तीसरे दिन भगवान् शिव की मूर्ति स्थापित हुई। अन्य धर्मावलम्बी लोगों की सन्तुष्टि के लिये ही ऐसा किया गया। कन्नौज की घटना से सम्राट को एक बहुत बड़ी सीख मिली। किन्तु इन दोनों दिनों में प्रथम दिन की अपेक्षा आधी ही सामग्री दान की गई।

चौथे दिन बौद्ध धर्म के चुने हुए दस हजार धार्मिक व्यक्तियों को दान दिया गया। प्रत्येक को एक सौ स्वर्ण मुद्राएँ, एक बहुमूल्य मोती और एक बहुमूल्य सुन्दर सूती वस्त्र तथा भोजन, जलपान आदि से सन्तुष्ट किया गया। भोजन भंडार के सामने दस हजार व्यक्तियों की लगी विभिन्न पंक्तियाँ भोजन करते समय बड़ी शोभायमान हो रही थीं। ऐसा लगता मानो स्वयं भगवान् बुद्ध देव ने गरीबों के लिये दया का भंडार खोल दिया हो।

इसके पश्चात् लगातार बीस दिनों तक दान क्रम चलता रहा। इन बीस दिनों में हजारों ब्राह्मणों को दान से पुरस्कृत किया गया। उन्हें स्वेच्छित दान देकर सम्राट ने कन्नौज के पक्षपात की कालिमा धोने की चेष्टा की। ब्राह्मणों के बाद बौद्ध एवं ब्राह्मण धमतर लोगों की बारी आई। उन्हें दस दिनों तक निरन्तर दान मिलता रहा और तब अगले दस दिनों तक उन अनिमन्त्रित लोगों को दान दिया गया, जिन्हें जान-पहचान न होने से निमन्त्रण नहीं दिया गया था किन्तु सम्राट की दानशीलता सुनकर वे दूर देशों से चले आये थे। अन्त में एक मास तक गरीबों, भिक्षुओं, अनाथों तथा असहाय, दीन, हीन लोगों को दान तथा भोजन दिया गया।

निरन्तर २।। मास तक दान करते-करते सम्राट् का अटूट खजाना खाली हो गया। बड़े-बड़े अमूल्य हीरे, मोती, जवाहर तक सम्राट् ने दान में दे डाले। अपने शरीर के तथा रानियों तक के आभूषण भी हर्ष ने दान कर दिये। सम्राट् के पास घोड़े, हाथी तथा अन्य सैन्य-सामग्री के अतिरिक्त कोश में कुछ न बच रहा।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

सम्राट् उस समय साधारण वस्त्रों में महाराज रघु की तरह शोभायमान हो रहे थे जिन्होंने अपना सर्वस्व दान में देकर एक कुटिया में निवास करना आरम्भ कर दिया था। अन्त में सम्राट् ने अपने शरीर के वस्त्र भी एक भिक्षुक को दान में दे दिये और तब एक छोटे से वस्त्र में वे एक चौकी पर बैठे उन प्रसन्न भिक्षुओं को देख-देख कर प्रफुल्लित होने लगे। उन्हें अपनी सम्पत्तिहीनता पर कुछ भी खेद न हुआ वरन् गरीबों, भिक्षुकों की प्रसन्नता से उनका चित्त अत्यन्त हर्षित हुआ। हर्ष आज वास्तव में हर्ष हो गये। आज उनका चित्त इतना प्रसन्न था कि जीवन में कभी उतना हर्षित न रहा होगा।

अपने भाई की महान दानशीलता और एक छोटे से वस्त्र को छोड़कर शेष सम्पूर्ण सम्पत्ति का दान देखकर राज्यश्री जहाँ प्रसन्न हुई वहाँ उसके हृदय में कुछ खेद भी हुआ। इतने बड़े साम्राज्य के स्वामी को वस्त्रहीन देख सकना राज्यश्री जैसी बहन के लिए सह्य न था। वह अपना एक पुराना वस्त्र लेकर भाई को देने आई।

बोली, 'यह लो भैया! इसे पहिन लो। यह मेरा वस्त्र है।'

'नहीं राजू! इस वस्त्रहीनता में मुझे जितनी प्रसन्नता हो रही है, सम्भवतः जीवन की यह मेरी प्रथम प्रसन्नता और आनन्द है। संसार में पुण्य कार्य का उपार्जन करना ही मूल लक्ष्य है। परलोक में यही मोक्षपद-प्राप्ति का सहायक होगा। यह सम्पत्ति, धन, हीरे-जवाहिरात और बहुमूल्य वस्त्र तो श्मशान तक रह जाते हैं।'

भाई की वैराग्यभरी बात सुनकर राज्यश्री की आँखों से आँसू छलक पड़े।

'रोती हो राजू! अरी, यह तो पुण्य कार्य है। अच्छा लाओ वस्त्र! मैं तुम्हारा दिया यह जीर्ण वस्त्र पहिन कर ही सम्राट् नहीं, महासम्राट् से कम न कहलाऊँगा। वस्त्रों में साम्राज्य सत्ता थोड़े ही धरी है! वह तो मनुष्य की आत्म-शक्ति में है।' और उन्होंने वस्त्र लेकर अपने शरीर पर लपेट लिया।

दानवितरणोत्सव की पूर्णाहुति हुई। सम्राट् से चीनी यात्री ह्वेनसांग ने विदा मांगी। उसे रोकने का अब सम्राट् के पास कोई बहाना न था। चीनी यात्री को भी अपना देश छोड़े १४ वर्ष बीत चुके थे। वह घर लौटने को उतावला था।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

हर्ष ने इस बार उसे नहीं रोका। सम्राट् ने ह्वेनसांग की विदाई के लिए एक महान स्वागत समारोह किया जिसमें विभिन्न देशों से बौद्धों ने भाग लिया। अन्तिम बार ह्वेनसांग ने अपने स्वागत के उत्तर में लोगों को महायान सिद्धान्त को उचित सिद्ध करते हुए उसे अपनाने का अनुरोध किया। उस राजसी स्वागत समारोह में जब सम्राट ने ह्वेनसांग को माल्यार्पण कार्य किया तो एक-एक बौद्ध विद्वान आ-आकर उसे मालाएँ पहिनाने लगे। अनेक बार ह्वेनसांग मालाओं से सिर तक ढक गया और मालाएँ उतारनी पड़ीं किन्तु पुनः लोग मालाओं से उसे ढक देते। अपना अपूर्वसम्मान देखकर ह्वेनसांग बहुत प्रसन्न हुआ। उसने उपस्थित विद्वानों से विदाई ली। सभी ने आचार्य ह्वेनसांग की जय से उसे विदाई प्रदान की।

अभ्यागत राजाओं में से जलन्धर के राजा को सम्राट ने आदेश दिया कि वह अपने साथ सैनिक दल की सुरक्षा में सम्मानित अतिथि को सीमान्त प्रदेश तक छोड़ आये। जालन्धर नरेश के साथ ह्वेनसांग चल पड़ा। सम्राट् स्वयं नगर के बाहर तक उसे छोड़ने गये और विदा होने के समय दोनों के नेत्रों में आँसू छलक रहे थे। हर्ष ने ह्वेनसांग को गले लगाया और तब मन को धीरज बँधा कर उसे रथ पर बैठ जाने का आग्रह किया। उसके रथ पर बैठते ही सारथी ने लगाम पकड़ी और घोड़े आकाश में उड़ते नजर आने लगे।

जालन्धर के राजा ने चीनी यात्री को अत्यन्त सुरक्षा के साथ अपने सैनिकों द्वारा सीमान्त तक पहुँचा दिया और वहाँ से अनेक कठिन मार्गों से होते हुए सन ६४५ में ह्वेनसांग चीनी राजधानी चैंग-अन पहुँचा।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

: ३३ :

अन्तिम क्षण

एक दिन वह था जब हर्ष कवि को भांड़ और कविता को भाँड़पन समझते थे; किन्तु वे अब न केवल काव्य से ही प्रेम करने लगे वरन् स्वयं एक अच्छे कवि भी बन गये। अवकाश के क्षणों में वे काव्य के रसमय माधुर्य का पान करते। बाणभट्ट के आगमन के बाद सम्राट की काव्यप्रियता, दिनों-दिन बढ़ती गई और वे कवियों के प्रमुख आश्रयदाता बन गये। प्रख्याति सुनकर और भी कई कविवर उनके दरबार में आये जिन्हें सम्राट ने अपने यहां आश्रय दिया। मुख्य रूप से बाणभट्ट, मयूर और मातंग दिवाकर जैसे प्रख्यात कवि कान्यकुब्जाधीश के दरबार की शोभा बढ़ाते थे। अपने काव्य प्रेम के कारण सम्राट दिन-दिन भर काव्यगोष्ठियों में बैठे काव्य-रस-पान करते रहते। उन्हें राजकाज तक की सुध-बुध न रहती। राजकाज का सम्पूर्ण भार मंत्रियों पर सौंप दिया गया। जीवन के अन्तिम क्षणों में सम्राट के मुख्य दो ही कार्य थे। सत्संग, धर्मानुष्ठान, दानकर्म और काव्य-श्रवण या काव्य रचना में व्यस्त रहना। हर्ष ने स्वयं कई ग्रंथों की रचना की। नागानन्द, प्रियदर्शिका और रत्नावली नाटकों के रचयिता स्वयं सम्राट हर्ष थे। नागानन्द में जहाँ उन्होंने दयाधर्म से ओतप्रोत एक राज का सुन्दर वर्णन कर अपनी दयाशील परोपकारी वृत्ति का परिचय दिया है वहाँ प्रियदर्शिका एवं रत्नावली में सुन्दर प्रेमगाथा वर्णित कर अपने कवि-हृदय के माधुर्य का प्रदर्शन किया है। नागानन्द का नायक बौद्ध राजा था जिसने एक नाग की रक्षा के लिये अपना बलिदान कर दिया। प्रियदर्शिका में एक सजीव प्रेम कहानी वर्णित है। प्रेमिका का प्रेम पाने के लिये युवक राजकुमार कई युद्ध और षड्यन्त्र करता है। बड़ी-बड़ी अद्भुत एवं आश्चर्यजनक घटनाओं-दुर्घटनाओं के बाद प्रेमी अपने प्रेम में सफल हो पाता है और उसका प्रेमिका से सविधि पाणिग्रहण हो जाता है। रत्नावली भी प्रेमगाथा पर आधारित है। उसकी कथा प्रियदर्शिका से बहुत कुछ मिलती जुलती है। इसके अतिरिक्त और भी अनेक फुटकर पद्य-गद्य की रचना सम्राट हर्ष ने की।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

जिस बाणभट्ट को सम्राट आरम्भ में अत्यन्त उपेक्षित एवं रूखी दृष्टि से देखते थे वह आज घनिष्ठ प्रियपात्र था। काव्य पहले जिसकी दृष्टि में काव्यकारों के पैसे कमाने के साधन मात्र से अधिक महत्व नहीं रखता था और जिसमें गपाष्टक के अतिरिक्त वास्तविकता का सर्वथा अभाव था वही काव्य आज उनके जीवन का प्राणधन बन गया। काव्य के प्रति इतनी संकुचित मनोवृत्ति रखने वाले हर्ष समय पाकर स्वयं एक प्रसिद्ध कवि बन गये। इसका एकमात्र कारण था हर्ष के जीवन में बाणभट्ट का समागमन। हर्ष बाण से पहले जितना रूखा व्यवहार करते थे उतना ही आज बाण उनका आत्मीय बन चुका था। बाण की कविता बिना सुने उन्हें एक दिन चैन न मिलती।

शान्तिपूर्वक समय बीत रहा था। सम्राट जीवन के प्रत्येक कर्त्तव्य से उऋण हो चुके थे। उन्हें अब कोई चिन्ता न थी। एक सम्राट के अनुकल उन्होंने उत्तर भारत का दिग्विजय कर दिखलाया। दयालुता में वे बढ़-चढ़ कर निकले। प्रत्येक पाँचवें वर्ष अपना सर्वस्व दान कर वे अपना मोक्षपद साध चुके थे। कुशल शासक की तरह उन्होंने साम्राज्य में सुव्यवस्था स्थापित करने में भी कम सफलता प्राप्त नहीं की।

५५ वर्ष की वृद्ध आयु हो चुकी थी। सिर के आधे बालों पर सफेदी छा चुकी थी। इस अवस्था में शरीर शैथिल्य स्वाभाविक ही है। उस पर कठोर श्रमपूर्ण दिन चर्या। प्रायः कठिन-कठिन उपवास-व्रतों का तांता और बौद्ध धर्म के कठोर नियमों का पालन! सम्राट् का शरीर कुछ अस्वस्थ रहने लगा। किन्तु उन्हें इस बात की चिन्ता न हुई। वे अपने नियमों का विधिपूर्वक पालन करते रहे।

वृद्धावस्था में बहाना ही तो चाहिये। रोग पकड़ते कितनी देर लगती है। सम्राट् के शिथिल स्वास्थ्य में ज्वर रोग आ टपका। किन्तु सम्राट् अपने नियमों के दृढ़ निकले। वे शक्तिभर अपनी दिनचर्या निभाने का प्रयत्न करते। राजकीय विशेष वैद्यराजों ने सम्राट् को समझाया कि वे पूर्ण विश्राम लें। कठोर नियमों का पालन उनके स्वास्थ्य के लिए हानिकर सिद्ध होगा।

वृद्ध आयु थी! सम्राट् सोचते, 'एक दिन तो मृत्यु का वरण करना ही होगा। तब क्यों नियम भंग कर अपने परलोक कल्याण में बाधा पहुँचाई जाय।' वे नियम-

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

पूर्वक दिनचर्या निभाते गये । परिणाम वही हुआ जो सम्भव था । ज्वर ने तीव्रता पकड़ ली । वे लम्बे पड़ गये । शैया से उठ पाना भी कठिन हो गया । अब बाध्यत: नियम टूट गये । बाध्यावस्था में नियमभंग का कोई दोष भी नहीं होता ।

बड़े-बड़े वैद्यों की औषधि होने लगी । सम्राट की रुग्णावस्था से प्रजा में भी खलबली मच गई । सभी जनता चिन्तित हो उठी । बड़ी कठिनाई से साम्राज्य में सुव्यवस्था और शान्ति स्थापित हो सकी थी और अब फल भोगने का समय आया तो फलदाता कहीं जाने की तैयारियाँ करने लगा । सबसे गम्भीर चिन्ता का विषय यह था कि साम्राज्य का कोई उत्तराधिकारी भी न था । सम्राट को एक पुत्र उत्पन्न हुआ था, उसकी अल्पावस्था में ही मृत्यु हो चुकी थी । इसके अतिरिक्त एक विवाहित कन्या ही सम्राट की सन्तान थी । राजसिंहासन के अनाथ होने की दशा स्पष्ट थी ।

राजपरिवार भी चिन्तित था । रानियाँ तो मारे दुःख के रो-रो कर आँखें सुजा रही थीं । भांडी ने एक कुशल वद्य को बंगाल से बुलाया । उसका इलाज काफी दिन चला । सम्राट के स्वास्थ्य में पर्याप्त सुधार भी दिखाई देने लगा । प्रजा को एक आशा की किरण दीखने लगी किन्तु वह सुधार क्षणिक था । दैव विरुद्ध था । सम्राट का रोग फिर बढ़ गया ।

वही वैद्यराज फिर देखने आये । बहुत देर तक सम्राट के पास बैठकर उनकी नाड़ी देखते रहे । हृदय, उदर आदि की भी उन्होंने जाँच की ।

भांडी ने पूछा, 'क्यों वैद्यराज ! कैसी स्थिति है ?'

वैद्यराज गम्भीर हो गये । उनके मुख पर चिन्ता की रेखाएँ खिच गईं । बोले, 'प्रयत्न करना ही तो मनुष्य के हाथ है ।' और उठ बैठे । सभी वैद्यराज की ओर टकटकी लगाये थे । सभी ने एक न एक प्रश्न पूछना आरम्भ किया—'रोग अच्छा होगा या नहीं, कितने दिनों में अच्छे होंगे, कैसे अच्छे होंगे ?'

चलते समय वैद्यराज ने एक ही उत्तर दिया—'रोग असाध्य हो चुका है । प्रयत्न करते रहना चाहिये । ईश्वर सहायक हो तो स्वास्थ्य सुधरने में क्या देर लगती है ?' और वे अपने स्थान पर चले गये ।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

रोग असाध्य सुन रानियाँ तो दहाड़ मार कर रो पड़ीं। मंत्रिमंडल गहरी चिन्ता में पड़ गया। जितने बड़े-बड़े ख्याति-प्राप्त वैद्य थे, सबने एक-एक कर सम्राट् को देखा और सभी का उत्तर एक ही था—रोग असाध्य हो चुका है।

मंत्रियों को उत्तराधिकारी की प्रबल चिन्ता थी। सभी मिलकर सम्राट के पास गये। सब के मुख बिलकुल मलीन और शोकग्रस्त थे। मानो कमल पुष्पों को पाला मार गया हो।

सम्राट रोग से बहुत कष्ट में थे। बोलने की भी पूरी शक्ति न रह गई थी। संकेत से सबका प्रणाम स्वीकार कर धीरे से बोले, 'मेरे बचने की आशा छोड़ दीजिये मंत्रिवर!' उन्होंने भांडी को पास बुलाया।

भांडी पास गया। सम्राट ने कहा, 'मेरे बाद साम्राज्य का शासन तुम्हीं संभालना भला! यह साम्राज्य अनाथ न होने पाये।'

भांडी की आँखों में आँसू छलक रहे थे, 'श्रीमन्त क्या कह रहे हैं? आप अवश्य स्वस्थ होंगे। ऐसा वचन मत कहें।'

'शिष्टाचार की आवश्यकता नहीं भांडी! जो वास्तविकता है उसे सुनो! सभी वैद्यों ने रोग असाध्य बताया है। फिर भी मेरे जीने की आशा लगाये बैठे हो। मूर्खता मत करो। हम साम्राज्य का सम्पूर्ण अधिकार तुम्हें देते हैं। समझे।' और सम्राट खांसने लगे। दासी ने औषधि दी। उसे पीकर वे चुपचाप पड़ गये। उन्होंने सबको विदा दी।

सब लोग जाने लगे। सम्राट ने पुनः सभी को बुलाया। बोले, 'आप सब लोग हमारे ममेरे भाई भांडी के आदेशों का पालन करें। योग्यता में ये कम नहीं हैं। हमारे प्रधान सचिव पद पर रहकर इन्होंने बड़ी कुशलता से कर्त्तव्य निभाया है। हमारे बाद किसी प्रकार भी साम्राज्य अनाथ न हो। प्रजा में सुख शान्ति की पूर्ण व्यवस्था रक्खी जाय........!'

'आप विश्राम करें श्रीमन्त! आज्ञाओं का पालन अवश्य होगा।' एक वृद्ध मंत्री ने विनयपूर्वक कहा। सम्राट ने सन्तोष की साँस ली। सब लोग चले गये।

उन लोगों के जाने के बाद पर्दे से रानियाँ निकल आईं। सभी की आँखों में मोटी-मोटी बूंदें थीं। तीनों सम्राट के सिरहाने और बगल में बैठ गईं।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

सम्राट ने कहा, 'रोती हो !' उन्होंने बड़ी रानी शची की पीठ पर हाथ फेरा। हाथ काँप रहा था। 'तुम्हीं रोओगी तो ये छोटी रानियाँ भला कैसे धैर्य बाँधेंगी ? मनुष्य सदैव थोड़े ही जीवित रहता है और अभी मेरा क्या पता ? कौन जाने बच ही जाऊँ, बड़े-बड़े वैद्य इलाज कर रहे हैं !'

सम्राट ने सबसे छोटी रानी प्रियंवदा को बुलाया जिसका विवाह अभी कई वर्ष ही पूर्व हुआ था। वह तो रो-रो कर बेहाल हो रही थी। सम्राट ने उसे धीरज दिया और बोले, 'और तो सब अच्छा लगता है किन्तु तेरा रोना मुझे पसन्द नहीं। कम से कम मेरी पसन्द का तो ध्यान रखना चाहिये। यदि तेरे रोने से मेरा जी दुखे और मैं और भी बीमार पड़ जाऊँ तो ? रोना बन्द कर।' उन्होंने अपने हाथ से उसके आँसू पोंछे।

मझली रानी बगल में बैठी थी। उसकी ओर भी सम्राट ने देखा। इसकी कन्या वलभी नरेश की पत्नी थी। बोले, 'तू तो सन्तानवाली है। तू भी रोती है ? तेरी सुन्दर-सी कन्या है। सलोना दूल्हा है; वभव सम्पन्न। मुझे सुख से मरने देने के लिये यह रोना बन्द कर लक्ष्मी !

वह सम्राट की छाती पर सिर रख कर रोने लगी। सम्राट ने उसे भी धीरज बँधाया और उसके सिर पर हाथ फेरा। 'रोओगी तो मुझे और दुःख होगा। मनुष्य की क्षणभंगुरता पर विचार करो। तुम्हारा पति एक महान् सम्राट है। जीवन के सभी सुख उसने भोग लिये हैं। दान-पुण्य, दया-धर्म सब कर्त्तव्यों से वह उऋण हो चुका है। अब उसके मरने में हानि क्या ? संसार का नियम ही ऐसा है। कोई व्यक्ति अमर होकर तो आता नहीं। राम, कृष्ण, बुद्धदेव भी जन्म लेकर आये, उन्हें भी एक दिन संसार छोड़कर जाना पड़ा।'

सम्राट बोलते जा रहे थे। बोलने से उनका कष्ट बढ़ता था। बार-बार खाँसी आती। वे खाँसते-खाँसते मूच्छित हो गये। सारे राज्यभवन में हाहाकार मच गया। सेवक दौड़े। मंत्रियों ने तत्काल वैद्यराज को बुलाया। वे आये। नाड़ी देखी। वह धीमी-धीमी चल रही थी। उन्होंने एक तीव्र औषधि दी। दूध में घोलकर सम्राट के मुंह में डाली गई। दस मिनट बाद उन्हें सुध आई। उन्होंने आँखें खोलीं। बोले, 'भांडी कहाँ है ?'

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

भांडी सामने आया। सम्राट् ने उसका हाथ पकड़ कर अपने पास बैठाया। बोले, 'देखो! तुम हमारे छोटे भाई के समान हो। यह रानियाँ तुम्हारी भाभी लगती हैं। इन्हें सान्त्वना देना। ये रो-रो कर प्राण दे रही हैं। इन्हें रोने मत देना। वह बेचारी प्रियंवदा तो अभी कई वर्ष पूर्व ब्याही है। उसे क्या मालूम था कि हम इतनी जल्दी जाने की तैयारी कर लेंगे। उसे बिल्कुल मत रोने देना।'

भांडी ने धीरे से कहा, 'आप चिन्ता न करें सम्राट्! मैं आपकी कृपा के लिए उऋण नहीं हूँ। रानियाँ मेरी माता के समान हैं। उनके कष्टों का मैं पूरा-पूरा ध्यान रक्खूंगा।'

'तुम्हें हमारी शपथ! उन्हें रोने मत देना। उस छोटी का विशेष ध्यान रखना।' थोड़ी देर रुक कर बोले, 'साम्राज्य की अच्छी प्रकार संभाल कर देख-भाल करना। हमारा इतने दिनों का बना बनाया साम्राज्य बिगड़ने न पाये! हमें सुख से मरने दो भांडी! ईश्वर तुम लोगों को सुखी रक्खें।'

और सम्राट् ने आँखें बन्द कर लीं। सब लोग घबरा उठे।

वैद्य ने नाड़ी पकड़ी। बहुत धीरे-धीरे चल रही थी। सम्राट् को पुनः मूर्च्छा हो आई थी। सब लोग समझ गये कि अब अन्तिम समय निकट है।'

भांडी ने अन्य मंत्रियों को हट जाने का आदेश दिया। वे लोग चले गये। रानियाँ पर्दे से बाहर आईं। उनकी आँखें वर्षा ऋतु के मेघ बरसा रही थीं। सिसकियों से उनका गला बैठ रहा था। वैद्य ने संकेत से उन्हें चुप रहने का आदेश दिया। बेचारी चुपचाप सम्राट् के पास बैठ गईं।

अचानक सम्राट की मूर्च्छा भंग हुई। बोले, 'हमें एक बात और याद आ गई। हमारे मरने के बाद वलभी से ध्रुवभट्ट को यहाँ बुलवा लेना। उससे साम्राज्य-संचालन में सहायता लेना। कन्या पास में रहने से रानियों को भी प्रसन्नता होगी। समझे! अवश्य ऐसा करना।'

भांडी ने 'जो आज्ञा' कहकर सान्त्वना दी।

'पंचव र्षीय दानोत्सव जारी रहे। भिक्षुओं, विद्वानों का आदर सत्कार, दया-धर्म के कार्य चलते रहें।.....हमारी....चलाई दानशालाएँ बन्द न हों।........और प्रजा में पूर्ण शान्ति रहे।' सम्राट कहते-कहते हाँफने लगे। वैद्य ने

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

बोलने से रोका। मगर वे न माने। कहते गये, 'ये रानियाँ तुम्हारी मातृतुल्य हैं। इनकी पूरी सेवा करना। इन्हें किसी प्रकार का कष्ट न हो।'

रानियाँ उठकर सिर की ओर जा खड़ी हुईं। उनकी आँखें चुपचाप जल बरसा रही थीं। सिसकियों की ध्वनि वे बरबस रोक रही थीं। सम्राट ने छोटी रानी को बुलाया। वह पास आई। उसका हाथ पकड़ कर बोले, 'सुन! फिर रोने लगी? यहाँ कष्ट हो तो अपने राज्य में चली जाना। समझी! वहाँ अपनी बहन के पास तेरा मन लगा रहेगा। रो मत...। (उनकी वाणी लड़खड़ाने लगी) 'मुझे मालूम होता.....कि मैं इतनी.....जल्दी मर जाऊँगा.... तो तुझे ब्याह कर ही न लाता।' उन्होंने एक लम्बी साँस ली। इसके बाद उनकी आँखें बदलने लगीं। मुख का रंग उड़ने लगा। वे हाथ से कुछ संकेत कर रहे थे। भांडी उन संकेतों को समझने का प्रयत्न करने लगा। अन्त में वह हाथ भी शक्तिहीन होकर नीचे बैठ गया। उनका मुंह धीरे-धीरे हिल रहा था। भांडी ने कान लगाकर सुना बहुत धीमी अस्पष्ट वाणी थी——अहिंसा परमो धर्मः। ॐ शान्तिः! शान्तिः! शान्तिः!!

वाणी बन्द हो गई। सम्राट का क्षीण शरीर अचेतन हो गया। रानियाँ फूट-फट कर रो पड़ीं। सारे राजभवन में कुहराम मच गया। सम्राट की मृत्यु का समाचार विद्युत्वेग से सम्पूर्ण नगर में फैल गया। जो जहाँ सुनता, दहाड़ मार उठता।——'हम लोगों के कर्म फूट गये। इतना अच्छा सम्राट प्रजा को कभी नहीं मिला था!'

सब राजभवन की ओर दौड़े।

इधर भांडी ने अन्त्येष्टि क्रिया का प्रबन्ध किया। अनेक कारीगर बुलाकर तत्काल एक सुन्दर बहुमूल्य अरथी बनाई गई। और अन्त में भांडी, कुमारगुप्त और राजभवन के कुछ वृद्ध मंत्रियों ने सम्राट के शव को उठाकर उस पर रक्खा।

उस समय का दृश्य तो बड़ा ही करुण था। रानियों के साथ राजभवन की स्त्रियाँ भी सिर पटक रही थीं। दहाड़ों से सारा राजभवन फटा जा रहा था। बाल खोले शृंगारहीन सादे वस्त्रों में रानियाँ छत से वह करुण दृश्य देख रही थीं!...

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

उनका रोना कौन रोके ? बड़ी बूढ़ियाँ स्वयं रोते-रोते उन्हें संभालने लगी थीं किन्तु वह समय किसी को समझाने वुझाने का थोड़े ही था। कौन मानता ?

श्रौर तभी श्ररथी उठी। करुणा की वाढ़ ने सारे राजभवन को डुवो दिया। भांडी, कुमारगुप्त श्रादि प्रमुख जनों ने श्ररथी को एक सजे सजाये रथ पर रक्खा जिसे सैनिक खींच रहे थे। श्ररथी के पीछे-पीछे मंत्री, सेनापति, उच्चाधिकारी श्रौर प्रतिष्ठित नागरिक थे। सभी सिर-पैर से नंगे पैदल चल रहे थे। श्ररथी के श्रागे श्रौर पीछे पैदल सनिकों के दल थे जो राजसी सम्मान के लिये साथ-साथ पंक्तिबद्ध चल रहे थे। भांडी श्रौर कुमारगुप्त श्ररथी के पीछे-पीछे सुवर्णमुद्राएँ, मोती, हीरे श्रादि लुटाते जा रहे थे। मार्ग में सर्वत्र नागरिकों की श्रपार भीड़ थी। श्रपने सम्राट के श्रन्तिम दर्शन के लिये सारा नगर उमड़ पड़ा था। लोगों के हाथ पुष्पों की वर्षा कर रहे थे श्रौर श्राँखें जल बरसा रही थीं।

बड़े ही सम्मान के साथ श्ररथी श्मशान घाट श्राई। जहाँ सविधि श्रन्त्येष्टि क्रिया की गई। चन्दन की लकड़ी की चिता वनाई गई थी। भांडी ने श्रपने हाथों सम्राट का श्रन्तिम संस्कार किया श्रौर चिता में श्रग्नि लगाई।

चिता धाँय-धाँय कर उठी। श्रपने सम्राट की नश्वर काया जलती देख लोगों की श्राँखें श्राँसू न रोक सकीं। श्राग की लपटें क्षणों में श्राकाश छूने लगीं मानों सम्राट के बड़े-वड़े कार्यों की ऊँचाई नाप रही हों श्रौर थोड़ी देर में ही उन्होंने सम्राट का श्रस्तित्व श्रपने में सदा के लिये विलीन कर लिया। सम्राट के नश्वर शरीर का श्रस्तित्व तो श्राग ने विलीन कर लिया किन्तु उनके महान् कार्यों की सत्ता लोगों के हृदयों पर श्रमिट वनी रही।

लोगों ने देखा, पश्चिम में सूर्य श्रस्ताचल के नीचे छिप चुका था किन्तु उसकी श्राभा पश्चिमी श्राकाश के कुछ श्रंश पर लालिमा वनकर छाई है। श्रौर इधर भूमि के एक छोटे से भाग पर कुछ राख इधर-उधर विखरी पड़ी थी। लोगों को ऐसा लगा मानों राख के कण कुछ वोल रहे हों—श्रहिंसा ! सत्य !! शान्ति !!!

———

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

जीवन-चरित्र सम्बन्धी

हमारे उत्कृष्ट प्रकाशन

संस्मरण और आत्मकथायें	धूनीराम त्रिपाठी	१॥)
महाराणा हम्मीरसिंह	बाबू सूर्यदेवसिंह	१॥)
राणा सांगा	मनु शर्मा	१।)
महाराणा प्रतापसिंह	चन्द्रशेखर पाठक	२)
सम्राट् चन्द्रगुप्त	सत्यनारायण कस्तूरिया	३)
सम्राट् हर्षवर्द्धन	सत्यनारायण कस्तूरिया	४)
छत्रपति शिवाजी	मनु शर्मा	२॥)
नाना फड़नवीस	[प्रेस में]	

प्रकाशक

हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय

पो० बक्स नं० ७०, ज्ञानवापी,

बनारस ।

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

Digitization by American Academy of Indic Studies. AAIS(USA)

प्रकाशक :
हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय,
पो० बक्स नं० ७०, ज्ञानवापी,
बनारस ।

मूय : चार रुपया

क०-मुद्रक : विद्या मन्दिर प्रेस लि०, मान-मन्दिर, बनारस ।